एकार्थक कोश

(समानार्थक कोश)

वाचना-प्रमुख
आचार्य तुलसी

प्रधान-संपादक
युवाचार्य महाप्रज्ञ

संपादक
समणी कुसुमप्रज्ञा

एकार्थक कोश

कोशस्यैव महीपानां, कोशस्य विदुषामपि।
उपयोगो महानेष, क्लेशस्तेन विना भवेत्॥

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानं,
कोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति,
सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ॥

समणी कुसुमप्रज्ञा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

आर्थिक सौजन्य :
रामपुरिया चेरिटेबल ट्रस्ट
कलकत्ता

प्रबन्ध-सम्पादक :
श्रीचन्द रामपुरिया
निदेशक :
आगम और साहित्य प्रकाशन
(जैन विश्व भारती)

प्रथम संस्करण : १९८४

पृष्ठांक : ४४०

मूल्य : ५०.००

मुद्रक :
मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित
जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं (राजस्थान)

EKĀRTHAKA KOŚA

(A Dictionary of Synonyms)

Vācanā Pramukha
ĀCĀRYA TULSĪ

Chief Editor
YUVĀCĀRYA MAHĀPRAJÑA

Editor
Samaṇī Kusumprajñā

JAINA VISHVA BHARATI
LADNUN (RAJASTHAN)

Managing Editor :
Shreechand Rampuria

Director :
Agama and Sahitya Prakashan
Jain Vishva Bharati

By munificence :
Rampuria Charitable Trust
Calcutta

First Edition : **1984**

Pages : **440**

Price : **Rs. 50.00**

Printers :
Jain Vishva Bharati Press
Ladnun (Rajasthan)

स्वकथ्य

प्रस्तुत ग्रन्थ आगम कल्पवृक्ष की एक उपशाखा है। जैसे-जैसे समय बीता, वैसे-वैसे आगमवृक्ष का विस्तार होता गया। आगम शब्दकोश की कल्पना आगम संपादन कार्य के साथ-साथ हुई थी, किन्तु उसकी क्रियान्विति उसके पचीस वर्षों के बाद हुई। इस कार्य के लिए हमने शताधिक ग्रन्थों का चयन किया और वह कार्य प्रारम्भ हो गया। इस विशाल कार्य में निरुक्त, एकार्थक शब्द, देशी शब्द आदि का पृथक् वर्गीकरण किया गया। इस आधार पर उस महान् कोश में से प्रस्तुत कोश का अवतरण हो गया। इस अवतरण कार्य में अनेक साध्वियों, समणियों और मुमुक्षु बहिनों ने अपना योग दिया है। इसे कोश का रूप दिया है समणी कुसुमप्रज्ञा ने। मुनि दुलहराज की श्रम-संयोजना और कल्पना ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह एक सुखद संयोग है कि आगम शब्दकोश तथा उसकी शाखा-विस्तार का सारा कार्य महिला जाति के द्वारा संपन्न हुआ है।

वैदिक और बौद्ध साहित्य में निरुक्त अथवा एकार्थक शब्दो पर कार्य हुआ है, किन्तु जैन आगम साहित्य पर इस प्रकार का कार्य नहीं हुआ था। समीक्षात्मक और तुलनात्मक दृष्टि से इसमें कार्य करने का पर्याप्त अवकाश है, फिर भी प्रारंभिक स्तर पर जिस सामग्री का संकलन हुआ है वह कम मूल्यवान् नहीं है।

जिन-जिन व्यक्तियों ने इस कार्य में अपना योग दिया है, उन्हें साधु-वाद और उनके लिए मंगल भावना है कि उनकी कार्य-क्षमता उत्तरोत्तर बढ़े और समग्र आगम शब्दकोश की संपन्नता में उनका कर्तृत्व और अधिक निखार पाए।

लाडनूं
१५-१-८४

—आचार्य तुलसी
—युवाचार्य महाप्रज्ञ

पुरोवचन

एकार्थक शब्दों का संग्रह सर्वप्रथम हम यास्क रचित निघण्टुकोश में पाते हैं। इसमें शब्दों का संकलन सुनियोजित रूप में किया गया है। प्रथम अध्याय में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, मेघ, नदी आदि वस्तुओं के एवं उनसे सम्बद्ध क्रियाओं के वाचक ४१५ पर्यायवाची शब्द संकलित हैं। द्वितीय अध्याय में मनुष्य एवं उसके अंगों आदि से सम्बद्ध ५१६ पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं। तीसरे अध्याय में ४१० पर्यायवाची शब्दों का संग्रह है। इस प्रकार उत्तरवर्ती अध्यायों में भी एकार्थक शब्द संकलित हैं। पर्यायवाची शब्दों के एक समूह में से केवल एक-आध शब्द की ही व्याख्या यास्क ने की है। उदाहरणार्थ—गत्यर्थक १२२ शब्दों में से किसी भी शब्द द्वारा वाच्य गति विशेष का निरूपण नहीं किया गया है। केवल इतना ही कह दिया है कि १२२ धातुएं गत्यर्थक हैं। इस पर टिप्पणी करते हुए एक वृत्तिकार ने कहा है—"अत्र पुनर्यद्यपि गतिकर्मणां द्वाविंशतिशतसंख्यानाम् अविशिष्टं गमनमेकोऽर्थ उक्तः, तथापि प्रसिद्ध्यनुरोधाय ऋसति, लोठते, श्चोतते इत्येवमादयः प्रतिनियत-सत्त्व-गमनविषया एव द्रष्टव्याः ·····।" तात्पर्य यह है कि एकार्थक शब्द एक ही विषय की विभिन्न अवस्थाओ को स्पष्ट करते हैं। ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही वर्ण के वाचक भिन्न-भिन्न शब्द भिन्न-भिन्न विषयों के लिये प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ—गौर्लोहितः, अश्वः शोणः। गौः कृष्णः, अश्वो हेमः। गौः श्वेतः, अश्वः कर्कः।

आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने आवश्यक के पर्याय नामों के विषय में कहा है कि वे अभिन्नार्थक, सुप्रशस्त, यथार्थनियत, अव्यामोहनिमित्त एवं नानादेशीय शिष्यों को अनायास प्रतिपत्ति कराने वाले हैं। एकार्थक शब्द अपने प्रतिपाद्य विषय को सुव्यवस्थित रूप से निर्धारित करते हैं। एकार्थवाची शब्दों द्वारा विद्यार्थी को बहुश्रुत बनाया जाता है एवं प्रतिपाद्य विषय के विभिन्न अंगों का प्रतिपादन भी व्यवस्थित रूप से किया जाता है। "एकार्थक" शब्द का अभिप्राय वस्तुतः "समानार्थक" से है। किसी भी विषय के विभिन्न पहलुओं के स्वरूप समानार्थक अनेक शब्दों द्वारा सरलता से सम-

भाये जा सकते है। एक ही विषय के लिये विभिन्न देशों में विभिन्न शब्द प्रयुक्त होते हैं। एकार्थक कोश मे उन सब शब्दो का संकलन किया जाता है। अतः विभिन्न देशों के शिष्य अपनी अपनी बोली में उस विषय को स्पष्ट रूप से ऐसे कोश के माध्यम से समझ लेते हैं।

बृहत्कल्पभाष्य मे एकार्थक कोश के गुण बन्धानुलोमता आदि बताये हैं। लेखक का एकार्थक सम्बन्धी ज्ञान जितना समृद्ध होगा, उसका रचनाकौशल भी उतना ही गम्भीर होगा, सौष्ठवपूर्ण होगा। "वचोविन्यासवैचित्र्य" भी इस ज्ञान का एक फलित है।

प्राचीन काल में पर्यायवाची शब्दो द्वारा ही किसी पदार्थ के विभेद, गणना, लक्षण, निरूपण और परीक्षण किये जाते थे। उदाहरणार्थ, 'आभिणि-बोहिय' शब्द के पर्यायवाची ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, स्मृति, मति, प्रज्ञा आदि शब्दो के आधार पर आभिनिबोधिक ज्ञान के विभाग, लक्षण एव अन्य विशेष विवरण हमें सहज ही उपलब्ध हो जाते है। आभिनिबोधिक या मतिज्ञान के इन विभिन्न पर्यायों के आधार पर ही जैन तार्किकों ने प्रमाणशास्त्र का निर्माण किया है। परवर्ती समय में रचित पारिभाषिक ग्रन्थ इन पर्यायवाची शब्दों के ही परिष्कृत रूप हैं।

एकार्थवाची शब्दों के आधार पर हम किसी विषय का सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, अहिंसा शब्द के अन्तर्गत आए हुए ६० शब्दों के माध्यम से अहिंसा-साधना के मूलभूत उपाय, अहिंसा का स्वरूप तथा उसकी फलनिष्पत्ति को हम सूक्ष्म रूप से हृदयंगम कर सकते हैं। शील, संवर, गुप्ति, क्षांति, यतना, अप्रमाद आदि शब्द अहिंसा-साधना के उपायों के द्योतक हैं। दया, कान्ति, विरति, कल्याण, नन्दा, भद्रा, विभूति आदि शब्द उसके स्वरूप के वाचक हैं। निर्वाण, बोधि, समाधि, सिद्धावास, निर्वृति आदि शब्द अहिंसा की फलनिष्पत्ति के वाचक हैं।

प्रस्तुत एकार्थक शब्दकोष के अवलोकन से जैन दर्शन सम्बन्धी कई बातें स्पष्ट रूप से हमारे सामने उभर आती हैं, जो उसकी विशेषताओं का स्पष्ट निर्देश करती हैं। उदाहरणार्थ, "मोहणिज्जकम्म" के पर्यायों को लीजिये। इन पर्यायों में मात्र चारित्र मोहनीय के अंगों का निर्देश है। दर्शन मोहनीय कर्म का उल्लेख बिल्कुल नहीं हुआ है। इसके विपरीत पाली ग्रन्थों में जब मोह शब्द के पर्यायों को देखते हैं तो मात्र अज्ञान या अविद्या से सम्बन्धित

शब्दों को ही पाते हैं, चारित्र मोहनीय से सम्बंधित किसी शब्द का समावेश वहां नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि के ३० से भी अधिक पर्याय धम्म-संगणि जैसे बौद्ध ग्रंथ में उपलब्ध होते हैं जबकि आवश्यक निर्युक्ति में सम्यक्त्व-सामायिक के मात्र ये ७ पर्याय निर्दिष्ट हैं—सम्यग्दृष्टि, अमोह, शोधि, सद्भावदर्शन, बोधि, अविपर्यय एवं सुदृष्टि। ऐसा प्रतीत होता है कि जैनाचार्यों ने सम्यग्दर्शन के आध्यात्मिक पहलुओं पर उतना अधिक ध्यान नहीं दिया जितना कि बौद्ध चिन्तको ने। जैन कर्मग्रंथों में सम्यग्दर्शन के संबंध में अनेक गम्भीर चिन्तन उपलब्ध हैं। परन्तु उसके बौद्धिक पक्ष पर अपेक्षित प्रकाश नहीं डाला गया है। इसके विपरीत बौद्ध दार्शनिकों ने सम्यग्दर्शन पर विशेष प्रकाश इसलिए डाला कि चारित्र मोहनीय के निराकरण की आधारशिला सम्यग्दर्शन ही है। बौद्धों ने संवर को विशेष महत्व दिया परन्तु तपस्या को आध्यात्मिक साधना का अनिवार्य अंग स्वीकार नहीं किया, जैसा कि जैन परम्परा में किया गया है। यही कारण है कि चारित्र मोहनीय के पर्याय शब्द बौद्ध साहित्य में एक स्थान पर संकलित नहीं किये गये, यद्यपि राग, द्वेष, मान आदि शब्दों के पर्याय अत्यन्त विस्तृत रूप से उसमे सगृहीत हैं।

प्रस्तुत कोश एक विशाल योजना का प्रारम्भिक अग है। परमाराध्य आचार्य श्री एवं युवाचार्य श्री की प्रेरणा से जैन विश्व भारती के शोध विभाग ने जैन आगम शब्द कोश की महान् योजना बनायी है। इसी के अंतर्गत निरुक्त कोश, एकार्थक कोश, देशी शब्द कोश आदि तैयार किये गए हैं। इसी क्रम मे अभी दो कोश—निरुक्त कोश तथा एकार्थक कोश प्रकाशित किए जा रहे हैं। प्रस्तुत कोश का सुव्यवस्थित संकलन एव सम्पादन कर **समणी कुसुमप्रज्ञा** ने अत्यधिक श्रमसाध्य कार्य को अत्यल्प समय में सम्पूर्ण किया है। इस कार्य में इन्हे मुनि श्री दुलहराज जी का मार्ग-दर्शन निरन्तर प्राप्त होता रहा है। प्रस्तुत कोश में तीन महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट भी संलग्न किये गये हैं, जिनके आधार पर पाठक सरलता मे इस कोश का उपयोग कर सकते हैं। द्वितीय परिशिष्ट में एकार्थक शब्दो की सार्थकता को समझाने का प्रयत्न किया गया है जो कि सराहनीय है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह कोश सुधी समाज मे समादर प्राप्त करेगा।

लाडनूं
२८-१-८४

नथमल टाटिया
निदेशक, अनेकान्त शोधपीठ
जैन विश्व भारती

प्रस्तुति

कोश का महत्व

लाक्षणिक साहित्य में कोश का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी भाषा की समृद्धि का ज्ञान उसके शब्दकोश से किया जा सकता है। जिस प्रकार यत्र तत्र बिखरा पानी कोई उपयोगी नहीं होता तथा अधिक मात्रा होने पर वह बाढ़ का रूप भी ले सकता है, लेकिन उसी पानी को एक स्थान पर बांधकर विद्युत् पैदा की जा सकती है तथा अनेक स्थानों पर सिंचाई आदि का कार्य किया जा सकता है। इसी प्रकार इधर उधर बिखरी हुई शब्द सम्पत्ति निरुपयोगी होती है। कोश के माध्यम से निरुपयोगी और मृत शब्दावली भी व्यवस्थित होकर जीवन्त और उपयोगी हो जाती है। इसलिए प्राचीन काल से कोश निर्माण का कार्य होता रहा है।

संस्कृत व प्राकृत आदि भाषाओं की यह विशेषता है कि शब्द प्रायः धातुओं से निष्पन्न होते हैं। इस विशेषता के आधार पर कौन शब्द किस अर्थ को ध्वनित करता है यह जानने में कोश ही एक मात्र सहायक होता है। एक ही धातु कहीं कहीं अनेक अर्थों में प्रयुक्त होती है, वहां प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न अर्थों का वास्तविक ज्ञान कोश द्वारा ही संभव है। अनेक स्थलों पर व्याकरण द्वारा व्युत्पत्ति का अर्थ शब्द के मूल अर्थ से बहुत दूर चला जाता है। वहा कोश ही वास्तविक अर्थ का ज्ञान देता है। जैसे पृश्-पालन-पूरणयो:' धातु से 'ऊष' प्रत्यय लगाने पर 'परुष' शब्द बनता है। धातु का अर्थ पालन व पूरण है लेकिन शब्द का अर्थ कठोर है, जो कि धातु के अर्थ से मेल नहीं खाता। इसी प्रकार अन्य अनेक रूढ शब्दों का ज्ञान कोश से ही संभव है।

भाषा विज्ञान के अनुसार प्रत्येक शब्द के अर्थ का अपकर्ष और उत्कर्ष होता रहता है। जैसे पाषण्डी (पाखण्डी) शब्द प्राचीन काल में व्रती के लिए प्रयुक्त था लेकिन आज उसके अर्थ का अपकर्ष हो गया। कोश के माध्यम से शब्द का इतिहास जाना जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक कोशकार केवल शब्द संचय ही नहीं बल्कि अपने पूर्वज कोश का भी सहारा लेता है।

एक ही शब्द भिन्न भिन्न क्षेत्रो, प्रकरणो एवं संदर्भों में भिन्न भिन्न अर्थ का वाचक होता है, जैसे—'उपयोग', 'धर्म', 'आकाश', 'गुण' आदि जैन दर्शन के पारिभाषिक शब्द हैं। सामान्य अर्थ से इनके अर्थों में भिन्नता है। कोश के माध्यम से भिन्न-भिन्न अर्थों का ज्ञान किया जा सकता है। कोश के बिना अर्थ-ज्ञान कठिन होता है, इसलिए विशिष्ट ज्ञान वृद्धि के लिए कोशो की रचना हुई है।

एकार्थक कोश का उत्स—

भगवती सूत्र के प्रारम्भ मे गौतम स्वामी भगवान् महावीर से पूछते हैं—एए णं भंते ! नव पदा किं एगट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा ? उदाहु नाणट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा ?—भंते। ये चलमाण चलित आदि नौ पद एकार्थक, नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले हैं अथवा अनेकार्थक, नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले हैं ?

भगवान् महावीर ने समाधान देते हुए कहा—'इनमे चलमान चलित, उदीर्यमान उदीरित, वेद्यमान वेदित और प्रहीयमान प्रहीन आदि चारों पद एकार्थक, नानाघोष व नानाव्यञ्जन वाले हैं।'[1]

टीकाकार ने इसी तथ्य को चार विकल्पो के माध्यम से बहुत सुन्दर रूप में निरूपित किया है। जैसे—

१. एकार्थक—एक व्यजन वाले—जैसे क्षीर क्षीर आदि।

२. एकार्थक—नाना व्यजन वाले—जैसे क्षीर, पय आदि।

३. अनेकार्थक—अनेक व्यञ्जन वाले—जैसे अर्कक्षीर, गव्यक्षीर, महिषक्षीर आदि।

४. अनेकार्थक—नाना व्यञ्जन वाले—जैसे घट, पट आदि।

इसमे दूसरा विकल्प कोश की उत्पत्ति का कारण है।

टीकाकार ने चलमान चलित आदि चारों शब्दों में स्पष्ट रूप से आर्थिक विभेद स्वीकार करते हुए भी इनको उत्पाद पर्याय की अपेक्षा से

---

१. भग १/१२ : गोयमा ! चलमाणे चलिए, उदीरिज्जमाणे उदीरिए, वेदिज्जमाणे वेदिए, पहिज्जमाणे पहीणे—एए णं चत्तारि पदा एगट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा।

एकार्थक माना है ।[1]

एकार्थक का प्रयोजन—

प्राचीन काल मे प्रत्येक विषय को बारह प्रकार से समझाया जाता था। उसमे एकार्थक का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।[2] इस प्रकार कोश ज्ञान अलग से न कराकर विषय के अध्ययन के साथ ही करा दिया जाता था। बृहत्कल्प भाष्य में उल्लेख है कि साधु को विविध भाषाओं में कुशल होना चाहिए, जिससे कि वह जनता को अधिक लाभ पहुंचा सके।[3]

एकार्थक का प्रयोजन बताते हुए ग्रन्थकारों ने अनेक स्थलों पर कहा है कि अनेक देशों के शिष्यो के अनुग्रह के लिए एकार्थकों का प्रयोग होता है।[4] प्राचीन काल मे गुरु के पास विभिन्न देशों के विद्यार्थी उपस्थित होते थे। उन्हें अवबोध देने के लिए एक ही शब्द के वाचक विभिन्न देशों में प्रचलित शब्दो का प्रयोग किया जाता था, जिससे सभी शिष्य अपनी-अपनी भाषा में उस तथ्य को समझ सकें। यही कारण है कि शास्त्रों में एक अर्थ के वाचक विभिन्न प्रान्तीय शब्दों का सभार स्वत: विकसित होता चला गया। उदाहरणार्थ—दुग्ध, पय, वालु, पीलु और क्षीर ये दूध के एकार्थक हैं। इनमें आज भी वालु (हालु) शब्द कर्नाटक मे तथा पीलु (पाल) शब्द तमिलनाडु में दूध का वाचक है। इस प्रकार एकार्थको से विभिन्न शब्दों के आधार पर भाषा वैज्ञानिक तथा सास्कृतिक इतिहास का अवबोध भी मिलता है। चूर्णिकार ने स्तुति और स्तव को भिन्न-भिन्न देशों में प्रयुक्त होने वाले एकार्थक माना है।[5]

एकार्थको के प्रयोग का दूसरा प्रयोजन यह प्रतीत होता है कि किसी बात पर बल देने के लिए तथा उसकी विशेषता प्रकट करने के लिए भी

---

१. भटी प १७।

२. अनुद्वारमटी प ६ : निक्खेवेगट्ठ निरुत्ति विही पवत्ती य केण वा कस्स।
तद्दारभेयलक्खणतदरिहपरिसा य सुत्तत्थो॥

३. बृभा १२२१।

४. जंबूटी प १३ : नानादेशविनेयानुग्रहार्थं एकार्थिकाः।

५. नंदीचू पृ ४९ : अन्योन्यविषयप्रसिद्धा ह्येते एकार्थवचनाः।

एकार्थक शब्दों का प्रयोग होता है।[1] जैसे—भाव-क्रिया के प्रसंग में 'तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए' ये सभी शब्द भावक्रिया की महत्ता को व्यक्त कर रहे हैं।[2] इस प्रकार प्रसंगवश एक ही अर्थ के वाचक अनेक शब्दों का प्रयोग पुनरुक्ति दोष नहीं है।[3]

एकार्थक शब्दों से व्युत्पन्न मति छात्र एक प्रसंग के साथ अनेक शब्दों का ज्ञान कर लेते थे और मंद बुद्धि छात्र विभिन्न शब्द पर्यायों से अर्थ समझ लेते थे। इस प्रकार एकार्थक का कथन दोनों प्रकार के शिष्यों के लिए लाभप्रद होता था।[4] और पदार्थ विषयक कोई मूढता नहीं रहती थी।[5] देखें—'पिंड', 'उग्गह', 'दुम', 'आगासत्थिकाय' आदि।

छंद-रचना मे रिक्तता की पूर्ति के लिए भी एकार्थक शब्दो की आवश्यकता होती है, जिससे उसी अर्थ का वाचक दूसरा शब्द प्रयुक्त किया जा सके।[6] अनुप्रास अलंकार का प्रयोग वही कर सकता है जिसका एकार्थक शब्द-ज्ञान समृद्ध होता है।

एकार्थक कोश क्या ? क्यों ?

एकार्थक शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए स्थानांग टीका मे लिखा है कि

---

१. (क) भटी प १४ : समानार्थाः प्रकर्षवृत्तिप्रतिपादनाय स्तुतिमुखेन ग्रन्थकृतोक्ताः।
   (ख) अंत टी प १६ : एकार्थशब्दोपादानं तु प्राधान्यप्रकर्षख्यापनार्थम्।
   (ग) ज्ञाटी प १७ : ......एकार्थशब्दत्रयोपादानं चात्यन्तशुक्लताख्यापनार्थम्।

२. अनुद्वामटी प २७ : एकार्थिकानि वा विशेषणान्येतानि प्रस्तुतोपयोगप्रकर्षप्रतिपादनपराणि।

३. भटी प ११६ : एकार्थशब्दोच्चारणं च क्रियमाणं न दुष्टम्।

४. नंदीटी पृ ५८ : विनेयजनसुखप्रतिपत्तए मतिज्ञान ....

५. अनुद्वाहाटी पृ २० : असम्मोहार्थं पर्यायनामानि।

६. विभाकोटी पृ ६३८ : एतदनेकपर्यायाख्यानं प्रदेशान्तरेषु सूत्रबन्धानुलोम्यार्थम्.........।

जिन शब्दों का एक ही अभिधेय/अर्थ हो, वे एकार्थक कहलाते हैं।[1] इसके लिए अभिवचन शब्द का प्रयोग भी हुआ है।[2] इसके अतिरिक्त आवश्यक निर्युक्ति में चार प्रकार की सामायिकों के पर्याय दिये हैं। उस प्रसंग में एकार्थक के लिए 'निरुक्ति' और 'निर्वचन' शब्द का उल्लेख मिलता है।[3] जैसे—

सम्यक्त्व सामायिक के एकार्थक—

> सम्मद्दिट्ठि अमोहो, सोही सब्भाव दंसणं बोही।
> अविवज्जओ सुदिट्ठि त्ति, एवमाइ निरुत्ताइं॥

श्रुत सामायिक के एकार्थक—

> अक्खर सन्नी-संमं, सादियं खलु सपज्जवसियं च।
> गमियं अंगपविट्ठं सत्त वि एए पडिवक्खा॥

यहां निर्युक्तिकार ने श्रुतसामायिक के भेदों को ही उसके पर्याय मान लिये हैं।

देश विरति सामायिक के एकार्थक—

> विरयाविरई संवुडमसंवुडे बालपंडिए चेव।
> देसेक्कदेसविरई, अणुधम्मो अगारधम्मो य॥

इसी प्रकार सर्वविरतिसामायिकनिरुक्तिमुपदर्शयन्नाह—

> सामाइयं समइयं सम्मावाओ समास संखेवो।
> अणवज्ज च परिण्णा, पच्चक्खाणे य ते अट्ठ॥

(आवनि ८६१-६४)

भारोपीय भाषा परिवार मे संस्कृत व उसके समकक्ष प्राकृत, पालि आदि भाषाओं की विशेषता है कि उसमें एक शब्द को बताने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। भाषाविदो के अनुसार कोई भी दो शब्द वस्तुतः एक अर्थ को व्यक्त नहीं करते। एकार्थवाची शब्दों का दूसरा नाम पर्यायवाची है। यह शब्द अधिक सार्थक प्रतीत होता है। जैन दर्शन में पर्याय शब्द पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त है। एक ही पदार्थ या व्यक्ति के लिए जब दो शब्दों का प्रयोग होता है तब वे प्रायः उस पदार्थ या व्यक्ति की दो भिन्न-भिन्न पर्यायों को व्यक्त करते हैं। जैन दर्शन में इसे समभिरूढनय के द्वारा

---

१. स्थाटी प ४७२।
२. भ २०/१५।
३. आवहाटी पृ २४२ : चतुर्विधस्यापि सामायिकस्य निर्वचनम्।

समझाया गया है। उदाहरण के लिए इन्द्र शब्द के पर्याय में जब शक्ति को बताना हो तब 'शक्र' शब्द का प्रयोग होता है और जब ऐश्वर्य बताना हो तब 'इंद्र' तथा पाक नामक शत्रु को नाश करने की मुख्यता को द्योतित करना हो तो 'पाकशासन' शब्द का प्रयोग होगा। इसी प्रकार इन्द्र के अन्य नामों की सार्थकता भी है। (देखें—'सक्क')। ये सभी शब्द भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के निमित्त से भिन्न होते हुए भी इंद्र अर्थ के वाचक हैं, अतः ये एकार्थक हैं।[1]

इस प्रकार एकार्थक/पर्यायवाची शब्द हमारी शब्द-समृद्धि ही नहीं, बल्कि किसी भी पदार्थ या व्यक्ति विषयक पूरी जानकारी प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के रूप मे हम 'उवहि' शब्द पर विचार करें। उसके आठ पर्यायवाची शब्द हैं। वे सब 'उपधि' की विभिन्न अवस्थाओं और विशेषताओं के द्योतक हैं। इन पर्याय शब्दो से उपधि का पूरा रूप सामने आ जाता है।[2]

इसी प्रकार 'दिट्ठिवाय', 'ववहार', 'अहिंसा', 'अदत्तादान' आदि शब्दों के विभिन्न पर्याय संपूर्ण विषय-वस्तु का बोध कराते हैं।

एकार्थक संचयन की प्रक्रिया

प्रारम्भ मे आगमो के प्राकृत भाषा के साहित्य मे जहां 'एगट्ठा' या 'पज्जाया' शब्दों का उल्लेख था उन्हीं एकार्थको का संकलन किया था किन्तु पुनश्चिन्तन किया गया कि संस्कृत टीका साहित्य मे भी अनेक महत्वपूर्ण एकार्थको का प्रयोग हुआ है तथा चूर्णि साहित्य में भी मिश्रित भाषा के प्रयोग से बहुत एकार्थक विशुद्ध संस्कृत जैसे प्रतीत होते हैं जैसे—घातो हिंसा मारणं दंड अधर्म इत्यनर्थान्तरम्" (सूचू २ पृ ३३८)। अतः संस्कृत व्याख्या साहित्य के एकार्थक शब्दों का भी संचयन किया गया, जैसे—रयः वेगः चेष्टाऽनुभवः फलमित्यनर्थान्तरम् (आवहाटी १ पृ २६३)। इस प्रकार यह संस्कृत और प्राकृत भाषा का सम्मिश्रित कोश है। कोश की परम्परा में संभवतः यह प्रथम कोश है जिसमे संस्कृत और प्राकृत भाषा के शब्दों का एक साथ संकलन है।

---

१. अनुद्वामटी प २४६ : ······परमैश्वर्यादीनि भिन्नान्येवात्र भिन्नप्रवृत्ति-निमित्तानि······।

२. ओनिटी प २०७ : 'तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्या' इति न्यायात् पर्यायानु-प्रतिपादयन्नाह।

आगमों के मूल पाठ में अनेक स्थलों पर एक शब्द के वाचक अनेक शब्दो का उल्लेख एकार्थक का निर्देश किये बिना किया गया है। उन सबका समावेश भी इस कोश में अनिवार्य प्रतीत हुआ, जैसे—'आहण्ण', 'उक्किट्ठ' 'आसुरत्त' इत्यादि। व्याख्या साहित्य मे इन शब्दो की भिन्न भिन्न व्याख्या देते हुए भी इनको एकार्थक माना है।[1] कहीं कही शब्द एकार्थक जैसे प्रतीत नहीं होते लेकिन प्राचीन आचार्यों ने उनको एकार्थक माना है, जैसे—अशन, पान, खादिम और स्वादिम—ये चारो शब्द भोज्य वस्तुओं की भिन्नता के बोधक हैं, परन्तु इनको भोज्य वस्तु की अपेक्षा से एकार्थक माना है।[2] इसी प्रकार 'विपरिणामइत्ता' आदि चारो शब्द भिन्नार्थक प्रतीत होते हैं। इन्हें भी विनाश के वाचक होने से एकार्थक माना है।[3]

एक बार कार्य का निरीक्षण करते हुए युवाचार्य प्रवर ने फरमाया कि व्याख्या ग्रंथो मे ग्रंथकार ने किसी शब्द को स्पष्ट करने के लिए उसके वाचक यदि तीन या चार शब्दो का उल्लेख किया है तो उनका समावेश भी इस कोश मे हो सकता है। इस दृष्टि से टीका साहित्य का पुनः पारायण किया गया तथा अनेक महत्त्वपूर्ण एकार्थक इस कोश के साथ जुड़ गये। जैसे—'फुल्ल' 'अनुकाश' 'आपूरित' 'वर्द्धन' इत्यादि।

इस कोश को तैयार होते-होते अनेक बार कार्डों को बदलना पड़ा। अन्तिम रूप देते समय एक ही शब्द से शुरू होने वाले अनेक कार्ड थे। उसमें छांटना था कि कोई शब्द छूट न जाये तथा पुनरुक्ति भी न हो। प्रारम्भ मे हमने क-ग, त-य, र-ल, ण-न आदि व्यञ्जनो के अन्तर वाले एकार्थको का भी इसमे समावेश किया था, लेकिन पुनश्चिन्तन के पश्चात् उनको छोड़ दिया। क्योकि सामान्यतः प्राकृत का पाठक इस अंतर को समझ सकता है। जहां प्राकृत भाषा मे निर्युक्ति, चूर्णि आदि मे एकार्थक आया है और वहो यदि

---

१. (क) भटी प १५५ : आइण्णमित्यादयः एकार्था अत्यन्तव्याप्तिदर्शनाय।

(ख) वही प १७८ : एकार्था चैते शब्दाः प्रकर्षवृत्तिप्रतिपादनाय।

(ग) उपाटी पृ १०५ : एकार्था शब्दाः कोपातिशयप्रदर्शनार्थाः।

२. प्रसाटी प ५१।

३. भीवटी प २१ : विपरिणामइत्ता······एतानि चत्वार्यपि पदान्येकार्थिकानि विनाशार्थप्रतिपादकानि नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपात्तानि।

संस्कृत भाषा में टीका साहित्य में आया है तो उसका संकलन हमने नहीं किया है। इसके अतिरिक्त एक ही एकार्थक का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है, जैसे—'हेतु निमित्तं कारणमिति पर्याया:' आदि। उनमें कालक्रम का ध्यान न रखते हुए जहां अधिक स्पष्टता लगी उसी को प्रमुखता दी है।

प्रस्तुत कोश में एकार्थकों का संचयन बहुत व्यापक संदर्भ में हुआ है। एक ही जाति के द्योतक व्यक्ति या पदार्थ को जातिगत समानता के आधार पर एकार्थक माना है, जैसे—'उप्पल' 'पदुम' के एकार्थक कमल की विभिन्न जातियों के वाचक हैं, पर जातिगत समानता के कारण इनको एकार्थक माना है। इसी प्रकार 'अंताहार', 'सेज्जा' आदि भी द्रष्टव्य हैं।

कुछ शब्दों को उपादान की समानता से एकार्थक माना है। जैसे 'अरंजर' शब्द के पर्याय में सभी शब्द भिन्न-२ आकार के घड़ों के वाचक हैं, लेकिन सभी मिट्टी से निर्मित हैं अत: उपादान की समानता से इनको एकार्थक स्वीकृत किया है। मन मे एक प्रश्न था कि इन शब्दों का एकार्थक प्रयोग से उन शब्दों का निश्चित अर्थ निर्धारण नहीं किया जा सकता। परन्तु इस दुविधा का समाधान चूर्णिकर एवं टीकाकारों ने कर दिया, क्योंकि उन्होंने भी व्यापक अर्थ मे एकार्थकों का प्रयोग किया है जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

नंदी चूर्णि में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है कि भिन्न भिन्न अर्थ होने पर भी शब्दों को एकार्थक मानना क्या विरोध नहीं है? चूर्णिकार ने स्वयं इस प्रश्न को समाहित किया है कि किसी भी वस्तु के स्वरूप को समवेत रूप से देखने पर यह विरोध नही है। भिन्न भिन्न दृष्टि से देखने पर विरोध हो सकता है।[1] इसी अभिप्राय को ध्यान में रखकर हमने अनेक ऐसे एकार्थको का संकलन किया है, जैसे—'तट्टक' 'कुंडल' 'भग्ग', 'ओसारित' आदि।

एकार्थक कोश के साथ यह समानार्थक भी है। कुछ एकार्थक समवेत रूप से एक ही अर्थ व्यक्त करते हैं, जैसे—'पीणणिज्ज', 'अब्भिय', थेज्ज' इत्यादि।

---

१. नंदीचू पृ ३६ : ननु भिन्नत्थदंसणे एगट्ठित त्ति विरुद्धं ? उच्यते न विरुद्धं, जतो समविकप्पेसु ।......

इसी प्रकार प्रस्तुत कोश में एक ही पदार्थ अथवा भाव की क्रमिक अवस्था व्यक्त करने वाले शब्दों का भी एकार्थक में समावेश है। जैसे—'फासिय', 'महासुत' आदि। 'फासिय' आदि शब्द व्रतपालन की उत्तरोत्तर अवस्थाओं के वाचक हैं।

जहां 'एगट्ठा', पज्जाया', या अनर्थान्तरम् शब्द का प्रयोग हुआ है वहां हमने दो शब्दो को भी इस कोश में समाविष्ट किया है, जैसे—ऊसढं ति वा उच्चं ति वा एगट्ठा। राशिर्गच्छ इत्यनर्थान्तरम्। भोच्चं ति वा संखडि त्ति वा एगट्ठं। लेकिन जहां उन शब्दों का उल्लेख नहीं है वहां हमने दो समानार्थक शब्दो को इसमें संगृहीत नहीं किया है।

सामान्यत: इस कोश मे जिस शब्द से एकार्थक प्रारम्भ हुआ है उसी को मुख्य शब्द के रूप मे रखा है। लेकिन जहां कहीं टीकाकार, चूर्णिकार ने किसी विशेष शब्द के एकार्थक का निर्देश किया है वहां प्रारम्भिक शब्द को मूल न मानकर निर्दिष्ट शब्द को मूल माना है। जैसे—

समया समत्त पसत्थ सति सुविहिअ सुह अनिद च।
अदुगुंछियमगरहियं अणवज्जमिमेऽवि एगट्ठा॥ (आवनि १०३३)

यह गाथा 'समया' से प्रारम्भ होती है लेकिन हरिभद्र ने इस गाथा को सामायिक का पर्याय माना है। इसी प्रकार 'पवयण', 'भिक्खु', 'कम्म', 'चंडाल' आदि भी द्रष्टव्य हैं।

अनेक स्थलो पर एकार्थक गाथा मे भी अन्तिम पद में भाष्यकार अथवा निर्युक्तिकार ने किसी विशिष्ट शब्द के एकार्थक का उल्लेख किया है तो उसी को मूल माना है। जैसे—

ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।
सण्णा सई मई पण्णा, सव्व आभिणिबोहियं॥ (नंदी ५४)

—ये सब 'आभिणिबोहिय' के एकार्थक हैं।

यद्यपि इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि शब्दों की पुनरावृत्ति न हो, लेकिन जहा कही भी एक अर्थ का वाचक दूसरे शब्द से प्रारम्भ होने वाला एकार्थक आया है, यदि एक या दो शब्द भी उसमे नवीन हैं तो उन दोनों को अलग अलग ग्रहण किया है, जैसे—इंद शब्द के पर्याय में लगभग

सभी शब्द 'सक्क' में समविष्ट हैं, लेकिन 'इंव' शब्द नवीन है इसीलिए विशेष लक्ष्यपूर्वक इसको अलग लिया गया है।

अनेक स्थलो पर एक एकार्थक के अन्तर्गत नवीन शब्द की दृष्टि से तीन-चार एकार्थको का समावेश उसी के नीचे कर दिया है, जैसे—

१. आण त्ति उववायो त्ति उवदेसो त्ति आगमो त्ति वा एगट्ठा।

२. आणे ति वा सुतं ति वा वीतरागादेसो त्ति वा एगट्ठा।

३. आण त्ति वा नाण त्ति वा पडिलेहि त्ति वा एगट्ठा।

४. आणा-उववाय-वयण-निद्देसे।

प्रस्तुत कोश में एक ही शब्द के पर्याय विभिन्न शब्दो से प्रारम्भ हो रहे हैं। इससे उस शब्द विषयक अनेक पर्यायों का ज्ञान सहज ही हो सकता है। जैसे माया के एकार्थक 'उक्कंचण', 'कूड', 'कवड', 'माया', 'कक्क', 'पलिउंचण' आदि विभिन्न शब्दों से प्रारम्भ हो रहे हैं। इनको एक स्थान पर देने से अनुक्रमणिका के क्रम मे असुविधा थी। लेकिन किसी भी शब्द के ज्ञान के लिए परिशिष्ट-१ सहयोगी हो सकता है।

अनेक स्थलो पर एक संस्कृत के शब्द के दो प्राकृत रूपो को एकार्थक माना है। जैसे—इसि त्ति वा रिसि त्ति वा एगट्ठ। अणं ति वा रिणं ति वा एगट्ठा। भवति त्ति वा हवइ त्ति वा एगट्ठा। यहां ऋषि, ऋण और भवति शब्द के ही दो प्राकृत रूप बने हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत व्याकरण का ज्ञान भी एकार्थकों के माध्यम से कराया जाता था।

इसी प्रकार कहीं कहीं चूर्णिकारो ने सामान्य एकार्थको का प्रयोग किया है जैसे—उभओ त्ति वा दुहओ त्ति एगट्ठा बहवे त्ति वा अणेगे त्ति वा एगट्ठा। ऐसे एकार्थकों का प्रयोग प्राचीन पाठन पद्धति पर विशेष महत्व डालते हैं।

भगवती सूत्र मे क्रोध आदि चारों कषायों के एकार्थक उल्लिखित हैं। समवायांग में 'मोहनीय कर्म' के पर्याय के रूप में वे ही नाम संगृहीत हैं। क्रोधादि के तथा मोहनीय कर्म के पर्यायों को शब्द-गत समानता होने पर भी अर्थभेद की दृष्टि से अलग ग्रहण किया है।

कहीं कहीं एक ही गाथा दो भिन्न-भिन्न अर्थों मे प्रयुक्त है। उसको भी हमने अलग अलग ग्रहण किया है। जैसे पावे वज्जे वेरे······।

यह गाथा 'पाप' और 'कर्म'—दोनों अर्थों में प्रयुक्त है। इसी प्रकार 'पतिट्ठा' और 'अवत्था' आदि।

अनेक एकार्थक एक ही शब्द के आगे उपसर्ग आदि लगने से एक ही अर्थ के वाचक बन गये हैं। टीकाकार ने इनको एकार्थक माना है।[1] जैसे—अक्कोहा निक्कोहा खीणकोहा।

इसी प्रकार 'अमोह', 'अणावरण', 'अगोय' आदि द्रष्टव्य हैं। ऐसे एकार्थकों का प्रयोग अन्य कोशों में देखने को नहीं मिलता।

प्रस्तुत कोश में पांच अस्तिकाय के एकार्थक अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। 'धम्मत्थिकाय' (धर्मास्तिकाय) के पर्याय मे प्राणातिपात विरमण से मनगुप्ति तक के शब्द धर्म के विविध अंग हैं जो कि धर्मास्तिकाय से सर्वथा पृथग् हैं। लेकिन धर्म शब्द के साधर्म्य से सूत्रकार ने इनको धर्मास्तिकाय के अभिवचन/पर्याय के रूप मे संगृहीत कर लिया है।[2]

प्रस्तुत कोश मे आगम ग्रंथों के अध्यायों के एकार्थक नवीनता के परिचायक हैं। 'दुमपुप्फिया' के एकार्थक के प्रसंग में दशवैकालिक के प्रथम अध्ययन को जिन जिन उपमाओ से उपमित किया, उनको इस अध्ययन के पर्यायवाची स्वीकृति कर लिया।[3] इसी प्रकार बाहरवें अंग 'दिट्ठिवाय' तथा दशवैकालिक के चतुर्थ अध्ययन 'जीवाभिगम' के पर्याय भी ग्रंथकारों ने उसकी वर्ण्य-वस्तु के आधार पर स्वीकृत किये हैं।

प्रस्तुत कोश मे अनेक महत्वपूर्ण जैन पारिभाषिक शब्दों के पर्याय संकलित हैं, जैसे—'तमुक्काय' 'अकम्मवीरिय', 'उक्खोडभंग', 'लघुक' 'द्वितीयसमवसरण आदि।

प्राकृत भाषा के कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। जैसे—'संत', 'माण', 'आगार', 'सक्क' आदि।

'संत' चार अर्थों का वाचक है—तथ्य, शान्त, श्रान्त और सत्।

'माण' दो अर्थों का वाचक है—अभिमान और परिमाण।

'अगार' दो अर्थों का वाचक है—आकृति और घर।

'सक्क' दो अर्थों का वाचक है—शक्र और शक्य।

---

१. औपटी पृ २०२ : एकार्था वैते शब्दाः; अनुद्वारमटी प १०७।

२. भटी पृ १४३१।

३. दशहाटी प १८।

इन सबके एकार्थक इस कोश में गृहीत हैं।

प्रस्तुत कोश में शब्दों के साथ धातुओं के एकार्थक भी संगृहीत हैं। जैसे 'उक्कीयति', 'आसाएइ', 'फासेइ, आदि। एक ही धातु के अनेक उपसर्ग लगाकर भी उसको एकार्थक माना है जैसे—'आलुक्कई पलुक्कई लुक्कई संलुक्कई व एगट्ठा' यहां 'लोकृङ्-दर्शने' धातु के आगे ही विभिन्न उपसर्ग हैं। लेकिन अर्थ की दृष्टि से साम्य है। इसके विपरीत अनेक स्थलों पर उपसर्ग के साथ ही धातु का अर्थ ही बदल गया है जैसे—'परिभासति', 'उप्पज्जते', 'उद्दवेति' इत्यादि।

इसके अतिरिक्त अनेक कालों में प्रयुक्त धातुओं के उदाहरण इसमें समाविष्ट हैं, जैसे—'बयाहि', 'आलिज्जाति' 'छड्डे', 'चितेहिति', इत्यादि।

इसी क्रम में कृदन्त तथा तद्धित के प्रत्ययों के भी एकार्थक इसमें हैं। जैसे—'छिदंत', 'पीणणिज्ज', 'सोऊण', 'नस्समाण', 'पडुच्च', 'वसित्तु', 'छर्दितुम्', 'इट्ठता', इत्यादि।

कोश का बाह्य स्वरूप

यह कोश गद्य और पद्य मिश्रित है। इसमें मूल एकार्थक १४९७ हैं तथा करीब २०० अवान्तर एकार्थक मिलाने से करीब १७०० एकार्थको का संकलन है। प्रत्येक एकार्थक का अर्थ-निर्देश और प्रमाण दिया गया है। उसमे लगभग ८००० शब्दो का संकलन है।

इस कोश में अनेक भाषाओं का मिश्रण है। आगम ग्रंथों के आर्ष-प्रयोग सहज ही इसमें समाविष्ट हैं। इसके अतिरिक्त प्राकृत भाषा के अनेक प्रयोग इसमें हैं।

इसके साथ अनेक देशी शब्दों का संकलन भी इस कोश में स्वतः हो गया है। अनेक एकार्थको मे सभी शब्द देशी हैं। परिशिष्ट नं० २ में अनेक स्थलों पर हमने देशी शब्दों का निर्देश किया है।

भाषा की दृष्टि से इस कोश का एक वैशिष्ट्य है कि कुछ एकार्थक एक ही व्यञ्जन से शुरू हुए हैं, जैसे—'पम्हुट्ठ' शब्द के पर्याय में २१ शब्द हैं। सभी शब्द 'प' से प्रारम्भ हुए हैं। इसी प्रकार 'णिस्सारित', 'उल्लोइत', 'णिम्मज्जित' आदि ज्ञातव्य हैं।

परिशिष्ट

इस कोश में तीन परिशिष्ट दिये गए हैं। प्रथम परिशिष्ट में इस कोश में प्रयुक्त सभी शब्दों की अकारादि क्रम से सूची है। इस परिशिष्ट में लगभग ८००० शब्द हैं। एक ही शब्द के पर्याय में जहां क-ग, त-य, ण-न आदि व्यञ्जनों का भेद था वहां एक ही शब्द लिया है।

इस परिशिष्ट की विशेषता यह है कि इसमें शब्द-ज्ञान के लिए कोष्ठक में मूल शब्द दिया है, जिससे सामान्यतः केवल परिशिष्ट देखने मात्र से अर्थ का ज्ञान हो सकता है। परिशिष्ट में शब्दों को निर्विभक्तिक और प्रत्यय रहित लिया है, जबकि धातुओं को सुविधा के लिए प्रत्यय सहित लिया है।

द्वितीय परिशिष्ट में एकार्थको की स्पष्टता, तथा सार्थकता प्रमाण सहित टिप्पणों के रूप में व्याख्यायित है। जैसे—'अलिय', 'परिग्गह' आदि शब्दो के ३०-३० पर्याय उल्लिखित हैं। उनकी विशेष व्याख्या टीका के आधार पर परिशिष्ट २ में दी गयी है। द्वितीय परिशिष्ट में लगभग ३२६ टिप्पण हैं। टिप्पणों के साथ आगमेतर साहित्य में उसके संवादी एकार्थक मिले हैं, उनको भी जोड़ा गया है। जैसे—'अवग्रह', 'ईहा', 'क्रोध', चित्त आदि।

तृतीय परिशिष्ट धातुओं के अनुक्रम का है। कोश में जितनी भी धातुएं हैं उनकी मूल प्रकृति तथा उनका अर्थ-निर्देश है। धातुओं का निर्देश धातु पारायण के आधार पर किया गया है। कहीं कहीं टीकाकार और चूर्णिकार ने भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त धातुओ को भी एकार्थक माना है, जैसे—

१. 'वोसिरति विसोधेति णिल्लवेति त्ति एगट्ठा'।

२. चाएति साहति सक्केइ वासेइ तुट्ठाएति वा धाडेति वा एगट्ठा।

परिशिष्ट मे कोशिश की गयी है कि मूल अर्थ की संवादी धातु लिखें लेकिन अनेक स्थलों पर मूल धातु खोजना कठिन प्रतीत हुआ वहा प्रश्नचिह्न लगाकर छोड़ दिया है। इस परिशिष्ट में गण और प्रक्रिया का निर्देश न करके केवल धातु का ही उल्लेख किया गया है।

अनेक स्थलो पर टीकाकार ने धातुओं को एकार्थक मानते हुए भी अर्थ-भेद किया है, जैसे—'सहइ' धातु के एकार्थक में—

सहते—अभय होकर सहना।
क्षमते—क्रोध मुक्त होकर सहन करना।
तितिक्षते—दीनता रहित होकर सहना।

अधिसहते—अत्यधिक सहना।[1]

प्रस्तुत कोश में धातुओं के अनेक रूप निर्दिष्ट हैं। हमने इस परिशिष्ट में उनके एक-एक रूप का ही निर्देश किया है। कालगत तथा विभक्तिगत तथा व्यञ्जनों के रूपान्तर का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रेस में टाईप न होने से दीर्घ ॠकार वाले शब्दों के स्थान पर ह्रस्व ऋ का प्रयोग किया गया है। जैसे पृ दृ इत्यादि।

प्रस्तुत कोश में एकार्थकों का संकलन लगभग सौ ग्रन्थों से किया गया है। उनमें कुछेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ये हैं—

भगवती

इस ग्रंथ में जैन सिद्धान्त व दर्शन सम्बन्धी महत्वपूर्ण एकार्थक उपलब्ध हुए हैं। जैसे—'तमुक्काय', 'कण्हराति', 'पांच अस्तिकाय', 'चार कषाय' आदि। इसके साथ 'राहु' के नौ नाम नवीनता लिए हुए हैं। इसके अतिरिक्त प्रकीर्णक रूप से और भी अनेक एकार्थक इसमें हैं।

प्रश्नव्याकरण

इसमें पांच आस्रव के ३०-३० तथा अहिंसा के ६० पर्याय उल्लिखित हैं। सामान्यत: ये एकार्थक प्रतीत नहीं होते लेकिन टीकाकार ने बहुत स्पष्टता के साथ इनको एकार्थक स्वीकार किया है। इनकी स्पष्ट व्याख्या के लिए देखें—परिशिष्ट २। इसके अतिरिक्त 'पाव', 'गोणस', सद्दूल आदि अनेक स्फुट एकार्थकों का इसमें प्रयोग है।

अनुयोगद्वार

अनुयोगद्वार व्याख्यापद्धति का अनूठा ग्रंथ है। इसमे प्रत्येक विषय को समझाने के लिए पहले एकार्थक दिये हैं, जैसे—'आवस्सय', 'सुत्त', 'गण' इत्यादि।

आवश्यकचूर्णि

आवश्यकचूर्णि के एकार्थक नवीनता की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। चूर्णिकार ने लगभग अपरिचित व अनेक शब्दों से युक्त एकार्थकों का प्रयोग किया है, जो अन्य कोशों में नहीं मिलते, जैसे—'संजमतवड्डय', 'पावकम्मनिसेहकिरिया', 'कुक्कड', 'अप्पियववहारिय' इत्यादि।

---

१. अंत टी प २२ : सहत इत्यादीनि एकार्थानि पदानीति केचित्, अन्ये तु…

निशीथचूर्णि

यह आकर ग्रंथ है जिसमे प्रसंगवश सभी विषयों का विस्तार से वर्णन हुआ है। इसमें भी सुन्दर एकार्थकों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'उखडुमडु,' 'दगतीर', उक्खोडभंग' 'नयन' इत्यादि।

दशवैकालिक जिनदास चूर्णि—

दशवैकालिक एक महत्त्वपूर्ण निर्यूढ कृति है। इस पर दो चूर्णियां उपलब्ध हैं। एकार्थक की दृष्टि से जिनदास स्थविर की चूर्णि महत्त्वपूर्ण है। इसकी विशेषता यह है कि प्रायः सभी एकार्थक दो शब्दों के हैं। कहीं कहीं तीन शब्दो का उल्लेख है।

अंगविज्जा—

'अंगविज्जा' ज्योतिषविद्या का दुर्लभ ग्रंथ है। इसमें प्राचीन संस्कृति, सभ्यता व आभूषणों के अनेक नवीन पर्यायवाची शब्दों का संकलन है। जैसे— 'हत्थिक', 'कुंडल', 'अरंजर', 'णावा', 'दीहसवकुलिका' 'काहापण' इत्यादि। इसके अतिरिक्त ग्रंथकार ने अनेक स्थलों पर 'एते सद्दा समा भवे' का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ के एकार्थक प्राचीन संस्कृति व सभ्यता की समृद्धि का बोध कराते हैं। तथा लौकिक क्षेत्र में प्रयुक्त अनेक शब्दों के एकार्थक इसमें संगृहीत है।

इसके अतिरिक्त बृहत्कल्प, ओघनिर्युक्ति, जीतकल्पभाष्य आदि ग्रन्थों में भी प्रचुर मात्रा में एकार्थकों का प्रयोग हुआ है।

यह कोश अपने आप में पूर्ण है, ऐसा कहना उचित नहीं होगा, क्योंकि यत्र-तत्र कुछेक महत्त्वपूर्ण एकार्थक छूट भी गए हों। उनका संकलन परिशिष्ट में किया जाना चाहिए था, पर वैसा हो नहीं सका। आगे उसकी संपूर्ति हो, ऐसा विचार है।

कार्य का इतिवृत्त

वि० सम्वत् २०३७। चैत्र का महीना। शोध, साधना व शिक्षा की संगमस्थली जैन विश्व भारती का विशाल प्रांगण। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी का प्रवास। अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों की सयोजना। लाडनूं में स्थित पारमार्थिक शिक्षण संस्था के शैक्षणिक विकास के विषय में चिन्तन चला। जैन विश्व भारती ब्राह्मी विद्यापीठ के अन्तर्गत स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ने वाली साध्वियां व मुमुक्षु बहिनें श्रद्धेय युवाचार्यश्रीजी के उपपात में पहुंचीं।

युवाचार्यश्री ने पूछा—'तुम सबकी रुचि गहन अध्ययन में है अथवा आजकल के विद्यार्थियो की भांति केवल डिग्रियां हासिल करने में ?' सभी ने एक स्वर से उत्तर दिया—'हम गहन अध्ययन करना चाहती हैं।' उसी भाषा को दोहराते हुए युवाचार्यश्री ने पुनः फरमाया—'गहराई से सोचकर उत्तर दे रही हो अथवा केवल श्रद्धा या भावावेश में बोल रही हो ? एक क्षण के लिए हमारी मुद्रा गभीर हो गयी, लेकिन पुनः सबने करबद्ध प्रार्थना की–'गुरुदेव ! हम अध्ययन करने के लिए कृतसकल्प हैं। आचार्यप्रवर व युवाचार्यश्री के कुशल मार्गदर्शन में हम नया ज्ञान प्राप्त कर सकेंगी, ऐसा विश्वास है। हमारी मनोभावना को जानकर युवाचार्यश्री ने मन ही मन भावी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर ली।

महावीर जयन्ती का पावन दिन। सूर्य की अरुण रश्मियो के साथ हमे प्रथम वाचना प्राप्त हुई। और यह प्रथम वाचना छेदसूत्र व आवश्यक ग्रन्थो के साथ प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ मे इस कार्य मे पांच मंडलिया थी जिनका नेतृत्व साध्विया कर रही थी। मुमुक्षु बहिनें उनके सहयोगी के रूप मे थी। कार्य की योजना बहुत विशाल थी। हमारा अनुभव नया था, पर दोनों मनीषियो की अनन्त ऊर्जा हमें सतत मिल रही थी। हम पूरी तन्मयता और उत्साह के साथ कार्य मे जुट गयीं। इस कार्य के साथ पांच कोशो की योजना जुड़ी हुई थी—

१. **आगम शब्द कोश**—प्राकृत के सभी पारिभाषिक शब्दो का अर्थ व प्रमाण सहित निर्देश।

२. **जैन विश्व कोश**—जैन पारिभाषिक शब्दो पर अग्रेजी भाषा मे निबन्धात्मक विश्लेपण।

३. **देशी शब्द कोश**—आगम तथा व्याख्या ग्रन्थो मे प्रयुक्त देशी शब्दो का अर्थ और प्रसग सहित निर्देश।

४. **निरुक्त कोश**—आगम एवं व्याख्या ग्रन्थो में प्रयुक्त निरुक्तो का चयन तथा हिन्दी अनुवाद।

५. **एकार्थक कोश**—शताधिक ग्रंथो से एकार्थक शब्दो का संकलन।

इसके साथ कुछ विशिष्ट दृष्टिया भी दी गयी जिनके परिप्रेक्ष्य में हमे आगम ग्रन्थो तथा व्याख्या साहित्य का अध्ययन करना था। वे कुछेक दृष्टि-बिन्दु ये हैं—

१. गाथा वर्गीकरण व पद्यानुक्रमणिका (भाष्य, निर्युक्ति व चूर्णि में आयी गाथाओं का अकारादि क्रम से निर्देश, जिससे शोधकर्ताओं को गाथा खोजने में सुगमता हो सके।)

२. धर्मकथासंग्रह—व्याख्या ग्रंथों में आयी कथाओं का संकलन।

३. सूक्तिसंग्रह।

४. सभ्यता-संस्कृति के मुख्य तत्त्वों का चयन।

५. इतिहास-परम्परा।

६ चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन।

७. स्वास्थ्य विज्ञान तथा मनोविज्ञान के स्थलों का चयन।

८. दार्शनिक व शैक्षणिक तथ्य।

९. सम्प्रदाय—प्राचीन सम्प्रदायों के अस्तित्व, मान्यता, आचार्य आदि विषयक जानकारी।

१०. साधना विषयक जानकारी।

११. वैज्ञानिक तथ्य।

१२. जीवविज्ञान।

१३. आहारविज्ञान।

कार्य अपनी गति से चलता रहा, लेकिन उसके साथ परीक्षण भी अनिवार्य था, अतः समय समय पर कार्य का परीक्षण व निरीक्षण करने आचार्य प्रवर और युवाचार्यश्री वर्द्धमान ग्रंथागार पधारते रहते थे।

इसी वर्ष समण श्रेणी की स्थापना हुई, जिसमें कार्य करने वाली कुछ मुमुक्षु बहिनें समणियां बन गयीं। कालान्तर में आगम कोश के कार्य की गति मंथर देखकर युवाचार्य प्रवर ने मुस्कराते हुए फरमाया—'कार्य दो साल में पूरा करना है, भले ही इसके लिए रोटी-पानी छोड़ना पड़े।' हमने निवेदन किया यदि युवाचार्य प्रवर की लाडनूं में सतत सन्निधि मिले तो यह कार्य संभव हो सकता है, अन्यथा कार्य में बार-बार अवरोध उत्पन्न होता है और अनेक स्थल प्रश्नचिह्न बने रहते हैं।' युवाचार्य प्रवर ने फरमाया 'समस्या के समाधान के लिए हमारे पास आया जा सकता है, इसी बीच आचार्य प्रवर श्री पधारे और हमें नयी प्रेरणा देकर लाडनूं से मारवाड़ की ओर प्रस्थान कर दिया। अब कार्य मुख्य रूप से साध्वियों और समणियों के जिम्मे था।

विक्रम सम्वत् २०३९ का मर्यादा महोत्सव नाथद्वारा की ऐतिहासिक धरा पर हुआ। महोत्सव की समाप्ति के पश्चात् कार्य करने वालों की एक गोष्ठी आयोजित की गयी। और उसका अन्तिम निष्कर्ष था कि कार्य गति-मान किया जाये और उसे अन्तिम रूप दिया जाये। युवाचार्य प्रवर ने फरमाया—यदि कार्य में विलम्ब होगा तो 'कालं पिबति तद्रसम्' वाली कहावत चरितार्थ होगी। युवाचार्यश्री के इस कथन ने कार्य की महत्ता को और अधिक उजागर कर दिया।

वि० स० २०४०। इस बार मुनिश्री दुलहराजजी को आगम कार्य के लिए लाडनूं भेजा गया। मुनिश्री ने एक दिन ग्रन्थागार में आगम कोश कार्य को देखा। तीन वर्षों के कार्य का निरीक्षण कर आपने कहा—कार्य बहुत हुआ है। अब इसे अंतिम रूप देकर समेटना आवश्यक है। यदि मेरा इसमें यत् किञ्चित् सहयोग अपेक्षित हो तो मैं इसके लिए प्रस्तुत हूं"। हमारा उत्साह बढ़ा और सभी कार्यरत साध्वियों एवं समणियो की गोष्ठी आयोजित की गयी। सर्वप्रथम एकार्थक कोश, निरुक्त कोश और देशी कोश को अन्तिम रूप देने का निर्णय हुआ। कार्य का दायित्व जिन जिन पर आया उन्होंने अपना पूरा समय तद् तद् कार्य के लिए समर्पित कर दिया और जो कार्य एक महा अरण्य-सा प्रतीत होता था वह कुछ ही महीनों में पूरा होने लगा।

निरुक्त कोश का कार्य साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी एवं निर्वाणश्रीजी ने सम्पन्न किया।

देशी शब्दकोश का कार्य साध्वी अशोकश्रीजी और साध्वी विमल प्रज्ञाजी ने प्रारंभ कर दिया।

मुझे एकार्थक कोश को संपन्न करना था और मैं इसमें दत्तचित्त हो गई। कार्य आगे बढ़ा और आज उसकी संपन्नता पर मुझे हर्ष हो रहा है।

सर्वप्रथम मेरा भक्ति भरा प्रणाम उन आगम पुरुष प्राचीन आचार्यों को है जिन्होंने श्रुत-परम्परा को समृद्ध किया है।

परमश्रद्धेय, शक्तिस्रोत आचार्यप्रवर एवं युवाचार्यश्री का वात्सल्यपूर्ण आशीर्वाद मेरी साधना का संबल है। मैं उनकी प्रभुता और महानता के प्रति प्रणत हूं, क्योंकि इसमें जो कुछ है, वह उन्हीं का अवदान है। मैं तो मात्र निमित्त बनी हूं। पुनः पुनः उन पावन चरणों में अपनी कोमल अभिवन्दनाएं प्रस्तुत करती हूं और कामना करती हूं कि उनका स्नेहपूरित आशीर्वाद

भविष्य में मेरी सृजनशक्ति को उजागर करने में निमित्त बने तथा मेरे आध्यात्मिक मार्ग को प्रशस्त करता रहे।

मैं महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा श्रीकनकप्रभाजी के प्रति प्रणत हूं जिनके हार्दिक स्नेह और वात्सल्य ने प्रेरणा का कार्य किया है। आशा करती हूं कि उनके आध्यात्मिक संरक्षण में समण श्रेणी उत्तरोत्तर प्रगति करती रहेगी।

मुनिश्री दुलहराजजी ने एकार्थक कोश के चयन तथा परिशिष्टों के निरीक्षण में अपना बहुमूल्य समय प्रदान कर मेरा मार्ग-दर्शन किया, इसके लिए मैं उनके प्रति जितना भी आभार व्यक्त करूं उतना थोड़ा है। यह उनके प्रोत्साहन और मार्गदर्शन का ही परिणाम है कि यह गुरुतर कार्य इतने स्वल्प समय में सम्पन्न हो सका।

'अनेकान्त शोधपीठ' के निदेशक डॉ० टाटियाजी के सहयोग को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिन्होंने समय समय पर नई प्रेरणाएं देकर तथा कोश का पुरोवचन लिखकर इसका गौरव वृद्धिंगत किया है।

मैं सम्पूर्ण समणी परिवार के हार्दिक सहयोग का स्मरण करती हुई अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करती हूं, क्योंकि धर्मसंघ की मर्यादा के अनुसार कोई भी समणी या साध्वी अकेली कहीं जा नहीं सकती। इस कार्य के लिए मुझे जहां कहीं भी जाने की अपेक्षा महसूस हुई समणियों ने उदार हृदय से मेरा सहयोग किया।

अन्त में मैं उन समस्त साध्वियों, समणियों और मुमुक्षु बहिनों के सहयोग का स्मरण करती हूं जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस कार्य में अपने श्रम-बिन्दु अर्पित किये हैं—

निर्देशिका	ग्रंथ
१. साध्वी कनकश्री	निशीथ
२. ,, यशोधरा	व्यवहार
३. ,, अशोकश्री	आचारांग, दशाश्रुतस्कन्ध, पंचाशक, सूर्यप्रज्ञप्ति
४. ,, जिनप्रज्ञा	सूत्रकृतांग (प्रथम श्रुतस्कन्ध)
५. ,, कल्पलता	दशवैकालिक
६. ,, विमलप्रज्ञा	आवश्यक (द्वितीय भाग), उत्तराध्ययन, नवीन कर्मग्रन्थ

७. साध्वी सिद्धप्रज्ञा	सूत्रकृतांग (द्वितीय श्रुतस्कन्ध), स्थानांग, बृहत्कल्प, पिण्डनिर्युक्ति
८. ,, निर्वाणश्री	आवश्यक (प्रथमभाग), सूत्रकृतांग, (प्रथम श्रुतस्कंध)
९. समणी स्मितप्रज्ञा	उत्तराध्ययन
१०. समणी कुसुमप्रज्ञा	भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अंतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावलिका, अंगविज्जा, अनुयोगद्वार, नंदी, ओघनिर्युक्ति, जीतकल्पभाष्य, प्रवचनसारोद्धार, इसिभासिय प्राचीनकर्मग्रंथ।

विशेष सहयोगी

मुमुक्षु निरंजना

साध्वियों के साथ सहयोगी के रूप में कार्य करने वाली समणियों व मुमुक्षु बहिनो के नाम इस प्रकार हैं—

१. साध्वी शारदाश्री
२. ,, जगत्प्रभा
३. ,, शशिकला
४. ,, कमलयशा
५. ,, अमितश्री
६. ,, मर्यादाश्री
७. ,, प्रज्ञाश्री
८. समणी स्थितप्रज्ञा
९. समणी मधुरप्रज्ञा
१०. समणी विशुद्धप्रज्ञा
११. समणी सरलप्रज्ञा
१२. समणी परमप्रज्ञा
१३. समणी शशिप्रज्ञा

१४. समणी अक्षयप्रज्ञा
१५. ,, मुदितप्रज्ञा
१६. ,, उज्ज्वलप्रज्ञा
१७. ,, सुप्रज्ञा
१८. ,, चिन्मयप्रज्ञा
१९. ,, सहजप्रज्ञा
२०. मुमुक्षु मञ्जु
२१. ,, राकेश
२२. ,, पुखराज
२३. ,, ज्योति

अन्त में मैं सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं और सबके लिए मंगलमय उदय की कामना करती हूं।

विनयावनत
समणी कुसुमप्रज्ञा

१-२-८४
लाडनूं

प्रयुक्त ग्रन्थ-संकेत सूची

१. अंत— अंतकृद्दशा (अंगसुत्ताणि भाग ३, जैन विश्व भारती लाडनूं, सन् १९७४)

२. अंतटी— अंतकृद्दशाटीका (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९२०)

३. अंवि— अंगविज्जा (प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, बनारस, सन् १९५७)

४. अंविप्र— अंगविज्जा प्रस्तावना (वही)

५. अभि— अभिधानचिंतामणि कोश (श्री जैन साहित्य वर्धक सभा, अहमदाबाद वि०सं० २०२५)

६. अनु— अनुत्तरोपपातिकदशा (अंगसुत्ताणि भाग ३, जैन विश्व भारती, लाडनूं, सन् १९७४)

७. अनुटी— अनुत्तरोपपातिकदशाटीका (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९२०)

८. अनुद्वा— अनुयोगद्वार (संशोधित, अप्रकाशित)

९. अनुद्वाचू— अनुयोगद्वारचूर्णि (श्री ऋषभदेवजी केसरीमल श्वे. संस्था रतलाम, सन् १९२८)

१०. अनुद्वामटी—अनुयोगद्वार मलधारीयाटीका (श्री केसरबाई ज्ञानमंदिर पाटण, सन् १९३९)

११. अनुद्वाहाटी—अनुयोगद्वार हारिभद्रीया टीका (सेठ देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, मुबंई, सं. १९७३)

१२. अनुनंदी— अनुज्ञानंदी (संशोधित, अप्रकाशित)

१३. अनुनंदीटी—अनुज्ञानंदीटीका (प्राकृत टेक्स्टसोसायटी, बनारस, सन् १९६६)

१४. आ— आयारो (अंगसुत्ताणि भाग १, जैन विश्व भारती, लाडनूं, सन् १९७४)

१५. आचू— आचारांग चूर्णि (श्री ऋषभदेवजी केसरीमल श्वे. संस्था रतलाम, सन् १९४१)

१६. आचूला— आचारांगचूला (अंगसुत्ताणि भाग १, जैन विश्व भारती, लाडनूं, सन् १९७४)

१७. आटी— आचारांग टीका (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् १९७८)

१८. आनि— आचारांगनिर्युक्ति (वही)

१९. आप्टे— आप्टे संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, (प्रसाद प्रकाशन पूना, सन् १९५७)

२०. आवचू १— आवश्यकचूर्णि १ (श्री ऋषभदेवजी केसरीमल श्वे. संस्था रतलाम, सन् १९२८)

२१. आवचू २— आवश्यकचूर्णि २ (वही, सन् १९२९)

२२. आवटि— आवश्यकटिप्पणकम् (शाह नवीनभाई बेलाभाई जवेरी, बम्बई)

२३. आवनि— आवश्यकनिर्युक्ति (भैरुलाल कन्हैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, बम्बई, संवत् २०३८)

२४. आवमटी— आवश्यकमलयगिरिटीका (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९२८)

२५. आवहाटी १—आवश्यक हारिभद्रीया टीका १ (भैरुलाल कन्हैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, बंबई, संवत् २०३८)

२६. आवहाटी २—आवश्यक हारिभद्रीया टीका २ (वही)

२७. इभा— इसिभासियाइं (सुधर्मा ज्ञान मंदिर, बम्बई)

२८. उ— उत्तराध्ययन (जैन विश्व भारती, लाडनूं, द्वितीय संस्करण)

२९. उचू— उत्तराध्ययनचूर्णि (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सं. १९९३)

३०. उटि— उत्तरज्झयणाणि टिप्पण भाग २ (जैन श्वे. तेरापंथी महासभा, कलकत्ता)

३१. उनि— उत्तराध्ययननिर्युक्ति (देवचन्द लाल भाई, जैन पुस्तकोद्धार)

३२. उपा— उपासकदशा (अंगसुत्ताणि भाग ३, जैन विश्व भारती, लाडनूं सन् १९७४)

३३. उपाटी— उपासकदशाटीका (श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय, कोटा, सन् १९४६)

३४. उशाटी— उत्तराध्ययनशान्त्याचार्यटीका (देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार)

३५. ओनि— ओघनिर्युक्ति (आगमोदय समिति, बम्बई सन् १९१९)

३६. ओनिटी— ओघनिर्युक्तिटीका (वही)

३७. ओनिभा— ओघनिर्युक्तिभाष्य (वही)

३८. औप— औपपातिक (संशोधित, अप्रकाशित)

३९. औपटी— औपपातिकटीका (पंडित दयाविमलजी ग्रन्थमाला, द्वितीय संस्करण, सं० १९९४)

४०. जंबू— जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति (संशोधित, अप्रकाशित)

४१. जंबूटी— जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका (नगीनभाई घेलाभाई झवेरी, बम्बई, सन् १९२०)

४२. जीतभा— जीतकल्पभाष्य (बबलचंद्र केशवलाल मोदी, अहमदाबाद, स० १९९४)

४३ जीतभागा—जीतकल्पभाष्य गाथा (वही)

४४. जीव— जीवाभिगम (संशोधित, अप्रकाशित)

४५. जीवटी— जीवाभिगमटीका (देवचद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, स० १९९५)

४६. ज्ञा — ज्ञाताधर्मकथा (अंगसुत्ताणि भाग ३, जैन विश्व भारती, लाडनू १९७४)

४७. ज्ञाटी— ज्ञाताधर्मकथाटीका (श्री सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, सूरत, सन् १९५२)

४८. ठाणं— ठाणं (जैन विश्व भारती, लाडनूं, सं० २०३३)

४९. तभा— तत्वार्थभाष्य (मणीलाल रेवाशंकर जगजीवन झवेरी, बम्बई)

५०. दश— दशवैकालिक (जैन विश्व भारती, लाडनूं, द्वितीय संस्करण)

५१. दशअचू— दशवैकालिकअगस्त्यसिंहचूर्णि (प्राकृत ग्रन्थ परिषद् वाराणसी, सन् १९७३)

५२. दशचू— दशवैकालिक चूलिका (जैन विश्व भारती, लाडनूं, द्वितीय-संस्करण)

५३ दशजिचू— दशवैकालिकजिनदासचूर्णि (श्री ऋषभदेव केसरीमल श्वे. संस्था, रतलाम, सन् १९३३)

५४. दशनि— दशवैकालिकनिर्युक्ति (प्राकृत ग्रंथ परिषद्, वाराणसी सन् १९७३)

५५. दशहाटी— दशवैकालिकहारिभद्रीया टीका (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ४७)

५६. दश्रु— दशाश्रुतस्कन्ध (संशोधित, अप्रकाशित)

५७. दश्रुचू— दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि (पंन्यास श्री मणिविजयजी गणिग्रंथ-माला, भावनगर सं० २०११)

५८. दश्रुनि— दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति (वही)

५९. दस— दसवेआलियं (जैन विश्व भारती, लाडनूं, द्वितीय संस्करण)

६०. देसी— देसीसद्दसंगहो (श्री शंकरप्रसाद रावल, बम्बई)

६१. धसं— धम्मसंगणि (पालि प्रकाशन मंडल, बिहारसरकार)

६२. धातु— धातुपारायणम् (श्री शाहीबाग गिरधरनगर, जैन श्वे० मू० संघ, अहमदाबाद, सन् १९७१)

६३. नंदी— नंदी (संशोधित, अप्रकाशित)

६४. नंदीचू— नंदीचूर्णि (प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, बनारस, सन् १९६६)

६५. नंदीटि— नंदीटिप्पणक (वही)

६६. नंदीटी— नंदीटीका (वही)

६७. नकग्रटी— नवीनकर्मग्रन्थटीका (जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९३४)

६८. निर— निरयावलिका (संशोधित, अप्रकाशित)

६९. निरटी— निरयावलिका टीका (आगमोदय समिति, बम्बई)

७०. निचू— निशीथचूर्णि (सन्मति ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण, सन् १९८२)

७१. निचूभा १-४-निशीथचूर्णि भाग १-४ (वही)

७२. निपीचू— निशीथ पीठिका चूर्णि (वही)

७३. निपीभा— निशीथपीठिकाभाष्य

७४. निभा— निशीथभाष्य (वही)

७५. निभागा— निशीथभाष्य गाथा (वही)

७६. पंचा— पंचाशकप्रकरण (ऋषभदेव केसरीमल श्वे० संस्था, रतलाम, सन् १९४१)

७७. पंचाटी— पंचाशकप्रकरणटीका (वही)

७८. पास— पाइयसद्दमहण्णवो (प्राकृत ग्रंथ परिषद्, वाराणसी द्वितीय संस्करण सन् १९६३)

७९. पिनि— पिण्डनिर्युक्ति (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् १९१८)

८०. पिनिटी— पिण्डनिर्युक्तिटीका (वही)

८१. प्र— प्रश्नव्याकरण (अंगसुत्ताणि भाग ३, जैन विश्व भारती, लाडनूं, १९७४)

८२. प्रज्ञा— प्रज्ञापना (संशोधित, अप्रकाशित)

८३. प्रज्ञाटी— प्रज्ञापनाटीका (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९१८)

८४. प्रटी— प्रश्नव्याकरणटीका (वही, सन् १९१९)

८५. प्रसा— प्रवचनसारोद्धार (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, द्वितीय संस्करण, सं० १९८१)

८६. प्रसागा— प्रवचनसारोद्धारगाथा (वही)

८७. प्रसाटी— प्रवचनसारोद्धारटीका (वही)

८८. प्रा— प्राकृतव्याकरण (हेमचन्द्र) (जैन दिवाकर दिव्यज्योति कार्यालय, ब्यावर, सं० २०१६)

८९. प्राकग्रटी— प्राचीनकर्मग्रन्थ टीका (जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९७२)

९०. बृकचू— बृहत्कल्पचूर्णि (हस्तलिखित, लाडनूं भंडार)

९१. बृकटी— बृहत्कल्पटीका (जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९३६)

९२. बृकनि— बृहत्कल्पनिर्युक्ति (वही)

९३. बृकभा— बृहत्कल्पभाष्य (वही, सन् १९३६)

९४. भ— भगवती (अंगसुत्ताणि भाग २, जैन विश्व भारती लाडनूं, सन् १९७४)

९५. भटी— भगवतीटीका १ (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९१८)
भगवतीटीका २ (ऋषभदेव केसरीमल श्वे० संस्था, रतलाम, द्वितीय संस्करण, सन् १९४०)

९६. मनु— मनुस्मृति (चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी)

९७. राज— राजप्रश्नीय (संशोधित, अप्रकाशित)

९८. राजटी— राजप्रश्नीयटीका (गूर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद, वि०सं० १९९४)

९९. विपा— विपाकश्रुत (अंगसुत्ताणि भाग ३, जैन विश्व भारती लाडनूं, सन् १९७४)

१००. विपाटी— विपाकटीका (आगमोदयसमिति, बम्बई, सन् १९२०)

१०१. विभा— विशेषावश्यकभाष्य (दिव्यदर्शन कार्यालय. अहमदाबाद, वीर सं० २४८९)

१०२. विभाकोटी–विशेषावश्यकभाष्य कोट्याचार्यटीका (श्री ऋषभदेव केसरीमल रतलाम, सन् १९३६)

१०३. विभामहेटी–विशेषावश्यकभाष्यमलधारीहेमचन्द्र टीका (दिव्यदर्शन कार्यालय, अहमदाबाद, वीर संवत् २४८९)

१०४. व्यभा— व्यवहारभाष्य (वकील केशवलाल प्रेमचन्द, अहमदाबाद, सन् १९२६)

१०५. व्यभाटी—व्यवहारभाष्यटीका (वही)

१०६. शक— शब्दकल्पद्रुम भाग ४, तीसरा संस्करण (चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, सन् १९६९)

१०७. सम— समवायांग (अगसुत्ताणि भाग ३, जैन विश्व भारती, लाडनूं सन् १९७४)

१०८. समटी— समवायांगटीका (कान्तिलाल चुनीलाल, अहमदाबाद, सन् १९३८)

१०९. सू— सूत्रकृतांग (अंगसुत्ताणि भाग १, जैन विश्व भारती लाडनूं, सन् १९७४)

११०. सूचू १— सूत्रकृतांगचूर्णि प्रथमश्रुतस्कन्ध (प्राकृतटेक्स्टसोसायटी वाराणसी, सन् १९७५)

१११. सूचू २— सूत्रकृतांगचूर्णि द्वितीयश्रुतस्कन्ध (ऋषभदेव केसरीमल श्वे० संस्था, रतलाम, सन् १९४१)

११२ सूटी १— सूत्रकृतांगटीकाप्रथमश्रुतस्कन्ध (आगमोदयसमिति बम्बई, सन् १९१९)।

११३. सूटी २— सूत्रकृतांगटीका द्वितीय श्रुतस्कन्ध, (श्री गोडी पार्श्वनाथ जैन ग्रंथमाला, सन् १९५३)

११४. सूनि— सूत्रकृतांगनिर्युक्ति (मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली सन् १९७८)

११५. सूर्य— सूर्यप्रज्ञप्ति (संशोधित, अप्रकाशित)

११६. सूर्यटी— सूर्यप्रज्ञप्ति टीका (आगमोदयसमिति, बम्बई, सन् १९१९)

११७. स्था— स्थानांग (अंगसुत्ताणि भाग १, जैन विश्व भारती लाडनूं, सन् १९७४)

११८. स्थाटी— स्थानांगटीका (सेठ माणेकलाल चूनीलाल, अहमदाबाद, सन् १९३७)

अनुक्रम

एकार्थक कोश

अइबल—अतिबल ।

अइबले महब्बले अपरिमियबले । (औप ७१)

अंग—अवयव ।

अंग दस भाग भेए अवयवाऽसगल चुण्ण खंडे य ।
देस पएसे पव्वे साह पडल पज्जव खिले य ॥ (उनि १५७)

अंग त्ति वा दस त्ति वा भाग त्ति वा भेदे त्ति वा अवयवे त्ति वा चुण्णे त्ति वा खंडे त्ति वा देसे पदेसा पव्वे साहा पडला पज्जवे त्ति वा खिले त्ति ।[1] (उचू पृ ६३-६४)

अंगुलेयक—अंगूठी ।

अंगुलेयकं मुद्देयकं वेंटकं । (अंवि पृ १६३)

अंचेति—झुकाता है ।

अंचेति त्ति वा णामेति त्ति वा एगट्ठं । (सूचू १ पृ २४०)

अंचेति कंपेति णोल्लसति ।[2] (सूचू १ पृ २४०)

अंतर—छिद्र ।

अंतराणि य छिद्दाणि य विरहाणि य । (निर १/६५)

अंतरप्प—अंतरात्मा ।

अंतरप्पा चेतो चित्तमित्ति एगट्ठं । (निपीचू पृ ११२)

अंताहार—बचाखुचा खाने वाला ।

अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा अंतजीवी पंतजीवी ।[3] (सू २/२/६६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें— परि० ३
३. देखें—परि० २

अंतिक—समीप ।

अन्तिकमभ्याशमासन्नं समीपम् । (व्यभा १० टी प १००)

अंदोलति— झूलता है, घूमता है ।

अदोलति त्ति वा बूया, तधा हुंदोलको त्ति वा ।
घुमति त्ति परिघुमति भमते व परिब्भमे ॥[1] (अंवि पृ ८०)

अंस— अंश ।

अंसो त्ति व भागो त्ति व एगट्ठा । (बृकभा ३६४५)

अंस— भेद ।

अंसा भेदा उत्तरपगडीओ इत्यनर्थान्तरम् । (बृकटी पृ २६)

अकम्मवीरिय—प्रमादरहित वीर्य ।

अकम्मवीरियं ति वा पंडितवीरियं ति वा एगट्ठं ।[2]

(सूचू १ पृ १६८)

अकिट्ठ—अक्लिष्ट ।

अकिट्ठे अव्वहिए अपरितावि़ए । (भ ३/१२६)

अकुडिल—ऋजु ।

अकुडिले त्ति वा अणिहे त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३४७)

अकुसल—अकुशल ।

अकुसला अणज्जा अलियाणा अलियधम्मणिरया ।[3] (प्र २/१४)

अक्कोस—आक्रोश ।

अक्कोस- फरुस - खिंसण - अवमाणण - तज्जण - निब्भंछण ··तासण
उक्कूजिय ।[4] (प्र १०/१४)

अक्कोसेज्ज—आक्रोश करना ।

अक्कोसेज्ज बंधेज्ज रुंभेज्ज उद्दवेज्ज । (आचूला ३/११)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

अक्कोह—अक्रोधी

अक्कोहा निक्कोहा खीणक्कोहा । (औप १६८)

अक्खयायार—परिपूर्ण आचार ।

अक्खयायारे अभिन्नायारे असबलायारे । (व्यभा ४/३ टी प २७)

अक्रिया—अप्रवृत्ति ।

अक्रिया अनारंभ: अवीर्यं अपरिस्पन्द इत्यनर्थान्तरम् ।
(सूचू २ पृ ३१९)

अक्षताचार—परिपूर्ण आचार ।

अक्षताचार: अभिन्नाचार: असंक्लिष्टाचार: ।
(व्यभा ४/२ टी प ३५)

अखंड—पूर्ण ।

अखंड अप्फुडियं अविरलं । (औप १९)

अखंड—अखण्ड ।

अखंडो अविराधितो निरतिचार: । (नदीचू पृ ३)

अगणिझामिय—अग्नि-दग्ध ।

अगणिझामिए अगणिझूसिए अगणिपरिणामिए । (भ १५/११६)

अगोय—अगोत्र ।

अगोए निगोए खीणगोए । (अनुद्वा २८२)

अगृद्ध—अनासक्त ।

अगृद्ध अनध्युपपन्नोऽमूर्च्छित: । (सूटी १ प ५०)

अगृहीतव्य—अग्राह्य ।

अगृहीतव्येऽनुपादेये हेये । (व्यभा १० टी प ११३)

अग्ग—परिमाण ।

अग्ग ति वा परिमाणं ति वा पमाणं ति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ २९)

अग्ग—प्रधान ।

अग्ग पहाण त्ति एगट्ठा । (जीतभा २५१७)

अग्गाइं वराइं एकार्थानि । (अंत टी प १९)

अग्गि—अग्नि ।

अग्गि पुण जाततेओ अणलो वा हुतवहो त्ति जलणो त्ति ।
पवणो त्ति य जोति त्ति य अग्गिस्स भवंति णामाणि ।[1]

(अंवि पृ २५४)

अग्घातित—आख्यात ।

अग्घातितंति वा आतिक्खियंति वा एगट्ठा । (आचू पृ ३०३)

अग्घुप्पत्ति—अग्नि का उत्पत्ति-स्थान ।

अग्घुप्पत्ति अग्गिट्ठे अग्गिकुंडे य । (अवि पृ २५४)

अग्र—प्रधान ।

अग्रं वर्यं प्रधानं । (सूटी १ प ७२)

अचपल—स्थिर ।

अचपल स्थिरस्वभावः अकुक्कुचः । (व्यभा ४/१ टी प २६)

अचल—स्थिर ।

अचलं धुवं तधा ठाणं सस्सत मखिलं ति वा ।
अजरामर ति वा बूया णियत ति अवत्थितं ॥ (अवि पृ ७८)

अचियत्त—अप्रिय ।

अचियत्त ति वा अप्पियत्तं ति वा एगट्ठं । (व्यभा ४/१ टी प ५६)

अच्चिय—अर्चित ।

अच्चिय-वंदिय-पूइय-माणिय-सक्कारिय-सम्माणिया ।[2]

(ज्ञा० १/१/२७)

अच्छ—साफ-सुथरा ।

अच्छे सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे निरए निम्मले निप्पंके (भ २/११८)

अज्झत्थिय—मनोगत चिंतन ।

अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे ।[3]

(विपा १/१/४१)

---

१. देखें—परि० २
२ देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

अज्झयण—अध्ययन ।

अज्झयणं अज्झीणं आओ झवणा य एगट्ठा । (निपीचू पृ ५)

अज्झोववण्ण—तन्मय ।

अज्झोववण्णा तच्चित्ता तम्मणा तल्लेसा इति एगट्ठा ।
(आचू पृ ४१)

अज्झोस—अध्यवसाय ।

अज्झोसो भावण त्ति वा एगट्ठं । (आचू पृ ३७३)

अट्ट—दुःखी ।

अट्टदुहट्टवसट्ट । (उपा २/२८)

अड्ढ—धनवान् ।

अड्ढो य सुहभागी य वसुमंतो । (अवि पृ १०५)

अणंत—अनत ।

अणंतं अणुत्तरं निव्वाघायं निरावरणं कसिणं पडिपुण्णं । (औप १६६)

अणंतराय—अन्तराय—विघ्न रहित ।

अणंतराए निरंतराए खीणंतराए । (अनुद्वा २८२)

अणंतरिय—सचेतन ।

अणंतरिया अणंतरहिता सचेतना । (दश्रुचू प ५१)

अण—ऋण ।

अणंति वा रिणंति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २०४)

अणण्ण—अभिन्न ।

अणण्णं अभिण्णं अपृथग् । (निपीचू पृ ३७)

अणप्पज्झो—पराधीन, भूताविष्ट ।

अणप्पज्झो अनात्मवशः ग्रहगृहीतः । (निचूभा २ पृ २९)

अणल—असमर्थ ।

अणलो अपच्चलो त्ति य, होंति अजोगो य एगट्ठा । (निभा ३५०४)

अणाइल—अनाविल ।

अणाइले अव्वहिते अद्दीणमाणसे । (आचूला १५/३४)

अणाइले अकसाई मुक्के । (सू १/६/८)

अणाइलभाव—अनाविलभाव ।

अणाइलभावो अणिग्गयभावो सच्चित्तो अबहिलेस्सो त्ति एगट्ठा ।

(आचू पृ २४१)

अणाउय—अनायुष्य (मुक्त) ।

अणाउए निराउए खीणाउए । (अनुद्वा २८२)

अणाम—अनाम ।

अणामे निण्णामे खीणनामे । (अनुद्वा २८२)

अणायतण—अनायतन (पापस्थान) ।

सावज्जमणायतण असोहिठाणं कुसीलसंसग्गी एगट्ठा होंति .....।

(ओनि ७६३)

अणावरण—आवरण रहित ।

अणावरणे निरावरणे खीणावरणे । (अनुद्वा २८२)

अणासव—अनास्रव ।

अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो ।

(प्र ६/२३)

अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नसोए निरुवलेवे ।[1] (राजटी पृ ३४)

अणिट्ठ—अनिष्ट ।

अणिट्ठे अकंते अप्पिए असुभे अमणुण्णे अमणामे दुक्खे णो सुहे ।

(सू २/१/५१)

अणु—अणु ।

अणुः परमाणुः एकांशोऽभेदो निर्भेद इति (विभाकोटी पृ १७०)

---

१. देखें—परि० २

अणुओग—अनुयोग।

अणुओगो य नियोगो भासा विभासा य वत्तियं चेव।
एए अणुओगस्स य नामा, एगट्ठिया पंच ॥[1] (आवनि १३१)

अणुकंपण—दया।

अणुकंपणं अणुकंपा दया। (निपीचू पृ० ७६)

अणुण्णा—अनुज्ञा।

अणुण्णा उण्णमणी णमणी णामणी ठवणा पभवो पभावणपयारो।
तदुभय हिय मज्जाया णाओ मग्गो य कप्पो य ॥
संगह संवर णिज्जर ठिइकरणं चेव जीववुड्ढिपयं।
पदपवरं चेव तहा, वीसमणुण्णाए णामाइं ॥
(अनुनंदी २८)

अणुत्तर—अनुत्तर।

अणुत्तरे णिव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे। (औप १५३)

अणुत्तरं अणंतं कसिणं पडिपुण्णं निरावरणं वितिमिरं विसुद्धं।[2]
(उ २९/७२)

अणुत्तर—श्रेष्ठ।

अणुत्तर ति वा अणुत्तमं ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ २८७)

अणुपविट्ठ—अनुप्रविष्ट।

तधा अणुपविट्ठो त्ति तधा अतिगतो त्ति वा।
तधा गाढोपगूढे त्ति गाढलीण ति वा वदे ॥
तधा अल्लीणमपल्लीणो अब्भलीणो त्ति वा वदे।
अब्भंतरब्भंतरगो एते सद्दा समा भवे ॥[3] (अंवि पृ ८७)

अणुमात्र—थोड़ा।

अणुमात्रं थोवं अप्पं। (दशअचू पृ १३७)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

अणुव्विग्ग—अनुद्विग्न ।

अणुव्विग्गं अचवलं असीयं । (दशजिचू पृ २८९)

अणुसंचरइ—जाता है ।

अणुसचरइ धावति गच्छति वा एगट्ठा ।[1] (आचू पृ १३)

अणुसट्ठि—स्तुति ।

अणुसट्ठि थुइ त्ति एगट्ठा । (निभा ६६०८)

अणुसमय—निरन्तर ।

अणुसमयनिरन्तरमवीइ । (उनि २१५)

अणेगपडिरय—अनेक रूप से कहा जाने वाला ।

अणेगपडिरयति वा अणेगपज्जायं ति वा अणेगणामभेदं ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ २६)

अणोज्जा—अनवद्या (महावीर की पुत्री का नाम) ।

अणोज्जा ति वा पियदंसणा ति वा । (आचूला १५/२३)

अण्ण—पृथक् ।

अण्णं भिण्ण पृथग् । (निपीचू पृ ३७)

अण्णाय—अज्ञात ।

अण्णाय अदिट्ठ अस्सुत अमुयं अविण्णायं । (ज्ञा १८/१४३)

अण्हयकर—आस्नवकर (मन को आश्रवों में प्रवृत्त करने वाला) ।

अण्हयकरे छेयकरे भेदकरे । (आचूला १५/४५)

अतिगत—भीतर तक प्रविष्ट ।

अतिदूरे पविट्ठो त्ति अतिगतो त्ति व दूरत ।
दूरातिसरितो व त्ति दूरोगाढो त्ति वा पुणो ।।
तधा अणुपविट्ठो त्ति तधा अतिगतो त्ति वा ।
तधा गाढोपगूढे त्ति गाढलीणं ति वा वदे ।। (अंवि पृ ८७)

---

१. देखें—परि० ३

अतिदूर—अतिदूर ।

अतिदूरं अतिदिग्घ अतिम्महूंतेसु । (अंवि पृ २३९)

अतियार—अतिचार ।

अतियार त्ति वा अविसोहीओ त्ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ १०२)

अतिवत्त—अतिवर्तन ।

अतिवत्तमतिक्कंतं गतं त्ति य विणिग्गते ।
विणियत्तं पुराणं ति जुण्णं ओपुण्ण णिप्फलं ॥

सुक्कं मलितं विसिण्णं ति, उवउत्तं भीणमेव य ।
खइयं पितं ति वा भुत्तं णिट्ठितं ति कतं ति वा ॥

सम्मद्दितं अतीतं त्ति समतिच्छियमतिच्छियं ।
ओहिज्जंतं ओहसितं पहीणं ति पहिज्जते ॥[1] (अंवि पृ ८१)

अतुरिय—अत्वरित ।

अतुरियमचवलमसंभंतं । (ज्ञा० १/१/१९)

अत्त—प्रिय ।

अत्ता इट्ठा कंता पिया मणुण्णा । (उचू पृ २१२)

अत्तय—पुत्र

अत्तए त्ति आत्मजः सुतः । (विपाटी प ३५)

अत्तए त्ति आत्मजः अङ्गजः । (ज्ञाटी प १२)

अत्तव—आत्मवान् ।

अत्तवं ति वा विन्नवं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २८९)

अत्ताण—अत्राण ।

अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधुविप्पहूणा । (प्र १/२६)

अत्थ—अर्थ (कारण) ।

अत्थो त्ति वा हेउ त्ति वा कारणं ति वा एगट्ठं ।

(निचूभा ४ पृ ३८८)

---

१. देखें—परि० २

अत्थयति—याचना करता है।

अत्थयति त्ति वा पत्थयति त्ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ ३३४-३५)

अत्थयति त्ति वा मग्गइत्ति वा एगट्ठा।[1] (दशजिचू पृ ७४)

अत्थाम—शक्तिरहित।

अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे। (भ ७/२०३)

अत्थि—अर्थी—चाहनेवाला।

अत्थी गवेसी लुद्धगा कंखिया पिवासिया। (राज ७३८)

अर्थाध्यवसाय—अवाय (मतिज्ञान का एक भेद)।

अर्थाध्यवसायोऽपायः निर्णयो निश्चयोऽवगमः इत्यनर्थान्तरम्।

(नंदीटी पृ ४६)

अदिण्णादाण—चोरी

तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तंजहा—चोरिक्कं, परहडं, अदत्तं, कूरिकडं, परलाभो, असंजमो, परधणम्मि गेही, लोलिक्कं, तक्करत्तणं, अवहारो, हत्थलहुत्तणं, पावकम्मकरणं, तेणिक्कं, हरणविप्पणासो, आदियणा, लुंपणा धणाणं, अप्पच्चओ, ओवीलो, अक्खेवो, खेवो, विक्खेवो, कूडया, कुलमसी, कंखा, लालप्पण, पत्थणा, आससणाय वसणं, इच्छा मुच्छा, तण्हा गेही, नियडिकम्मं, अपरच्छं त्ति।[2] (प्र० ३/२)

अदीण अदीन।

अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसादी अपरितंतजोगी।

(अंत ६/५७)

अद्धा—काल, समय।

अद्धा काल इत्यनर्थान्तरम्। (व्यभा २ टी प ११)

अधण—निर्धन।

अधणेसु दुग्गतेसु य परिहायंतेसु। (अंवि पृ २५०)

अधण्ण—अधन्य।

अधण्णो दूभगो त्ति य असिद्धत्थो। (अंवि पृ ८१)

---

१. देखें—परि० ३ २. देखें—परि० २

अधन्न—अधन्य ।

अधन्ने अपुन्ने अकयत्थे अकयलक्खणे । (राज ७३८)

अधम्मत्थिकाय—अधर्मास्तिकाय ।

अधम्मे इ वा, अधम्मत्थिकाए इ वा, पाणाइवाए इ वा, मुसावाए इ वा, आदिण्णादाणं इ वा, मेहुणं इ वा, परिग्गहे इ वा, कोहे इ वा, माणे इ वा, माये इ वा, लोहे इ वा, रागे इ वा, दोसे इ वा, कलहे इ वा, अब्भक्खाणे इ वा, पिसुणे इ वा, परपरिवाए इ वा, रइ अरइं इ वा, मायामोसे इ वा, मिच्छादंसणसल्ले इ वा, रियाअस्समिती इ वा, भासाअस्समिती इ वा, एसणाअस्समिती इ वा, आयाणभंडमत्तनिक्खे-वणाअस्समिती इ वा, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिट्ठावणिया-अस्समिती इ वा, मणअगुत्ती इ वा, वइअगुत्ती इ वा, कायअगुत्ती इ वा ·· ··सव्वे ते अधम्मत्थिकायस्स अभिवयणा ।[1] (भ २०/१५)

अधरा—अधम ।

अधरा अधमा जघन्या । (निचूभा ३ पृ ३८)

अधिकरण—कलह ।

अहिकरणमहोकरण अहरगतीगाहण अहोतरण ।
अद्धितिकरणं च तहा, अहीरकरणं च अहीकरण ।।
(निभागा २७७२)

अधिकरण कलहः प्राभृतमित्येकोऽर्थः । (बृकटी पृ ७५१)

अधितिकरण—अधैर्य ।

अधितिकरणं अधिकरणं अल्पसत्वम् । (निचूभा २ पृ २७९)

अनगार—साधु ।

अनगारो मुनिर्मौनी साधुः प्रव्रजितो व्रती ।
श्रमणः क्षपणश्चैव यतिश्चैकार्थवाचकाः ।। (उशाटी प १९)

अनर्थ—निष्कारण ।

अनर्थः अप्रयोजनमनुपयोगो निष्कारणेति पर्यायाः ।
(आवहाटी २ पृ २२८)

---

1. देखें—परि० २

अनल—अयोग्य ।

अनल. अयोग्यश्च एकार्था: । (निचूभा ३ पृ २२६)

अनायतन—अस्थान (अनाचार) ।

अनायतनं असम्भव· अनाचार: अस्थानमित्यनर्थान्तरम् ।
(सूचू १ पृ २२०)

अनित्य—अनित्य ।

अनित्य अध्रुव चलं । (उचू पृ १८८)

अनुकाश— विशेष विकास ।

अनुकाशो विकाश: प्रसर. । (ज्ञाटी प २४)

अनुमत—अनुमत ।

अनुगता अनुमता अनुबद्धा इत्येकोऽर्थ: । (उचू पृ ११०)

अनुलोम—अनुकूल ।

अनुलोमं अनुकूल अनुगुणम् । (जीवटी प ३)

अन्विष्ट—खोजा गया ।

अन्विष्टं याचितं गवेसियं । (निचूभा २ पृ ६६)

अपगत—दूर होना ।

अपगते अपेते वेदिसे । (पचा प ११)

अपमट्ठ—अप्रमार्जित ।

अपमट्ठे अपलिखिते अपसारिते अपणामिते अपवट्टिते अपलोलिते अपवसे अपणते अपविट्ठे अपछुढे आपढिते । (अवि पृ १७१)

अपमाण—अपमान ।

अपमाणमसक्कार णिराकारं पराजयं । (अंवि पृ ८६)

अपसारित—दूर किया हुआ ।

अपसारिते अपणासिते अपकढ्ढिते अपणते अपछुढे अपहिते अप्फिडिते । (अंवि पृ १६६)

अपातय—अनावृष्टि ।

अपातयमणावुट्ठि सस्सवापस्सिमेव य । (अंवि पृ ६०)

अपात्र—अयोग्य ।

अपात्रं अयोग्यं अभाजनम् । (निचूभा ४ पृ २५५)

अपूर्व—जो पहले नहीं था ।

अपूर्वः अदृष्टः अश्रुतः अविदितः अविभावितः । (आवचू १ पृ ५४४)

अप्पकम्मतर—अल्पकर्म ।

अप्पकम्मतराए अप्पकिरियतराए अप्पासवतराए । (भ ५/१३३)

अप्पडिबद्ध—अप्रतिबद्ध ।

अप्पडिबद्धा सुइभूया लहुभूया अप्पग्गंथा । (सू २/२/६५)

अप्पियववहार—अष्टांग निमित्त (उत्पाद) का भेद ।

अप्पियववहारियं ति वा विसेसाविट्ठं ति वा एगट्ठा ।

(आवचू १ पृ ३७६)

अबंभ—अब्रह्मचर्य ।

अबंभ, मेहुण, चरंत, संसग्गि, सेवणाधिकारो, संकप्पो, बाहणा पदाणं, दप्पो, मोहो, मणसंखोभो, अणिग्गहो, वुग्गहो, विघाओ, विभंगो, विब्भमो, अधम्मो, असीलया, गामधम्मतत्ती, रती, रागो, कामभोग-मारो, वेर, रहस्सं, गुज्झं, बहुमाणो, बंभचेर-विग्घो, वावत्ति, विराहणा, पसंगो, कामगुणो त्ति ।[1] (प्र ४/२)

अबालसील—प्रौढ शील वाला ।

अबालसीलो अचचलसीलो मज्झत्थसीलो । (दश्रुचू प २१)

अब्भहियतर—अत्यधिक, पूर्ण ।

अब्भहियतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरं ।[2] (भ ८/१८७)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

अब्भास—अभ्यास ।

अब्भास भावण त्ति य एगट्ठं । (बृकभा १२६०)

अब्भुग्गय—अभ्युद्गत ।

अब्भुग्गएसु अब्भुज्जएसु अब्भुण्णएसु अब्भुट्ठिएसु । (ज्ञा १/१/३३)

अभिगच्छति—प्राप्त करता है ।

अभिगच्छति त्ति वा पावइ त्ति वा एगट्ठा ।[1] (दशजिचू पृ ३१६)

अभिज्झा—लोभ ।

अभिज्झा लोभो प्रार्थनेत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ३६१)

अभिप्पाय—अभिप्राय ।

अभिप्पायो त्ति वा बुद्धि त्ति वा एगट्ठं । (आचू पृ ५४३)

अभिलसंति—इच्छा करते हैं ।

अभिलसति वा पत्थयंति वा कामयंति वा अभिप्पायंति वा एगट्ठा ।[2]
(दशजिचू पृ २१५)

अभिवायण—अभिवादन ।

अभिवायण वंदण पूयण च । (दशचू २/६)

अभिसंभूत—उत्पन्न ।

अभिसंभूता, अभिसंजाता, अभिणिव्वट्टा, अभिसंवुड्ढा । (आ ६/२५)

अभिहणति— हनन करता है ।

अभिहणति तज्जेति तालेति परितालेति परितावेति उद्दवेति ।[3]
(इभा ३४/२)

अभिहणेज्ज— हनन करे ।

अभिहणेज्ज वत्तेज्ज लेसेज्ज संघंसेज्ज संघट्टेज्ज परियावेज्ज किलामेज्ज ।[4] (आचू १/८८)

---

१. देखें—परि० ३
२ देखें—परि० ३
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३

अभीय—अभीत ।

अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विग्गे ।

(आ १/८/७३)

अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते ।

(अंत ६/४१)

अभूतिभाव—विनाशभाव ।

अभूतिभावो त्ति वा विणासभावो त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३०२)

अमाण—निरभिमानी ।

अमाणा निम्माणा खीणमाणा । (औप १६८)

अमाया—अमायावी ।

अमाया निम्माया खीणमाया । (औप १६८)

अमूढ—अमूढ ।

अमूढो मतिमं धीरो । (अंवि पृ ५६)

अमोह—निर्मोही ।

अमोहे निम्मोहे खीणमोहे । (अनुद्वा २८२)

अयन—ज्ञान ।

अयनं गमनं परिच्छेदं । (प्रसा टी प २०८)

अरंजर—घड़ा ।

अरंजरो अलिंदो त्ति कुंडगो माणको त्ति वा ।
घडको कुडारको व त्ति वारको कलसो त्ति वा ॥
गुलमगो त्ति वा बूया तधा पिढरको त्ति वा ।
तधा मल्लगभंडं त्ति पत्तभंड त्ति वा पुणो ॥[1] (अंवि पृ ६५)

अरति—अप्रीति ।

अरतिं सोगपागं च अप्पीइमतिसं तहा । (अंवि पृ १२)

---

१. देखें—परि० २

अरय—निर्मल।

अरए विरए नीरए निम्मले वितिमिरे विसुद्धे। (स्था ६/७२)

अरह—अर्हत्।

अरहा जिणे केवली तीयपच्चुप्पन्नमणागयवियाणए सव्वण्णू सव्वदरिसी। (भ २/३८)

अरिह जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी[1]।

(आचूला १५/३९)

अरि—शत्रु।

अरी इ वा, वेरिए इ वा, घायए इ वा, वहए इ वा, पडिणीयए इ वा, पच्चामित्ते इ वा।[2] (जंबू २/२८)

अरिट्ठ—अरिष्ट (एक प्रकार का मद्य।

अरिट्ठो आसवो व त्ति मेरको त्ति मधु ति वा। (अंवि पृ ६४)

अरिह—योग्य।

अरिहो भायण ओग्गो पत्त ति वा एगट्ठं। (आवचू १ पृ ५०९)

अर्यंते—जाया जाता है।

अर्यंते गम्यते अट्यते।[3] (भटी पृ १४३१)

अर्पित—अर्पित।

अर्पितं गमित दर्शितम्। (उचू पृ १०१)

अर्यंते—प्राप्त करता है।

अर्यंते गम्यते साध्यते।[4] (विभामहेटी १ पृ ३४१)

अर्हत्—पूजित।

अर्हन् पूजितो पूजोचित। (उपाटी पृ १३०)

अलं—पर्याप्त।

अलं पर्याप्त परिपूर्णम्। (ज्ञाटी प ४८)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३

अलस—अलसिया (प्राणी विशेष)।

अलसो त्ति वा गंडूलो त्ति वा सुसुणागो त्ति वा एगट्ठं।

(निपीचू पृ ६६)

अलस—मंथर।

अलसमभारो भीरू अतिकिमणो मंथरो त्ति वा सद्दो।
मज्झत्थो त्ति पमत्तो त्ति पंगुलो दिग्घपस्सि त्ति॥

(अंवि पृ २४१)

अलिय—असत्य।

तस्स य नामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तं जहा—अलियं, सढं, अणज्जं, मायामोसो, असंतकं, कूडकवडमवत्थु, निरत्थयमवत्थग, विद्देसगरहणिज्जं, अणुज्जगं, कक्कणा, वंचणा, मिच्छापच्छाकडं, साती, ओच्छन्नं, उक्कूलं, अट्टं, अब्भक्खाणं, किव्विसं, वलयं, गहणं, मम्मण, नूमं, नियती, अप्पच्चओ, असमओ, असच्चसंधत्तणं, विवक्खो, अवहीयं, उवहि-असुद्धं, अवलोवो त्ति।[1] (प्र २/२)

अलोह—लोभमुक्त।

अलोहा निल्लोहा खीणलोहा। (ओप १६८)

अल्पश्रुत—अल्पज्ञानी।

अल्पश्रुतो अबहुश्रुतोऽगीतार्थः। (व्यभा ६ टी प ७)

अवकड्ढित—पराजित।

अवकड्ढिते पराहूते पराजित परम्मुहे। (अंवि पृ १०८)

अवगाढ—उत्पन्न।

अवगाढ आरूढ प्रपन्न इति चैकोऽर्थः। (उशाटी प २४७)

अवड्ढ—आधा

अवड्ढं ति वा अद्धं ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ २२)

---

१. देखें—परि० २

अवस्था—अवस्था ।

पतिट्ठा ठवणा ठवणी अवस्था संठिती ठिती ।
अवत्थाण अवत्थाया एगट्ठा चिट्ठणा त्ति य ॥ (जीतभा १६६६)

अवदात—शुभ्र ।

अवदातं अतिपण्डरं स्निग्धं वा निर्मलं । (सूचू १ पृ १४७)

अवद्य—गर्हित ।

अवद्य गर्हितं मिच्छत्तं अण्णाणं अविरती । (आवचू १ पृ ५९३)

अवद्य गर्हित पापम् । (आवहाटी २ पृ २२७)

अवधान—मर्यादा ।

अवधान अवधिः मर्यादा । (नंदीचू पृ १३)

अवन—ज्ञान ।

अवन गमनं वेदनमिति पर्यायाः । (आवहाटी पृ ६)

अवसर—प्रस्ताव ।

अवसरो विभागः प्रस्तावः । (विभाकोटी पृ ९७६)

अवाय—अवाय (मतिज्ञान का एक भेद) ।

आवट्टणया पच्चावट्टणया अवाए बुद्धी विण्णाणे ।[1]

(नंदी ४७)

अविजात—विनीत ।

अविजातो विनीत अनुकूलः । (उचू पृ १०२)

अविमनस्—जागरूक ।

अविमनाः अविगतचित्ता अशून्यमना । (अनुटी प ४)

अविराय—अविध्वस्त ।

अविराय अविलीणं अविद्धत्थं ।[2] (जीव ३/११८)

अविविचित्त—पृथक् किये बिना ।

अविविचित्ता अविघूणित्ता असंमुच्छित्ता अणणुतावित्ता । (सू २/४/१८)

---

१. देखें—परि० २ २. देखें—परि० २

अविसुद्ध—अविशुद्ध।

अविसुद्ध, अविविस, लोहिल्ल। (निचूभा ४ पृ १४४)

अवेयण—अवेदन।

अवेयणे निव्वेयणे खीणवेयणे। (अनुद्वा २८२)

अव्यक्त—सांख्य सम्मत प्रकृति का एक नाम।

अव्यक्तं प्रकृतिरित्यनर्थान्तरम्। (आवटि प २३)

अशाश्वत—अशाश्वत।

अशाश्वत· अनित्यो विनाशी। (सूटी १ पृ ४२)

अशेष—संपूर्ण।

अशेष कृत्स्नं सम्पूर्णं सर्वमित्यनर्थान्तरम्। (सूचू २ पृ ४११)

अश्लाघा—अवज्ञा।

अश्लाघा वा अवज्ञा वा अनादर.। (पचा पृ ५१)

असंजण—अनासक्ति।

असजण त्ति असगो अगेही। (निपीचू पृ १२९-३०)

असण—अशन।

असण पाण खाइम साइमं।[1] (प्रसाटी प ५१)

असपज्जाय—असद्पर्याय।

असपज्जाय त्ति वा णत्थिभावो त्ति वा अविज्जमाणभावो त्ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ २९)

असमंजस—प्रतिकूल।

असमंजसा अननुकूला अनभिप्रेता। (उचू पृ २२५)

असरण—अस्मरण।

असरणं अचिन्तणं अणाढायमाणं ति एगट्ठा। (आचू पृ ३०३)

असात—दुक्ख।

असातं ति वा अपरिणिव्वाणं ति वा महब्भयं ति वा एगट्ठा। (आचू पृ ३६)

---

१. देखें—परि० २

असातं ति वा दुक्खं ति वा अपरिणिव्वाणं ति वा भयं ति वा एगट्ठा।
(आचू पृ ३१-३२)

असाहस—अचंचल।

असाहसो अचवलो अवत्थियमवेगिओ।
अणुब्भडो अरभसो अणुज्जलमचंचलो॥ (अंवि पृ ४)

असुइ—अपवित्र।

असुइं वा अचोक्खं पूइय। (राज ६)

अस्थान—अनुचित।

अस्थानम् अयुक्तम् असाम्प्रतम्। (सूटी १ पृ १६०)

अस्सि—कोण, कोना।

अस्सिति वा कोडित्ति वा एगट्ठा। (अनुद्वाचू पृ ५५)

अहाअत्थ—यथार्थ।

अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं। (स्था ७/१३)

अहाछंद—स्वच्छन्द।

अहाछंदो इच्छाछंदो त्ति एगट्ठा। (प्रसागा १२१)

अहासुत्त—विधि के अनुसार।

अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं अहासम्मं।[1] (भ २/५६)

अहिंसा—अहिंसा।

दीवो, ताणं, सरणं, गती, पइट्ठा, निव्वाणं, निव्वुई, समाही, सत्ती, कित्ती, कंती रती य, विरती य, सुयंग, तित्ती, दया, विमुत्ती, खंती, सम्मत्ताराहणा, महंती, बोही, बुद्धी, धिती, समिद्धी, रिद्धी, विद्धी, ठिती, पुट्ठी, नंदा, भद्दा, विसुद्धी, लद्धी, विसिट्ठदिट्ठी, कल्लाणं, मंगलं, पमोओ, विभूती, रक्खा, सिद्धावासो, अणासवो, केवलीण ठाणं, सिव-समिई-सील-संजमो त्ति य, सीलपरिघरो, संवरो य, गुत्ती, ववसाओ, उस्सओ य जण्णो, आयतणं जयणमप्पमाओ, आसासो, वीसासो, अभओ, सव्वस्स वि अमाघाओ, चोक्खपवित्ता, सुती, पूया, विमल-पभासा य, निम्मलतर त्ति। एवमादीणि नियगुण निम्मियाइं पज्जवणामाणि होंति अहिंसाए भगवतीए। (प्र ६/३)

१. देखें—परि० २

अहिंसा इ वा अज्जीवाइवातोत्ति वा पाणातिपातविरइ त्ति वा एगट्ठा ।[1] (दशजिचू पृ २०)

अहिट्ठयति—आचरण करता है ।

अहिट्ठयति त्ति वा आयरइ त्ति वा एगट्ठा ।[2] (दशजिचू पृ ३२७)

आइक्खइ—कथन करता है ।

आइक्खइ भासेइ पण्णवेइ परूवेइ ।[3] (भ २/३०)

आइक्खामि—कथन करता हूं ।

आइक्खामि विभयामि (विभावेमि) किट्टेमि पवेदेमि ।[4]
(सू २/१/११)

आइण्ण—व्याप्त ।

आइण्णं वितिकिण्णं उवत्थडं संथडं फुडं अवगाढावगाढं ।[5] (भ ३/४)

आइन्न—विनीत ।

आइन्ने य विणीए य भद्दए वा वि एगट्ठा । (उनि ६४)

आउट्टि—हिंसक ।

आउट्टि त्ति वा अब्भुट्ठि त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ २७५)

आउडिज्जमाण—पीटे जाते हुए ।

आउडिज्जमाणा वा हम्ममाणा वा तज्जिज्जमाणा वा ताडिज्जमाणा वा परिताविज्जमाणा वा किलामिज्जमाणा वा उद्दविज्जमाणा वा ।[6]
(सू २/२/४०)

आओडावेइ—प्रवेश कराता है ।

आओडावेइ त्ति आखोटयति प्रवेशयति ।[7] (विपाटी प ७२)

आओसण—आक्रोश ।

आओसणा निब्भच्छणा उद्धंसणा ।[8] (निर ८२)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० २
६. देखें—परि० २
७. देखें—परि० ३
८. देखें—परि० २

आओसेज्ज—आक्रोश करना।

आओसेज्ज वा हणेज्ज वा बधेज्ज वा महेज्ज वा तज्जेज्ज वा तालेज्ज वा निच्छोडेज्ज वा निब्भच्छेज्ज वा।[1] (उपा ७/२५)

आकुट्टि—हिंसा।

आकुट्टिः छेदन हिंसा। (आवमटी प ४८१)

आक्रोश—आक्रोश।

आक्रोशो निर्भर्त्सना उद्धर्षणा एते समानार्था.। (निरटी पृ १२)

आख्यात—कहा हुआ।

आख्यात प्ररूपितमित्येकोऽर्थः। (उचू पृ १)

आख्यातुम्—कहने के लिए।

आख्यातुं वा प्रज्ञापयितुं वा संज्ञापयितुं वा विज्ञापयितुं वा। (ज्ञाटी प ५५)

आगत—विज्ञात।

आगत आगमित गुणिय च एगट्ठा। (आचू पृ २२१)

आगम—उत्पत्ति।

आगम. हेतुः प्रभव प्रसूतिराश्रवमित्यनर्थान्तरम्। (सूचू २ पृ ४०८)

आगार—आकार, आकृति।

आगारो त्ति वा आगिति त्ति वा सठाण ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ ५५-५६)

आगार—घर।

आगार ति वा गिह ति वा एगट्ठा। (आचू पृ १८०)

आगासत्थिकाय—आकाशास्तिकाय।

आगासे इ वा, आगासत्थिकाए इ वा, गगणे इ वा, नभे इ वा, समे इ वा, विसमे इ वा, खहे इ वा, विहे इ वा, वीयी इ वा, विवरे इ वा, अबरे इ वा, अबरसे इ वा, छिड्डे इ वा, झुसिरे इ वा, मग्गे इ वा,

१. देखें—परि० ३

विमुहे इ वा, अट्टे इ वा, वियट्टे इ वा, आधारे इ वा, वोमे इ वा, भायणे इ वा, अंतलिक्खे इ वा, सामे इ वा, ओवासंतरे इ वा, अगमे इ वा, फलिहे इ वा, अणंते इ वा। जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते आगासत्थिकायस्स अभिवयणा।[1] (भ २०/१६)

आग्राहयति—पूर्ण रूप से ग्रहण कराता है।

आग्राहयति अर्थापयति वा आख्यापयति वा प्रत्याययति।[2] (भटी पृ ६६१)

आघवणा—आख्यान, कथन।

आघवणाहि पण्णवणाहि सण्णवणाहि विण्णवणाहि। (निर १/१०६)

आघविय—कथित

आघवियं पण्णवियं परूवियं दंसियं णिदंसियं उवदंसियं।[3] (अनुनदी ८)

आचार—शील।

आचारो त्ति वाऽऽचरणं ति वा संवरो त्ति वा संजमो त्ति वा बंभचेर ति वा एगट्ठ। (सूचू२ पृ ४०३)

आचिक्खति—कथन करता है।

आचिक्खति कधेति त्ति जंपति भणति त्ति वा।[4] (अंवि पृ ८३)

आढाइ—आदर करता है।

आढाइ परिजाणेइ वंदइ णमंसइ सक्कारेइ सम्माणेइ।[5] (सू २/७/१३)

आणंतरिय—आनन्तर्य।

आणंतरियं ति वा अणुपरिवाडि त्ति वा अणुक्कमे त्ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ ७२)

---

१ देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० ३

आणा—आज्ञा ।

आण त्ति उववायो त्ति वा उवदेसो त्ति वा आगमो त्ति वा एगट्ठा ।
(दशजिचू पृ ३३८)

आणेत्ति वा सुतं ति वा वीतरागादेसो त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३२)

आण त्ति वा नाण त्ति वा पडिलेहि त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ १६८)

आणा उववाय वयण निद्देसे ।[1] (भ ३/७१)

आणुपुब्वि—क्रम ।

आणुपुव्वी परिवाडी कमो एगट्ठा । (आवचू . ३३४)

आणेति—लाता है ।

आणेति व देति व उवणामेति ।[2] (अवि पृ ८३)

आतट्ठि—आत्मार्थी ।

आतट्ठी आत्मार्थी आयतार्थी वा । (दश्रुचू प २७)

आतिण्ण—पूजित ।

आतिण्णं ति वा पूजितं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २०४)

आदर्श—स्वच्छ, निर्मल ।

आदर्श. शुद्धः स्फटिकः अलक्तकः । (विभाकोटी पृ ७७५)

आदान—प्रसूति ।

आदान प्रसूतिराश्रयो वा । (सूचू १ पृ ३८)

आदित्य—सूर्य ।

आदित्यः सविता भास्करः दिनकरः । (आवचू १ पृ ४६१)

आदियति—ग्रहण करना ।

आदियति ति वा गेण्हितित्ति वा...आयरणंति वा एगट्ठा ।[3]
(दशजिचू पृ २६६)

आदेश—व्यवहार ।

आदेश व्यवहारः उपचारः । (विभाकोटी पृ ६५६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० ३

आनुपूर्विन्—क्रम ।

आनुपूर्वी अनुक्रमोऽनुपरिपाटीति पर्यायाः । (अनुद्वामटी प ४६)

आनुपूर्व्यनुक्रमः परिपाटी । (उचू पृ २६)

आपिबति—ग्रहण करता है ।

आपिबति आदियति त्ति एगट्ठा ।[1] (दशजिचू पृ ६३)

आपूरित—व्याप्त ।

आपूरितं व्याप्तं भूतं वासितम् । (विभामहेटी १ पृ १२७)

आप्त—वीतराग पुरुष ।

आप्त· मोक्षमार्गगामी आत्महितगामी वा प्रक्षीणदोषः सर्वज्ञः ।
(सूटी १ प १९६)

आप्त—प्रिय ।

आप्ता इट्ठा कंता पिया । (दश्रुचू प २७)

आभिणिबोहिय—मतिज्ञान ।

ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।
सण्णा सई मई पण्णा सव्वं आभिणिबोहियं ॥[2] (नंदी ५४)

आभोग— उपयोग (मनोयोग)

आभोग मग्गण गवेसणा य ईहा अपोह पडिलेहा ।
पेक्खणनिरिक्खणावि अ आलोयपलोयणेगट्ठा ॥[3]
(ओनि ३)

आभोगण—आसेवन करना ।

आभोगणं ति वा मग्गणं त्ति वा भोगणं ति वा एगट्ठं ।
(व्यभा ४/१ टी प २४)

आमेलक—मुकुट ।

आमेलकः आपीडः शेखरकः । (राजटी पृ १६५)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

आम्रचिञ्चा—इमली।

आम्रचिञ्चा चिञ्चनिका आम्बिली। (व्यभा ६ टी प १८)

आय—कारण।

आयः उपादान हेतुः। (विभामहेटी २ पृ २२६)

आय—प्राप्ति।

आयो पावण लाभो इत्यनर्थान्तरम्। (नंदीचू पृ १३)

आयो लाभ प्राप्तिरिति पर्यायाः। (नंदीटि २ पृ ११२)

आउ त्ति वा आगमु त्ति वा लाभु त्ति वा हुंति एगट्ठा। (उनि ६)

आयंत—पवित्र।

आयंता चोक्खा परमसुइभूया। (ज्ञा १/१/८१)

आयट्ठि—आत्मार्थी।

आयट्ठी आयहिए आयगुत्ते आयजोगी आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकपए आयणिप्फेडए।[1] (सू २/२/८१)

आययण—संभव।

आययण सभवो त्ति वेगट्ठा। (निभा २५३५)

आययण ति वा संभवट्ठाणं ति वा एगट्ठं। (निचूभा २४५६)

आयतन—आयतन।

आयतनं स्थान चैत्यम्। (जबूटी प ७६)

आयाम—आयाम।

आया" विक्खभ दो वि पदा एगट्ठा।[2] (नंदीचू पृ २४-२५)

आयार—आचार।

आयारो आचालो आगालो आगरो य आसासो।
आयरिसो अगंति य आइण्णाऽऽजाइ आमोक्खा॥[3] (आनि ७)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

३. देखें—परि० २

आयार—विनय ।

आयारोत्ति वा विणयोत्ति वा एगट्ठं । (उशाटी प ३४४)

आयास—कलह ।

आयास-विसूरण कलह मडण वेराणि । (प्र ५/६)

आयासं कलहं वा वि सतासं आविलं तहा । (अंवि पृ १२)

आरंभ—असंयम ।

आरंभो असंजमो अविरती वा एगट्ठा । (सूचू २ पृ ३७०)

आरंभकड—हिंसा से निष्पन्न ।

आरभकडे ति वा सावज्जकडे ति वा पयत्तकडे ति वा ।

(आचूला ४/२२)

आरभइ—हिंसा मे प्रवृत्त होता है ।

आरभइ सारभइ समारभइ ।[1] (भ ३/१४५)

आरित—बुलाना ।

आरितो आगारितो सारितो एगट्ठं । (निचूभा ४ पृ २४४)

आरितो आगारितो सावितो य एगट्ठ । (आवचू २ पृ २३४)

आरिय—आर्य ।

आरिए आरियपण्णे आरियदसी । (आ २/१०६)

आरोह—विशालता ।

आरोहो दीर्घत्वं परिणाहो विष्कभो विशालता ।

(व्यभा १० टी प ३८)

आलंब—आधार ।

आलंबे वा आहारे वा पडिबधे वा । (ज्ञा १६/३१२)

---

१. देखें—परि० ३

आलीन—प्रमाणयुक्त ।

आलीनानि-सुश्लिष्टानि प्रमाणयुक्तानि । (ज्ञाटी प ७२)

आलुक्कई— देखता है ।

आलुक्कई पलुक्कई लुक्कई संलुक्कई य एगट्ठा ।[1]

(आवनि १०५८)

आलोइज्जइ—आत्मालोचन करता है ।

आलोइज्जइ निंदिज्जइ गरिहिज्जइ विउट्टिज्जइ विसोहिज्जइ अकरणाए अब्भुट्ठिज्जइ पडिक्कमिज्जइ ।[2] (उपा १/७८)

आलोचन—अभिव्यक्ति ।

आलोचनं विकटनं प्रकाशनमाख्यानं प्रादुष्करणमित्यनर्थान्तरम् ।

(उशाटी प ६०८)

आलोयण—अभिव्यक्ति ।

आलोयणं ति वा पगासकरण ति वा अक्खण ति वा विसोहि त्ति वा वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २५)

आलोयणा— आलोचना ।

आलोयणा वियडणा सोही सब्भावदायणा चेव ।
निंदण गरिह विउट्टण, सल्लुद्धरणं ति एगट्ठा ।।[3]

(ओनि ७९१)

आवस्सग—नित्यकर्म ।

आवस्सग ति वा अवस्सकायव्व अवस्सकरणं ति वा अवस्सकरणिज्ज ति वा धुवकायव्व ति वा निग्गहो त्ति वा ।[4] (आवचू १ पृ ७९-८०)

आवस्सय—आवश्यक कर्म, नित्यकर्म ।

आवस्सय (आवासतं) अवस्सकरणिज्जं धुवनिग्गहो विसोही य ।
अज्झयणछक्कवग्गो नाओ आराहणा मग्गो ।।[5]

(अनुद्वा २८)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

आवहंति—करता है।

आवहंति कुव्वइ त्ति वा भवइ त्ति वा एगट्ठा।[1]

(दशजिचू पृ ३२९)

आवीलए—आपीडन करे (तप करे)।

आवीलए पवीलए निप्पीलए।[2] (आ ४/४०)

आसंदग—पादपीठ।

आसंदगो भद्दपीढं ति पादफलं वट्टपीढकं।[3] (अंवि पृ ६५)

आसाएइ—इच्छा करता है।

आसाएइ तक्केइ पीहेइ पत्थेइ अभिलसइ।[4] (उ २९/३४)

आसुरत्त—कुपित।

आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चण्डिक्किए मिसिमिसीयमाणे (मिसिमिसेमाणे)।[5]

(उपा २/३२)

आस्पृष्ट—व्याप्त।

आस्पृष्टा व्याप्ता आक्रान्ता। (अनुद्वामटी प १७८)

आहणइ—हिंसा करता है।

आहणइ हिंसति अक्कोसति।[6] (उचू पृ १०३)

आह्वान—अपलाप।

आह्वानं निन्ह्वं अपलापः। (उचू पृ २९)

आहाकम्म—आधाकर्म (भोजन का एक दोष)।

तत्थ इमे णामा खलु आहाकम्मस्स होंति चत्तारि।
आहकम्म अहकम्मे य अहयम्मे अत्तकम्मे य॥

(जीतभा १०९९)

आहाकम्म अधे य कम्मे आयाकम्मे य अत्तकम्मे य।

(निभा २६६७)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० २
६. देखें—परि० ३

आहा (कम्म) अहे य कम्मे आयाहु (आताहु) कम्मे य अत्तकम्मे य ।[1] (बृकभा ६३७५)

आहित—आख्यात ।

आहितमाख्यातं कथितमित्येकोऽर्थः । (सूचू १ पृ ६६)

आहुणिज्जमाणी—कंपित होती हुई ।

आहुणिज्जमाणी सचालिज्जमाणी संखोभिज्जमाणी । (ज्ञा १/६/१०)

आहेवच्चं—आधिपत्य ।

आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं ।[2] (अंत ३/८१)

इंखिणी—तिरस्कार ।

इंखिणी खिसणा णिंदणा हीलणा । (सूचू १ पृ ५६)

इंगालछारिगा—राख ।

इंगालछारिगा व त्ति भूती भस्सो त्ति वा पुणो । (अवि पृ १०६)

इंद—इन्द्र ।

सक्क-सहस्सक्ख-वज्जपाणि-पुरंदरादीणि इंदस्स एगट्ठियाणि ।[3] (दशजिचू पृ १०)

इच्छा—इच्छा ।

इच्छाचच्छन्दः इत्येकार्थः । (व्यभा ३ टी प ११२)

इच्छित—अभिलषित ।

इच्छितचिंतित पत्थिय । (आवचू १ पृ ४८३)

इच्छिय—अभिलषित ।

इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । (ज्ञा १/१/१०२)

इच्छिय पडिच्छिय इच्छिय-पडिच्छिय । (भ २/५२)

इज्जा—माता ।

इज्ज त्ति वज्जा माया मज्जा ।[4] (अनुद्वाचू पृ १३)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

३. देखें—परि० २

४. देखें—परि० २

इट्ठ—प्रिय ।

इट्ठ कंत पिय मणुण्ण मणाम मणाभिराम-हिययगमणिज्ज ।
(औप ६८)

इट्ठं कंतं पियं मणुण्णं मणामं पेज्जं । (औप ११७)

इट्ठा सुभा कंता मणामा (सू चू १ पृ ४८)

इट्ठा वल्लभा कांता (ज्ञाटी प १५)

इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा उराला कल्लाणा सिवा धण्णा मंगल्ला । (स्था ६/६२)

इट्ठता—प्रियता ।

इट्ठत्ताए कंतत्ताए पियत्ताए सुभत्ताए मणुण्णत्ताए मणामत्ताए इच्छिय-त्ताए अणभिज्झियत्ताए । (भ ६/२२)

इत—गया हुआ ।

इतः गतः स्थित इत्यनर्थान्तरम् । (विभामहेटी १ पृ १७५)

इसि—ऋषि ।

इसि त्ति वा रिसि त्ति वा एगट्ठं । (उचू पृ २०८)

इस्सर—ईश्वर ।

इस्सरो पभू सामी । (आचू पृ ३५२)

ईश्वर—ईश्वर ।

ईश्वरः प्रभुः महेश्वरः । (सूचू १ पृ ४१)

ईसिपब्भारपुढवी—ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी ।

ईसि ति वा, ईसिपब्भारा ति वा, तणूति वा, तणुतणूइ वा, सिद्धीति वा, सिद्धालए ति वा, मुत्तीति वा, मुत्तालए ति वा । (स्था ८/११०)

इसि त्ति वा, ईसिपब्भारत्ति वा, तणूइ वा, तणुयतरि ति वा, सिद्धित्ति वा, सिद्धालएत्ति वा,, मुत्तीति वा, मुत्तालएत्ति वा, बंभेत्ति वा, बंभवडेंसएत्ति वा, लोकपडिपूरणेत्ति वा, लोगग्गचूलिआइ वा ।
(सम १२/११)

ईसी इ वा, ईसीपब्भारा इ वा, तणू इ वा, तणूयरी इ वा, सिद्धी इ वा, सिद्धालए इ वा, मुत्ती इ वा, मुत्तालए इ वा, लोयग्गे इ वा, लोयग्गथूभिगा इ वा, लोयग्गपडिबुज्झणा इ वा, सव्वपाण (सुहावहा), सव्वभूय (सुहावहा), सव्वजीव (सुहावहा), सव्वसत्त (सुहावहा) इ वा ।[1] (औप १९३)

ईहा—ईहा (मतिज्ञान का भेद) ।

आभोगणया मग्गणया गवेसणया चिंता वीमंसा । (नंदी ४५)

ईहाऽपोहो मार्गणा गवेषणा चिन्ता विमर्शः । (नंदीटी पृ ६१)

उउमास—ऋतुमास (श्रावण) ।

उउमासो कम्ममासो सावणमासो ।[2] (व्यभा २ टी प ७)

उक्कंचण—माया ।

उक्कंचण वचण माया णियडि कूड कवड साइ संपओगबहुला ।[3]
(सू २/२/५८)

उक्कंपित—क्षिप्त

उक्कपिते झपिते खित्ते । (अवि पृ १४३)

उक्कड्ढ- खींचा हुआ ।

उक्कड्ढमोकड्ढो अब्बोकड्ढे त्ति वा पुणो । (अवि पृ ८६)

उक्कसण—उत्कर्ष ।

उक्कसण माणण ति य एगट्ठं । (व्यभा ४/३ टी प ४९)

उक्किट्ठ—उत्कृष्ट, शीघ्र ।

उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए छेयाए सीहाए सिग्घाए उद्धुयाए । (भ ११/१०९)

उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जवणाए सिग्घाए उद्धुयाए ।
(ज्ञा १/१६/२०४)

उक्किट्ठाए सिग्घाए चवलाए तुरियाए दिव्वाए ।[4]
(आचूला १५/२७)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

उद्गित—बाहर निकला हुआ ।

उद्गिते पत्थिते वा णिग्गते वा णिल्लोकिते वा णिल्लालिते वा णिल्लिखिते वा अवसारिते अवसक्किते अपव्रजाते वा विप्पमुंचणे अपंगुते । (अंवि पृ १६८)

उत्तरकरण—विशुद्धीकरण ।

उत्तरकरण पायच्छित्तकरण विसोहीकरण विसल्लीकरण पदानि एगट्ठितानि ।[1] (आवचू २ पृ २५१)

उत्तारिय—विमुक्त ।

उत्तारियं ति वा विमोक्खितं ति वा एगट्ठं । (सूचू १ पृ ८५)

उत्पादयति—उत्पन्न करता है ।

उत्पादयति किरियंति वा एगट्ठं ।[2] (सूचू २ पृ ३६७)

उदग्ग—प्रधान ।

उदग्गं पधानं शोभनम् । (उचू पृ १६६)

उदग्र—ऊंचा ।

उदग्र उच्चं समुच्छ्रितम् । (उपाटी पृ १११)

उदार—मनोज्ञ ।

उदाराः शोभना मनोज्ञाः । (सूटी १ प १८४)

उद्दवण—उद्रवण ।

उद्दवण विराहणेगट्ठं । (जीतभा १७७८)

उद्दामित—बन्धन-मुक्त ।

उद्दामिता अपनीतबन्धना प्रलंबिता । (विपाटी प ४६)

उद्दिट्ठ—कथित ।

उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ ।[3] (स्था ५/६८)

उद्दिष्ट—ईप्सित ।

उद्दिष्टा ईप्सिता इत्यनर्थान्तरम् । (व्यभा २ टी प ६४)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २

उद्दूढ—पीड़ित किया हुआ।

उद्दूढे जित-पराजिते विहुले। (अंवि पृ २५०)

उद्घृत—उखाड़ा हुआ।

उद्घृतः उत्पाटितो गृहीतः। (व्यभा २ टी प ५१)

उपदेस—उपदेश।

उपदेसो त्ति वा आदेसो त्ति वा पण्णवण त्ति वा परूवण त्ति वा एगट्ठा। (नदीचू पृ ४६)

उपनीयते—प्राप्त करता है।

उपनीयते त्ति वा उपपदरिसिते त्ति वा एगट्ठ।[1] (सूचू १ पृ १३२)

उपयोग—विमर्श।

उपयोगः चिंता विमर्श इत्यनर्थान्तरम्। (बृकटी पृ १८४)

उपयोग—प्रस्तावित क्रम।

उपयोगोऽधिकार इति पर्याया.। (आवहाटी २ पृ २३३)

उपश्रा—द्वेष।

उपश्रा द्वेष इत्यनर्थान्तरम्। (व्यभा १ टी प १०)

उप्पज्जते—उत्पन्न होता है।

उप्पज्जते त्ति वा बूया दिस्सते सूयते त्ति वा।[2] (अवि पृ ८३)

उप्पल—कमल।

उप्पलाणं पउमाणं कुमुयाण णलिणाण सुभगाणं सोगंधियाण (सुगंधिए) पोंडरीयाण महापोंडरीयाणं सयपत्ताणं सहस्सपत्ताण कल्हाराणं कोकणयाणं अरविंदाणं तामरसाणं भिसाण भिसमुणालाणं पुक्खलाणं पुक्खलच्छिभगाण।[3] (सू २/३/४३)

---

१. देखें—परि० ३

२. देखें—परि० ३

३. देखें—परि० २

उक्खिण्ण—अवकीर्ण ।

उक्खिन्ने विक्खिन्ने वितिगिण्णे विप्पइण्णे । (बृकचू प १४१)

उक्ति—उक्ति ।

उक्तिर्वचनं वाग्योगः । (अनुद्वाहाटी पृ २२)

उक्खुमड्ड—बार बार ।

उक्खुमड्ड त्ति वा बहुसो त्ति वा भूयो भूयो त्ति वा पुणो पुणो त्ति वा एगट्ठं ।[1] (निचूभा ४ पृ ३०८)

उग्गम—उद्गम ।

उग्गमो पसूई पभवो एमावि होंति एगट्ठा । (पंचा प ३४१)

उग्गय—उदय ।

उग्गयं इति वा उदओ त्ति वा एगट्ठं । (निचूभा ३ पृ ७०)

उग्गविस—तीव्रविष ।

उग्गविसं चंडविसं घोरविसं महाविसं ।[2] (भ १५/६३)

उग्गह—अवग्रह ।

उग्गह ति वा अवग्गहो त्ति वा एगट्ठं । (अनुद्वाचू पृ ३३)

उग्गह—अवग्रह । (मतिज्ञान का भेद)

ओगेण्हणया उवधारणया सवणया अवलंबणया मेहा । (नंदी ४३)

उग्गिण्हणया अवधारणया सवणया अवलंबणया मेहा ।[3] (भटी पृ ६३३)

उग्घायण—विनाश ।

उग्घायणं ति वा उप्पायणं ति वा एगट्ठा । (आचू पृ १००)

उच्चच्छंद—स्वच्छंद ।

उच्चच्छंदा अणिग्गहा अणियता ।[4] (प्र २/३)

उच्चयरक—ऊंचा ।

उच्चयरकं महतरकं परग्घतरकं । (अंवि पृ १६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

उच्चावच — उच्चावच ।

उच्चावचा अनुकूलप्रतिकूला असमञ्जसा । (अंतटी प १८)

उच्छोलेंति — स्नान करते हैं ।

उच्छोलेंति पधोवेंति सिंचंति सिणावेंति ।[1] (आचूला ७/१६)

उज्जल — विपुल, दारुण ।

उज्जल विउलं (तिउलं) पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं निट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं । (भ ५/१३८)

उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा ।[2] (अंत ३/६०)

उज्जल बल विउल उक्कड खर फरुस पयंड घोर बीहणग दारुणाए । (प्र १/२५)

उज्जु — मुनि ।

उज्जु त्ति वा अणगारो त्ति वा मुणि त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ २४)

उज्जुगत्तण — ऋजुता ।

उज्जुगत्तणं ति वा अकुटिलत्तणं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ १८)

उज्जुय — ऋजुक ।

उज्जुयं अकुडिलं भूयत्थं ।[3] (प्र ७/१)

उज्झीयति — छोड़ता है ।

उज्झीयति विज्झीयति हायति त्ति परिहायति ।[4] (अंवि पृ २५०)

उट्ठाण — पुरुषार्थ ।

उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे ।[5] (भ १२/१११)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० २

उवेइ—आता है।

उवेइ त्ति वा गच्छइ त्ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ ३४८-४९)

उवेंति वा वयंति वा एगट्ठा।[1] (दशजिचू पृ २३४)

उवेति—नीचे उतरता है।

उवेति त्ति वा उत्तरतित्ति वा अवतरतित्ति वा एगट्ठं।[2]

(अनुद्वाचू पृ २१)

उवेहति

उवेहति उत्प्रेक्षते विशेषयति।[3] (निचूभा ४ पृ ३०)

उव्वत्तेइ—स्पंदित करता है।

उव्वत्तेइ परियत्तेइ आसारेइ संसारेइ चालेइ फंदेइ घट्टेइ खोभेइ टिट्टियावेइ।[4] (ज्ञा १/३/२१)

उसभ—बैल।

उसभो बलिवद्दो वच्छको तण्णको त्ति वा। (अंवि पृ ६२)

उस्सग्ग—उत्सर्ग।

उस्सग्गं विउस्सरणमुज्झणा य अवगिरण छड्डण विवेगो।

वज्जण चयणुम्मुअणा परिसाडण साडणा चेव।।

(आवनि १४५१)

उस्सय—उत्सव।

उस्सयो त्ति समासो त्ति विहि जण्णो छणो त्ति वा। (अंवि पृ १२१)

उस्सिंघण—मर्दन।

उस्सिंघण-मक्खणऽब्भगण उच्छुंदण उव्वट्टण। (अवि पृ १९३)

ऊसढ—ऊंचा।

ऊसढ ति वा उच्चं ति वा एगट्ठं। (दशजिचू पृ १९९)

ऊहित—चिंतित।

ऊहित गुणितं चिंतित एगट्ठा। (आचू पृ १७१)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३

ऋजु— सरल ।

ऋजुः प्रगुणमकुटिलम् । (प्रसाटी प २४५)

ऋजुः अकुटिलः निरुपधः । (सूचू १ पृ ३६)

ऋतुसंवत्सर—कर्म संवत्सर का एक नाम । वह संवत्सर जिसमें पूरे ३६० अहोरात्र होते हैं ।

ऋतुसंवत्सरः सावनसंवत्सरश्चेति पर्यायौ ।[1] (स्थाटी प ३२८)

ऋषि—ऋषि ।

ऋषय. महर्षयः यतय. । (दशहाटी प ११६)

एइज्जमाण—प्रकंपित होता हुआ ।

एइज्जमाणा वेइज्जमाणा पकंपमाणा पभंझमाणा ।
(जीवटी प २११)

एगपडिरय—एक रूप से कहा जाने वाला ।

एगपडिरय ति वा एगपज्जायं ति वा एगणामभेदं ति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ २६)

एजणा—प्रकंपन ।

एजणा वेदणा खोभणा घट्टणा फंदणा चलणा उदीरणा ।[2]
(इभा ११/१)

एजन—कम्पन ।

एजन कम्पनं गमनं क्रियेत्यर्थान्तरं । (सूचू २ पृ ३३६)

एसणा—एषणा ।

एसण गवेसणण्णेसणा य गहणं च होंति एगट्ठा । (पंचा पृ ३५१)

एसण गवेसणा मग्गणा य उग्गोवणा य बोद्धव्वा ।
एए उ एसणाए नामा एगट्ठिया होंति ॥ (पिनि ७३)

ओघ— सामान्य ।

ओघः सक्षेपः समास सामान्यमित्येकोऽर्थः । (ओनिटी पृ ४)

ओघेन सामान्येन उत्सर्गतः । (पंचा पृ १२०)

---

१. देखें—परि० २ २. देखें—परि० २

उप्पायण—उत्पादन ।

उप्पायण संपायण णिव्वत्तणमो य होंति एगट्ठा।[1] (पंका प ३४७)

उप्पिलावण—प्लावन, बहा देना ।

उप्पिलावणं ति वा प्लावणं ति वा एगटठा । (दशजिचू पृ २३१)

उब्भिण्णं—उद्भिन्न, अभिव्यक्त ।

उब्भिण्ण मुक्कमवंगुतं ति पागडियं वंसियं बहिट्ठं वा सुव्वत्तं ।
(अंवि पृ २४५)

उभय—युगल ।

उभओ त्ति वा दुहओ त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३१६)

उल्लोइत—ऊंचा करना ।

उल्लोइते उस्सिते उच्चारिते उण्णामिते उत्थिते उपसारिते उपवप्पिते
उपलोलिते उपकड्ढिते उपवत्ते उपणते उपणद्धे । (अंवि पृ १६८)

उल्लोहित—चूने से पुता हुआ, आवृत ।

उल्लोहित उव्वलितं तधा उच्छाडितं ति वा । (अंवि पृ १०६)

उवचरित—ज्ञात ।

उवचरिताधीतगमितमेगट्ठा । (निपीभा ५८)

उवचार—पठित, गृहीत ।

उवचारो त्ति वा अहीतं ति वा आगमियं ति वा गृहीतं ति वा
एगट्ठं । (निपीचू पृ ३०)

उवचारं ति अहीयं ति अब्भीतं ति वा एगट्ठं । (आचू पृ ३२६)

उवचारो ग्रहण अधिगम । (निपीचू पृ २९)

उवट्ठिय—उपस्थित ।

उवट्ठिओ त्ति वा अब्भुट्ठिओ त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३०८)

उवधि—माया ।

उवधि-णिकडि-सातिजोगकरणे । (अंवि पृ २६३)

उवधी-णियडिजोगेसु सातिजोगमणज्जवे । (अंवि पृ २६८)

---

1. देखें—परि० २

उवम्म—उपमा।

उवम्म त्ति वा सरिस त्ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ ३०५)

उवयंति—पास में जाता है।

उवयंति त्ति वा पक्खतित्ति वा छुभंति त्ति वा।[1] (अनुद्वाचू पृ २१)

उववाय—आज्ञा।

उववाओ निद्देसो आणा विणओ य होंति एगट्ठा।

(व्यभा ४/३५४)

उववूह—प्रशंसा।

उववूह त्ति वा पसंसत्ति वा सद्धाजणणंति वा सलाघणंति वा एगट्ठा।

(निपीचू पृ २६)

उवसंत—उपशान्त।

उवसंत समिए सहिते सया जए। (आ ५/७५)

उवसंते उवट्ठिए पडिविरते। (सू २/२/४५)

उवसग—उपाश्रय।

उवसग पडिसग सेज्जा आलय वसधी णिसीहिया ठाणे एगट्ठ।[2]

(बृकभा ३२९५)

उवसम—उपशम।

उवसमं णिव्वाणं समणं संति। (आचू पृ २३७)

उवसमण—उपशमन।

उवसमण ति वा णामणं ति वा एगट्ठा। (आचू पृ १२६)

उवसमसार—उपशम का सार।

उवसमसार उवसमप्पभवं उवसममूलं। (दश्रुचू प ७०)

उवहि—उपकरण।

उवही उवग्गहे संगहे य तह पग्गहुग्गहे चेव।
भंडग उवगरणे य करणेवि य हुंति एगट्ठा॥[3] (ओनि ६६६)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

कंति—कान्ति ।

कंतीए दित्तीए जुत्तीए छायाए पभाए ओयाए लेसाए ।[1]

(ज्ञा १/१०/२)

कंदण—क्रन्दन ।

कंदणता सोयणता तिप्पणता परिदेवणता ।[2] (स्था ४/६२)

कक्क—रत्न विशेष ।

कक्कं ति वा रत्तं ति वा एगट्ठा ।[3] (अनुद्वाचू पृ ५१)

कक्क—माया ।

कक्ककुरुया य माया नियडीए डंभणं ति ।[4] (प्रसा ११५)

कक्कस—कर्कश ।

कक्कसे कडुए णिट्ठुरे फरुसे । (औप ४१)

कक्खडी—कर्कश ।

कक्खडीओ त्ति कठिने निर्मांसे । (उपाटी पृ १०२)

कज्ज—कार्य ।

कज्ज ति वा कारणं ति वा एगट्ठ । (व्यभा ६ टी प ४७)

कडग—कंकण ।

कडग-रुयक सूचीका । (अवि पृ १६३)

कडपल्ल—धान्यशाला ।

कडपल्लत्ति वा तणपल्लत्ति वा धन्नसालत्ति वा वलयत्ति वा एगट्ठा ।

(बृकचू प १४१)

कडीय—करधनी ।

कडीय कंचिकलापक मेखलिका कडिउपकाणि । (अंवि पृ १६३)

कड्ढण—निकालना ।

कड्ढणं आगरिसणं उद्धरणं । (निपीचू पृ १२२)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

३. देखें—परि० २

४. देखें—परि० २

कण्ह—कृष्ण, काला ।

कण्हू णील ति वा बूया कालकं असितं ति वा ।
असितं किसिणं व त्ति हरितं ति व जो वदे ।।

(अवि पृ ६२)

कण्हराति—कृष्णराजि ।

कण्हराती इ वा, मेहराती इ वा, मघा इ वा, माघवइ इ वा, वाय-फलिहा इ वा, वायपलिक्खोभा इ वा, देवफलिहा इ वा, देवपलिक्खोभा इ वा ।[1] (भ ६/१०३)

कतत्थ—कृतार्थ ।

कतत्थो कतकज्जो त्ति संपत्तमणोरधो त्ति वा । (अवि पृ १२१)

कप्प—मर्यादा ।

कप्पो मेरा मज्जाया । (दश्रुचू प ६६)

कप्प—आचार ।

कप्पो त्ति वा मग्गो त्ति वा आयारो त्ति वा धम्मो त्ति वा एगट्ठा ।
(आचू पृ २१७)

कप्पिय—फाड़ा हुआ ।

कप्पिओ फालिओ छिन्नो उक्कत्तो । (उ १६/६२)

कमल—कमल ।

कमलं पद्म अरविन्दं पंकजं सरोजं तामरसजलरुह ।[2]
(विभाकोटी पृ ३६६)

कम्म—कर्म ।

पावे वज्जे वेरे पणगे पंके खुहे असाए य ।
संगे सल्ले अरए निरए धुत्ते य एगट्ठा ।।
कम्मे य किलेसे य समुदाणे खलु तहा मइल्ले य ।
माइणो अप्पाए य दुप्पक्खे तह संपराए य ।।

(दश्रुनि १२२-२३)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २

ओधावति—दौड़ता है ।

ओधावति त्ति वा बूया अहिधावति णोल्लति ।[1] (अपि पृ ८०)

ओभासेइ—उद्योतित करता है ।

ओभासेइ उज्जोएइ तवेइ पभासेइ । (भ १/२५७)

ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पगासिंति ।[2] (सूर्य टी प ६३)

ओयंसि—ओजस्वी ।

ओयंसी तेयंसी वच्चंसी असंसी ।[3] (ज्ञा १/१/४)

ओयण—भात ।

ओयणो कूरो भत्तं । (सूचू २ पृ ३३०)

ओराल—विपुल ।

ओरालेणं विपुलेण पयत्तेणं पग्गहिएण कल्लाणेण सिवेण धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएण उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं महाणुभागेणं । (भ ३/१०४)

ओरालं (उराल) विस्तरालं विसालं । (अनुद्वाचू पृ ६०-६१)

ओराले त्ति उदार: प्रधान: ।[4] (ज्ञाटी प ८)

ओवास—अवकाश ।

ओवासो अवगासो स्थानम् । (निचूभा ४ पृ १८७)

ओवीलेमाण—पीटे जाते हुए ।

ओवीलेमाणे विहम्मेमाणे तज्जेमाणे तालेमाणे ।[5] (विपा ३/६)

ओसारित— अपसृत ।

ओसारिते ओमत्थिते ओणामिते ओवट्टिते ओलोकिते ओकट्ठिते ओवत्ते ओणते उग्गहिते उच्छुद्धे ओतारिते ओतिण्णे उक्खित्ते ओमुक्के । (अंवि पृ १७१)

ओसरिते ओमथिते ओणामिते ओवट्टिते ओलोलिते ओकड्ढिते ओवत्ते ओणते ओछुद्धे ओतारिए ओमुक्के । (अंवि पृ १६६)

---

१. देखें—परि० ३

२. देखें—परि० ३

३. देखें—परि० २

४. देखें—परि० २

५. देखें—परि० २

ओसारेति—फाड़ता है।

ओसारेति पाटयति स्फाटयति।[1] (अनुद्वाचू पृ ५६)

ओह—ओघ, संक्षेप।

ओह संक्षेप. स्तोक:। (निचूभा २ पृ १८८)

ओहे पिंड समासे संखेवे चेव होंति एगट्ठा। (ओनिभा १)

ओहबल—

ओहबले अइब्बले महब्बले। (उपाटी पृ० १२६)

ओहय—पराजित।

ओहय उद्धिय निज्जित पराजित। (आवचू १ पृ ४७६)

ओहयकंटय—उद्धृतकंटक।

ओहयकंटय निहतकंटयं मलियकंटयं उद्धियकटयं अप्पडिकंटयं अकंटयं। (आवचू १ पृ ४७६)

ओहयकटयं निहयकटयं गलियकंटयं उद्धियकंटय अकंटयं।
(ज्ञाटी प ६०)

कंखइ—आकांक्षा करता है।

कखइ पत्येइ पीहेइ अभिलसइ। (राज ६७७)

कखति पत्थंति गच्छति एगट्ठा[2]। (आचू पृ २०५)

कंची—करधनी।

कंची व रसणा व त्ति जंबूका मेखल त्ति वा।
कंटक त्ति व जो बूया, तधा संपडिक त्ति वा॥[3] (अंवि पृ ७१)

कंत—कान्त।

कंते पियदंसणे सुरूवे पडिरूवे। (भ १३/१०२)

कंते सोभत रुइल रमणिज्ज। (जंबू २/१५)

---

१ देखें—परि० ३

२. देखें—परि० ३

३. देखें—परि० २

काय—शरीर ।

काय सरीर देहे बुंदी य चय उवचय य संघाए ।
उस्सय समुस्सय वा कलेवरे भत्थ तण पाणु ॥[1]
(आवनि १४४६)

कारण—कारण ।

कारणं ति वा कज्जं ति वा एगट्ठं । (व्यभा १ टी १५८)

कारणं ति वा कारगं ति वा साहणं ति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ ३७२)

काल—समय ।

कालो त्ति व समओ त्ति वा अद्धा कप्पो त्ति एगट्ठं ।[2]
(व्यभा ४/३३०)

काहावण—कार्षापण (सिक्का) ।

काहापणो खत्तपको पुराणो त्ति व जो वदे ।
सतेरको त्ति । (अंवि पृ ६६)

किट्टते—कथन करता है ।

किट्टते ति वा कहेति त्ति वा एगट्ठा ।[3] (आचू पृ २५०)

कित्तइस्सामि—कथन करुंगा ।

कित्तइस्सामि वण्णिस्सामि पल्वेस्सामि कहेस्सामि ।[4] (दश्रुचू प ३)

कित्तण—कीर्तन ।

कित्तण पसंसणा वि अ एगट्ठा । (आवनि १०९२)

कित्ति—कीर्ति ।

कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठया एगट्ठा ।[5] (दशजिचू पृ ३२८)

किब्बिस—पाप ।

किल्बिसं कलुसं कल्मषं पापमित्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ३५१)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० २

कीव—क्लीव।

कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं। (अंत ३/७३)

कुंचि—मायावी।

कुंची कुटिलो मायावी। (व्यभा ३ टी प ४३)

कुंडल—कुंडल।

कुंडलं वा बको व त्ति मत्थगो तलपत्तकं।
दक्खाणकं कुरबको अथवा कण्णकोवगो॥
कण्णपीलो त्ति वा बूया कण्णपूरो त्ति वा पुणो।
कण्णस्स सीलको व त्ति अथवा कण्णलोडको॥[1] (अंवि पृ ६५)

कुच्छति—निंदा करता है।

कुच्छति गरहति निंदति।[2] (निपीचू पृ १६)

कुट्टण—पीटना।

कुट्टण-पिट्टण-तज्जण-ताडण। (सू २/२/५८)

कुब्ज—कुबडा।

कुब्जा कुब्जिका वक्रजघा। (जंबूटी प १६१)

कुब्ब—निम्न।

कुब्बं त्ति निम्नं क्षामम्। (उपाटी पृ ६७)

कुल—परिवार।

कुलं कुटुंबं यूथम्। (प्रटी प ३७)

कुल—संघ।

कुलं वा संघं वा गणं वा।[3] (व्यभा ४/३ टी प २६)

कुशल—कुशल।

कुशलो दक्षः···क्षुण्णः। (व्यभा ४/१ टी प ५५)
कुशलाः निपुणाः मोक्षमार्गाभिज्ञाः। (सूटी १ प १६०)

कूजण—कूजन, विलपन।

कूजण कक्करण तिप्पण विलवण। (दशजिचू पृ ३१)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २

कम्मं ति वा खुहं ति वा वोण्णं ति वा कलुसं ति वा वज्जं ति वा वेरं ति वा पंको त्ति वा मलो त्ति वा, एते एगट्ठिता ।[1]

(निचूभा ४ पृ २७४)

कयार—कचरा ।

कयारो त्ति व ओ बूया, पंसुको त्ति व ओ वदे ।
धूली रयो त्ति रेणु त्ति, सारो सुक्को त्ति वा पुणो ।

(अंवि पृ १०६)

करण—प्रयत्न ।

करण आरम्भः प्रयत्न इत्येकोऽर्थः । (बृकटी पृ २६८)

करुण—करुण ।

करुण दीनं विस्वरं । (सूटी १ प १३५)

करोडक—कटोरा ।

करोडको त्ति वा बूया अथवा वट्टमाणकं ।
अलदको जबूफलक तधा मल्लकमूलकं ।।[2] (अंवि पृ ६५)

कलह—कलह ।

कलहे ति वा भंडणे ति वा डमरे ति वा एगट्ठा । (उचू पृ १६७)

कला—अंश ।

कला अंशा अवयवा इति पर्यायाः । (विभाकोटी पृ ३)

कलुस—कलुष ।

कलुस किलिट्ठमप्पसंत सावज्ज । (निपीचू पृ २३)

कल्प—आचार ।

कल्पो व्यवहार आचार इत्यनर्थान्तरम् । (व्यभा १ टी प ५१)

कल्पो विधिराचार इति पर्यायाः । (प्रसाटी प २२२)

कल्याण—कल्याण ।

कल्याण श्रेयः शिवमनुपद्रवम् । (भटी प ११६)

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २

कल्लाण—कल्याण ।

कल्लाणं ति वा सोहणं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २०३)

कवड—कपट ।

कवड ति कइयवं ति य सठयावि य हुंति एगट्ठा । (प्रसा १६७)

कषाय—कषाय ।

कषायं कलुषं बहलम् । (निचूभा २ पृ १२३)

कस—कृश ।

कस परिकसं व त्ति अणुं ति अणुकं ति वा ।
दुब्बलो ति किसो व त्ति उल्लुत्तो ति व जो वदे ॥
(अवि पृ ११४)

कसाय—कषाय ।

कसाओ त्ति वा भावो त्ति वा परियाओत्ति वा एगट्ठा ।[1]
(दशजिचू पृ १२१)

कसिण—पूर्ण ।

कसिणा पडिपुण्णा निरवसेसा एकग्गहणगहिया । (भ २/१३४)

काउस्सग्ग—कायोत्सर्ग ।

काउस्सग्गोत्ति वा ओगनिग्गहोत्ति वा । (आवचू २ पृ २५६)

काउसग्गोत्ति वा विउसग्गोत्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २६)

काण—काना व्यक्ति ।

काणा दीपकाणा फरला ।[2] (प्रटी प २५)

कान्त—कमनीय ।

कान्तः कमनीयोऽभिलषणीयः । (अंत टी प ६)

कामगम—मनोरम ।

कामगमाण पीइगमाण मणोगमाणं मणोरमाणं । (अनु ५/१७८)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

कूड—माया।

कूड-कवड-माया-नियडि-आयरण पणिहि-वंचण। (प्र ३/१४)

कृत्स्न—सम्पूर्ण।

कृत्स्नाः परिपूर्णका गुरुका। (व्यभा ४ टी प २२)

कृश—तुच्छ।

कृशं तनुः तुच्छमित्यनर्थान्तरम्। (सूचू १ पृ २२)

केज्जूर—हाथ का आभूषण (बाजूबंध)।

केज्जूरं तलभं व त्ति कंडूगं परिहेरगं।
ओवेढगो वलयगं तधा हत्थकलावगो॥[1] (अंवि पृ ६५)

केतन—संकेत।

केतनं संकेलनं संकेतो। (व्यभा ५ टी प १७)

केतु—चिह्न।

केतुः चिह्नं ध्वजः। (ज्ञाटी प २०)

केवल—परिपूर्ण।

केवलं ति वा, एगं ति वा, केवलणाणं ति वा, अणिवारियवावार त्ति वा, अविरहितोवयोगं ति वा, अणंतं ति वा, अविकप्पितं ति वा, इमाणि एगट्ठियाणि। (बृकटी पृ १५)

केवले पडिपुण्णे णेयाउए संसुद्धे। (सू २/२/५५)

केवलमेगं सुद्धं सकलमसाधारणं अणंतं।[2] (नंदीचू पृ १४)

कोह—क्रोध।

कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भंडणे विवादे।[3] (भ १२/१०३)

क्मति—चेष्टा करता है।

क्मति चलति युज्यते।[4] (निपीचू पृ ६४)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३

किया—क्रिया ।

क्रिया कर्म परिस्पन्द इत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ३१६)

क्रिया कर्मबन्ध इत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ३१७)

कोध—क्रोध ।

क्रोध कोपो रोषोऽनुपशमः । (अनुद्वाहाटी पृ ६२)

खवणा—निर्जरा ।

क्षपणा अपचयो निर्जरा इति पर्यायाः (अनुद्वामटी प २३६)

खामित—उपशमित ।

क्षामितमिति वा व्यवशमितमिति वा विनाशितमिति वा क्षपितमिति वा एकार्थानि । (बृकटी पृ ७५२)

खित्त—पागल ।

क्षिप्तः क्षिप्तचित्तः अपहृतचित्तः । (व्यभा ४/१ टी प २७)

खुद्द—तुच्छ ।

क्षुद्रैः बालैः शीलहीनैर्वा । (उशाटी प ४७)

खंडित—खंडित ।

खंडितो पडितो व त्ति भिण्णो मंतुलितो त्ति वा । (अंवि पृ १२१)

खंत—क्षान्त ।

खंतेऽभिणिव्वुडे दंते वीतगेही । (सू १/८/२७)

खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स[1] । (ज्ञा १४/७६)

खग्ग—शीघ्र ।

खग्गं वेइयं तुरियं चवलं साहसं ।[2] (प्र ८/१२)

खमति—सहन करता है ।

खमति मरिसेति सहति ।[3] (दश्रुचू प २६)

खमा—क्षमा ।

खम त्ति वा तितिक्ख त्ति वा कोधनिग्गहे त्ति वा एगट्ठा ।

(दशजिचू पृ १८)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३

खमिति—सहन करता है।

खमिति अहियासेति सहति।[1] (आचू पृ ३८१)

खर—कठोर।

खर फरुस णिट्ठुर। (निचूभा ३ पृ २)

खलुंक—अविनीत।

खलुंका गली मरालो शठो प्रतिलोमो अविनीत इत्येकार्थः।[2]

(उचू पृ २७०)

खात—प्रसिद्ध।

खातं प्रथितं समृद्धं। (उचू पृ २२२)

खामिय—उपशमित।

खामिय वितोसिय विणासियं च झवियं च होति एगट्ठा।

(बृकभा २६८७)

खिखिणिका—पायल।

खिखिणिक खत्तियधम्मका पादमुद्दिका पादोपकाणि।

(अंवि पृ १६३)

खिसइ—निंदा करता है।

खिसइ निंदति परिभवति।[3] (सूटी १ प २४३)

खिज्जणिया—उपालंभ।

खिज्जणियाहि य रुंटणाहि य उवलंभणाहि य।[4] (ज्ञा १८/३४८)

खीण—क्षीण।

खीणे निरए निम्मले निट्ठिए निल्लेवे अवहडे विसुद्धे। (भ ६/१३४)
खीणं खवियं विणट्ठं विद्धत्थं। (अनुद्वाचू पृ ४३)

खुड्डतर—छोटा।

खुड्डतराए चेव हुस्सतराए चेव णीयतराए चेव। (जंबू ४/५४)

1. देखें—परि० ३
2. देखें—परि० २
3. देखें—परि० ३
4. देखें—परि० २

खुड्डलक—छोटा ।

खुड्डलक-थोक-डहरक-अणुक-सुहुम । (अंवि पृ २३७)

खेम—क्षेम, कुशल ।

खेम सिवं सुभिक्खं निरुवसग्गं । (व्यभा ४/३/२०६)

खेम सिवं सुभिक्ख पसतडिंबडमरं । (आवचू १ पृ ४७६)

खेम—क्षेम ।

खेम सिवं अणुत्तर । (उचू पृ १६३)

खोडभंग—राजकुल का देय द्रव्य ।

खोडभगो त्ति वा उक्कोडभंगो त्ति वा अक्खोडभगो त्ति वा एगट्ठं । (निचूभा ४ पृ २८०)

खोरक—कटोरा, खप्पर ।

खोरक खोरको व त्ति वट्टकं ति व जो वदे ।
मुंडक ति व जो बूया, पीणकं ति व जो वदे ॥[1] (अवि पृ ६५)

गंड—फोड़ा ।

गड वा अरइय वा पिडय वा । (आचूला १३/२८)

गंडि—अविनीत ।

गडी गली मराली एगट्ठा ।[2] (उनि ६५)

गंडूपक—पैर का आभूषण ।

गंडूपक ति वा बूया तधा खत्तियधम्मकं ।
तधा णीपुरग व त्ति तधा अंगजकं ति वा ॥
पापढको त्ति वा बूया पादखडुयकं ति वा ।
परमासको त्ति वा बूया तधा पादकलावगो ॥[3] (अंवि पृ ६५)

गंडूपयक—पैर का आभूषण ।

गडूपयक णीपुराणि परिहेरकाणि । (अंवि पृ १६३)

गड्डिक—भाग्यशाली ।

गड्डिको पोट्टहो व त्ति अड्डगो सुभगा त्ति वा ।[4] (अंवि पृ ६२)

---

१. देखे—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

गण—गण, समूह ।

गणे काए व निकाए, खंधे वग्गे तहेव रासी य ।
पुंजे पिंडे निगरे, संघाए आउल समूहे ॥[1] (अनुद्वा ७३)

गणणमतिक्कंत—असंख्येय ।

गणणमतिक्कंतं ति वा असंखेज्ज त्ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ ५४)

गत—प्राप्त ।

गतः प्राप्तः स्थित इत्यनर्थान्तरम् । (नंदीटी पृ ५८)

गत—मृत ।

गते विपन्ने मृते । (व्यभा ४/१ टी प ६६)

गमित—प्राप्त ।

गमित प्रदर्शितं उपनीतं अर्पितम् । (आवचू १ पृ ३७४)

गय—मृत ।

गयंसि वा चुयंसि वा मयंसि वा । (ज्ञा १/७/६)

गरहित—गर्हित, निंदित ।

गरहितं ति वा अकथ्यं ति वा अविवित्तं ति वा परिहरणीय ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ ६०६)

गलन—विनाश ।

गलनं गालो विनाशः । (उचू पृ ४)

गहण—अरण्य ।

गहणं वणं ति वा बूया रन्नं व गहणं ति वा । गहणा अडवी व त्ति ।[2]
(अंवि पृ ११८)

गाढीकय—सघन किया हुआ ।

गाढीकयाइं चिक्कणीकयाइं सिलिट्ठीकयाइं खिलीभूताइं ।
(भ ६/४)

---

१. देखें—परि० २   २. देखें—परि० २

गाहा—गृह ।

गाहा इति घरमिति गिहमिति वा एते त्रयोऽप्येकार्था ।
(व्यभा ८ टी प १)

गिद्ध—गृद्ध ।

गिद्ध त्ति वा सत्त त्ति वा मुच्छिय त्ति वा एगट्ठं । (सूचू १ पृ १०८)

गिरा—वाणी ।

गिर त्ति वाणी वयणं । (निचूभा ४ पृ २६५)

गीय—ज्ञात ।

गीय मुणितेगट्ठं । (बृकभा ६८६)

गुण—गुण ।

गुणो त्ति वा पज्जवो त्ति वा एगट्ठा ।[1] (दशजिचू पृ २६६)

गुण—उपकार ।

गुण. साधनमुपकारमित्यनर्थान्तरम् । (उशाटी प ६६)

गुणेति—गुनता है, परावर्तन करता है ।

गुणेति त्ति वा परियट्टति त्ति वा एगट्ठा ।[2]
(दशजिचू पृ २६७)

गुरुक—प्रायश्चित्त का एक प्रकार ।

गुरुकमिति वा अनुद्घातीति वा कालकमिति वा गुरुकस्य नामानि ।[3]
(बृकटी पृ ६१)

गुलोवलद्धीय—द्रवगुड़, फाणित ।

गुलोवलद्धीयं कक्कबं वा फाणित वा । (अंवि पृ १८२)

गूहण—माया ।

गूहण गोवण णूमण पलियंचणमेव एगट्ठं । (जीतभा १७७४)

गृह्णाति—प्राप्त करता है ।

गृह्णाति उपलभत इति पर्यायाः ।[4] (नंदीटी पृ ५८)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३

गृहिपर्याय—गृहस्थ पर्याय ।

गृहिपर्यायो अन्यपर्याय इत्येकोऽर्थः । (बृकटी पृ ४२५)

गेहि—आसक्ति ।

गेही कंख त्ति इति वा एगट्ठा । (आचू पृ २१२)

गोज्झग—देव, इन्द्र ।

गोज्झगो गोज्झकपती देवराय त्ति वा पुणो । (अंविप् ६२)

गोणस—सर्प ।

गोणस मंडलि दव्वीकर मउली ।[1] (प्र २/१२)

गोधिका—वाद्यविशेष ।

गोधिका दर्दरिकेति पर्यायाः । (स्थाटी प ३७६)

गोब्बर—गोबर ।

गोब्बरो त्ति करीसो त्ति सुक्खं वा छगणं पुणो । (अंवि पृ १०६)

गोयर—विषय ।

गोयरो विसतो त्ति एगट्ठा । (आचू पृ २५१)

ज्ञान—ज्ञान ।

ज्ञानमागमितमित्येकार्थम् ।

ज्ञानमागममित्येकार्थम् । (व्यभा १० टी प ३१)

ज्ञानमिति वा भाव इति वा अध्यवसाय इति वा उपयोग इति वा एकार्थम् । (बृकटी पृ ८)

ज्ञानं ज्ञा संवित्तिः । (आवमटी प ३६६)

ग्रथित—आसक्त ।

ग्रथिताः संबद्धा अध्युपपन्नाः । (सूटी १ प ४८)

ग्राम्यवचन—अशिष्ट वचन ।

ग्राम्यवचनं कर्कशं कटुकं निष्ठुरं । (निचूभा ४ पृ २५७)

---

1. देखें—परि० २

घट—घट ।

घट· कुटः कुम्भः कलश इत्यादि ।[1] (विभामहेटी १ पृ ४००)

घट्टण—पूछना ।

घट्टण विचालणं ति य पुच्छा विप्फालणेगट्ठा । (बृकभा ५३७६)

घट्टण वियारणं ति य पुच्छा विप्फालणेगट्ठा । (निचूभा ४ पृ ७७)

घट्ट—साफ-सुथरा ।

घट्ठा मट्ठा णीरया । (जबूटी प ४३)

घट्ठ वा मट्ठं वा संमट्ठ वा संपधूमियं वा ।[2] (आचूला ५/१२)

घडितव्व—चेष्टा करनी चाहिए ।

घडितव्व जतितव्वं परक्कमितव्वं । (स्था ८/१११)

घण—सघन ।

घण-निचिय-निरंतर-णिच्छिड्डाइं । (राज ७१९)

घाट—सौहार्द, मित्रता ।

घाट. संघाट. सौहार्दमित्येकोऽर्थः । (बृकटी पृ २७७)

घात—हिंसा ।

घातो हिंसा मारण दण्डः अधर्मं इत्यनर्थान्तर । (सूचू २ पृ ३३८)

घाय—घात ।

घाय विणासो य एगट्ठा । (जीतभा २३४)

घायाए वहाए उच्छायणयाए ।[3] (राज ६३५)

घायय—घातक ।

घायए मारए पडिणीए । (भ १५/१४१)

घोस—गोकुल ।

घोसो त्ति गोउलं ति य एगट्ठं । (बृकभा ४८७८)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

चएज्ज—छोड दे ।

चएज्ज त्ति वा जहेज्ज त्ति वा एगट्ठा ।[1] (दशजिचू पृ ३६६)

चंचल—चंचल ।

चंचल गलंत सलोल चवल फुरफुरेंत निल्लालिय । (ज्ञा १/८/७२)

चंडाल—चांडाल ।

हरिएसा चंडाला सोवागा मयंग बाहिरा पाणा ।
साणधणा य मयासा सुसाणवित्ती य नीया य ॥[1] (उनि ३२३)

चंद—चांद ।

चंदो ससी सोमो उडुपती । (आवचू १ पृ ६०६)

चंद्र—चन्द्रमा ।

चन्द्रः शशी निशाकरः उडुपतिः रजनीकर. । (आवचू १ पृ ४६१)

चत्तदेह—त्यक्तदेह ।

चत्तदेहं देहोवरओ त्ति एगट्ठा । (अनुद्वाहाटी पृ १४)

चन्द्रिका—चादनी ।

चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना तथा चन्द्रातपः । (सूयंटी प ६४)

चयाहि—त्याग दो ।

चयाहि त्ति वा छड्डेहि त्ति वा जहाहि त्ति वा एगट्ठा ।[3]
(दशजिचू पृ ८६)

चरण—गति करना ।

चरणं गतिर्गमनम् । (आटी प ३७४)

चरण—चारित्र, शील ।

चरणं वृत्तं मर्यादेत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ४४३)

चरति—खाता है ।

चरति त्ति वा भक्खति त्ति वा एगट्ठा ।[4] (दशजिचू पृ ३१६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३

चरति चलता है।

चरति गच्छति चञ्चूर्यंत इत्येकोऽर्थः।[1] (सूचू १ पृ १६८)

चर्यते—प्राप्त करता है।

चर्यते गम्यते प्राप्यते।[2] (प्रसाटी प २६१-६२)

चलित—कंपित।

चलित विचलितं वा वि चलं ति चलियं ति वा। (अंवि पृ ८०)

चहित—दृष्ट।

चहित ति चाहित प्रेक्षितं निरीक्षितं दृष्टमित्यनर्थान्तरम्।

(नंदीचू पृ ४६)

चहिय—पूजित।

चहिय महिय पूइए। (उपा ७/१०)

चाउम्मासित—चातुर्मासिक।

चाउम्मासितो संवच्छरिउ त्ति वा वासारत्तिउ त्ति वा एगट्ठं।[3]

(दश्रुचू प ६६)

चाएति—सहन करता है।

चाएति साहति सक्केइ वाखेइ तुट्टाएति वा धाडेति वा एगट्ठा।[4]

(आचू पृ १०७)

चार—गति।

चारश्चरणं गमनमित्येकार्थः। (व्यभा ३ टी प ११४)

चार—चर्या।

चारो चरिया चरणं एगट्ठं। (आनि २४६)

चालिज्जति - चलाया जाता है।

चालिज्जति वा उच्छल्लिज्जति वा उत्क्षिप्यति वा।[5]

(सूचू २ पृ ३४७)

---

१. देखें—परि० ३
२ देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० ३

चालित—चलाया हुआ।

चालिते त्ति उदीरिते त्ति वा एगट्ठा। (आचू पृ १४१)

चालित्तए—कंपित करने के लिए।

चालित्तए वा खोभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा।

(ज्ञा १/८/७४)

चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा।[1] (ज्ञा १/८/७९)

चिंतेहिति—चिन्तन करेगा।

चिंतेहिति त्ति वा मंतेहिति त्ति वा बूया णिच्छयं णाहिति त्ति।[2]

(अंवि पृ ८४)

चिक्कण—निबिड।

चिक्कणं ति वा दारुणं ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ २३२)

चिट्ठ—प्रगाढ।

चिट्ठं ति वा गाढं ति वा एगट्ठा। (आचू पृ १४१)

चित्त—चित्त।

चित्तं मनोऽर्थविज्ञानमिति पर्यायाः। (अनुद्वाहाटी पृ २३)

चित्तं मनो विज्ञानमिति पर्यायाः।[3] (अनुद्वामटी प ३५)

चिर—शाश्वत।

चिर-दीह-सस्सत। (अंवि पृ २३९)

चिरसंसिट्ठ—चिरपरिचित।

चिरससिट्ठो चिरसंथुओ चिरपरिचिओ चिरजुसिओ चिराणुगओ चिराणुवत्ती। (भ १४/७७)

चूला—शिखर।

चूला विभूसणं ति य, सिहरं ति य होंति एगट्ठा। (निपीभा ६६)

चूलं ति वा अग्गं ति वा सिहरं ति वा एगट्ठा। (निपीचू पृ २)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० ३

३. देखें—परि० २

चेतित – कृत ।

चेतितं कृतं चेत्येकार्थम् । (बृकटी पृ १०१५)

चेयण्ण—चैतन्य ।

चेयण्ण ति वा उवयोगि त्ति वा अक्खर त्ति वा एगट्ठा ।[1] (दशजिचू पृ ४६)

चोदित - पीडित किया हुआ ।

चोदिता अवधिता तज्जिता बाधिता । (सूचू १ पृ ८८)

चोयणा – प्रेरणा ।

चोयणा प्रेरणा नियोजना । (निपीचू पृ १८)

चोक्ष— अच्छा ।

चोक्षपवित्रौ एकार्थौ । (प्रटी प १०४)

छंद—इच्छा ।

छंदो गेही अभिलासो एगट्ठ । (आचू पृ ४१)

छंदो लोभ इच्छा प्रार्थना । (सूचू १ पृ ६६)

छंदोऽभिप्रायोऽभिलाषः । (सूचू २ पृ ३२४)

छंदेण अभिप्रायेण यथारुचि । (ज्ञाटी प ६३)

छंद—निमंत्रण ।

छंद निकाय निमंतण एगट्ठा । (निभा २१०६)

छंदण—निमंत्रण ।

छंदण ति वा णिकायण ति वा णिमंतण ति वा एगट्ठ । (निचूभा २ पृ ३५०)

छज्जिय—टोकरी ।

छज्जिय पडलग चंगेरियं ।[2] (राज १२)

छड्डिय—छर्दित, त्यक्त ।

छड्डिउ त्ति वा जढो त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २३१)

छड्डे—छोड़दे ।

छड्डे चए वोसिरे ।[3] (आचू पृ ३७६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३

छन्द—आगम ।

छन्दो वेद आगम इत्यनर्थान्तरम् ।[1] (उशाटी प २२३)

छन्न—आच्छादित ।

छन्नमप्रकाशमदर्शनमनुपलब्धिरित्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ४३३)

छड्डित—छर्दित, त्यक्त ।

छर्दितमुज्झितं त्यक्तमिति पर्यायाः । (प्रसाटी प १५४)

छाया—छाया ।

छाया इ य अंधकारे इ य एगट्ठे । (सूर्य १६/६)

छिदंत—छेदता हुआ ।

छिदतो वा भिदतो वा फालेंतो वा विवाडेंतो वा णिक्खणंतो ।

(अंवि पृ १४४)

छिदति—छेदन करता है ।

छिंदति विच्छिंदति भिदति ।[2] (स्था ५/७३)

छिड्ड—छिद्र ।

छिड्डे इ वा विवरे इ वा अंतरे इ वा राई वा । (राज ७१८)

छिद्द—छिद्र ।

छिद्दं विरह अतरं ।[3] (ज्ञा १/२/११)

छिन्न—छिन्न ।

छिन्ने भिन्ने य भग्गे य कुट्टिते वा वि णिव्वरा । (अंवि पृ १५५)

छिन्नंति—हनन करते हैं ।

छिन्नंति वा हणंति वा एगट्ठं ।[4] (उचू पृ ५२)

छेद—खण्ड ।

छेदः खण्डं कर्परमिति । (उपाटी पृ ६६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३

छेय—दक्ष ।

छेए दक्खे पत्तट्ठे कुसले मेधावी निउणसिप्पोवगए ।[1] (जंबू ५/६)

छेयणकरी—छेदन करने वाली ।

छेयणकरिं भेयणकरिं परितावणकरिं उद्दवणकरिं । (आचूला ४/१०)

जंबू—जबू वृक्ष ।

सुदंसणा अमोहा य, सुप्पबुद्धा असोधरा ।
विदेहजंबू सोमणसा, णियया णिच्चमंडिया ।।

सुभद्दा य विसाला य सुजाया सुमणा वि य ।
सुदसणाए जंबूए, नामधेज्जा दुवालस ।।[2] (३/७००)

जग्गंतक—लकड़ी ।

जग्गतको त्ति सदीपण ति दारु समिध त्ति । (अवि पृ २५४)

जड्ड—मूढ ।

जड्डे मूढे अपंडिए निव्विण्णाणे । (राज ६६६)

जणसंमद्द—जनसमूह ।

जणसंमद्दे इ वा, जणवूहे इ वा, जणबोले इ वा, जणकलकले इ वा, जणुम्मी इ वा, जणुक्कलिया इ वा, जणसण्णिवाए इ वा ।[3]
(भ २/३०)

जण्ण—उत्सव ।

जण्णं छणुस्सयं । (अंवि पृ १२१)

जरत्का—जीर्ण ।

जरत्का जरती जीर्णा । (अनुटी प ४)

जल्ल—मैल ।

जल्लो कमढो मल्लो ।[4] (आचू पृ ३७२)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

जल्लिय—मैला-कुचेला ।

जल्लियस्स वा पंकियस्स वा मइल्लियस्स वा रइल्लियस्स वा ।

(भ ६/२३)

जवइत्तए—निर्वाह करने के लिए ।

जवइत्तए त्ति वा लाढेत्तए त्ति वा एगट्ठा ।[1] (सूचू १ पृ ८८)

जवित्तए—स्थापना करने में ।

जवित्तए त्ति णिज्जूढमित्यनर्थान्तरम् । (सूचू १ पृ ६३)

जस—यश ।

जसो त्ति वा संजमो त्ति वा वण्णो त्ति वा एगट्ठं ।[2]

(व्यभा ६ टी प ५५)

जहाभूत—यथार्थ ।

जहाभूतमवितहमसंदिद्धं । (ज्ञा १/१/४८)

जाणइ—जानता है ।

जाणइ पासइ बुज्झइ अभिगच्छइ ।[3] (स्था ५/७८)

जात—प्रकार ।

जाताः प्रकाराः भेदाः । (व्यभा १ टी प ५२)

जाम—अवस्था ।

जामो त्ति वा वयो त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ २५५)

जायसड्ढ—श्रद्धालु ।

जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले । (भ १/१०)

जावंताव—गुणाकार (गणित) ।

जावंतावन्ति वा गुणकारो त्ति वा एगट्ठं ।[4] (स्थाटी प ४७५)

जितकरण—विनीत ।

जितकरणो विनीत इति द्वावप्येकार्थौ । (व्यभा ४/३ टी प १६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० २

जिब्भिका—प्रणालिका ।

जिब्भिका प्रणालापरपर्याया । (जंबूटी प २११)

जीत—मर्यादा ।

जीतं मर्यादा व्यवस्था स्थितिः कल्प इति पर्यायाः । (नंदीटी पृ ११)

जीव—जीव ।

जीवो त्ति वा पाणो त्ति वा एगट्ठं । (सूचू १ पृ ३१)

जीव. सत्वः प्राणी आत्मेत्यादि पर्यायाः । (नकप्रटी पृ २)

जीवाः प्राणिनः शरीरभृत इति पर्यायाः । (नकप्रटी पृ ११२)

जीवण—जीवन ।

जीवनं प्राणधारण जीवितमिति पर्याया. । (विभामहेटी २ पृ ३४६)

जीवत्थिकाय—जीवास्तिकाय ।

जीवे इ वा, जीवत्थिकाए इ वा, पाणे इ वा, भूए इ वा, सत्ते इ वा, विण्णू इ वा, वेया इ वा, चेया इ वा, जेया इ वा, आया इ वा, रंगणे इ वा, हिंडुए इ वा, पोग्गले इ वा, माणवे इ वा, कत्ता इ वा, विकत्ता इ वा, जए इ वा, जतू इ वा, जोणी इ वा, सयंभू इ वा, ससरीरी इ वा, अतरप्पा इ वा । जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते जीवत्थिकायस्स अभिवयणा ।[1] (भ २०/१७)

जीवा—धनुष्य की डोरी ।

जीवया प्रत्यञ्चया दवरिकया । (सूयंटी प २२)

जीवाभिगम—दशवैकालिक का चौथा अध्ययन ।

जीवा (अभिगम) ऽजीवाभिगमो आयारो चेव धम्मपण्णत्ती ।
तत्तो चरित्तधम्मो चरणे धम्मे य एगट्ठा ।।[2]
(दशनि १४४)

जीवित—आयुष्य ।

जीवितमायुष्कमित्यनर्थान्तरम् । (अनुद्वाहाटी पृ ८६)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

जुइ—द्युति ।

जुइए पभाए छायाए अच्चीए तेएणं लेसाए । (उपा २/४०)

जुण्ण—जीर्ण ।

जुण्णो वि जज्जरो वुड्ढ । (अंवि पृ ३०)

जुद्ध—युद्ध ।

जुद्धं णिजुद्धं सगामं संपरागं । (अंवि पृ १२)

जुवाण—जवान, युवा ।

जुवाणो जोव्वणत्थो वा पोअंडो । (अवि पृ ६२)

जूह—संक्षेप ।

जूहे संजूहः संक्षेपः समास इत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ३३८)

जेमेति—भोजन करता है ।

जेमेति भुंजते व त्ति आहारं कुरुते त्ति य ।
अण्हेते व त्ति वा बूया भक्खते खाति वप्फति ॥[1] (अंवि पृ १०७)

जोग—करण ।

जोगा इति वा करणाणि त्ति वा एगट्ठं । (बृकटी पृ ४०७)

जोग—योग, सामर्थ्य ।

जोगो त्ति वा वीरियं ति वा सामत्थं ति वा परक्कम त्ति वा उच्छाहो त्ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ १०३)

जोगो त्ति वा वावारो त्ति वा वीरियं ति वा सामत्थं ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ ४३३)

जोगो विरियं थामो, उच्छाह परक्कमो तहा चेट्ठा ।
सत्ती सामत्थं चिय, जोगस्स हवंति पज्जाया ।[2] (व्यभा १ टी प २२)

जोव्वण—यौवन ।

जोव्वणं ति व जो बूया तहा जोव्वणकं ति वा ।
जोव्वणत्थे त्ति जो बूया जुवाणो त्ति व जो वदे ॥
तरुणं··· । (अंवि पृ ६६)

---

१. देखें—परि० ३ २. देखें—परि० २

झीण—क्षीण ।

झीणं परिक्खीणं विणट्ठं । (अंवि पृ १४७)

झोस—समीकरण की राशि विशेष ।

झोस त्ति वा समकरणं ति वा एगट्ठं ।[1] (निचूभा ४ पृ ३२३)

झोसण—छोड़ना ।

झोसण खवणा मुंचण एगट्ठा । (जीतभा २२७६)

ठप्प—स्थाप्य ।

ठप्पाइं ठवणिज्जाइं एते दोवि एगट्ठिता । (अनुद्वाचू पृ २)

ठाण—नैषेधिकी, स्वाध्यायभूमि ।

ठाणं निसीहिय त्ति य एगट्ठं । (व्यभा ३ टी प ५३)

ठाण—स्थान, भेद ।

ठाण ति वा भेदो त्ति वा एगट्ठा । (दशाजिचू पृ ३२५)

ठित—स्थित ।

ठितं गतं ति एगट्ठं । (नंदीचू पृ १६)

ठिति—मर्यादा ।

ठिति त्ति मेरत्ति एगट्ठा । (बृकभा ६३५५)

डंड—घात ।

डंडं घायणं मारणं ति वा एगट्ठा । (आचू पृ २६८)

डिंब—कलह ।

डिंबा इ वा डमरा इ वा कलह-बोल-खार-वेर ।[2] (जंबू २/४२)

डिप्फर—बैठने का आसन विशेष ।

डिप्फरो पीढफलकं सत्थियं तलियं ति वा ।
मरसूको अत्थरको कोट्टिमं ति सिलातलो ।।
मासालो मंचको ।[3] (अंवि पृ ६५)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

णंगल—हल ।

णंगलं लंगलं ति वा हलं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २५४)

णंदी—प्रमोद ।

णंदी पमोदो हरिसो कंदप्पो । (नंदीचू पृ १)

णंदी हरिसो तुट्ठी ।[1] (निचूभा ४ पृ १२२)

णग—पर्वत ।

णगो त्ति पव्वतो व त्ति गिरि मेरुवरो त्ति वा ।
सेलो सिलोच्चयो व त्ति पव्वतो सिहरि त्ति वा ।।[2] (अंवि पृ ७८)

णट्ठ—नष्ट ।

णट्ठ-विणट्ठ-भट्ठ । (भ १५/१०३)
णट्ठ त्ति वा, विगए त्ति वा, अतथाभूए त्ति वा, एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ ११)

णट्ठ-हित-पलाते दूसिते विणट्ठे विपण्णे । (अंवि पृ २५०)

णपुंसक—नपुंसक ।

णपुंसको अपुरुसो चिल्लिको सीतलो त्ति वा ।
पडको वातिको वा वि, किलिमो वा संकरो त्ति वा ।।

कुंभीकपडक जाणे इस्सापडकमेव य ।
पक्खापक्खि व विक्खो य संढो वा वि णरेतरो ।।[3]
(अंवि पृ ७३)

णमोक्कत—नमस्कृत ।

णमोक्कते वंदिते वा पूयितुल्लोकिते तधा ।[4] (अंवि पृ १५५)

णरिंद—स्वामी ।

णरिंदो त्ति सामिको सुपुरिसो त्ति वा । (अंवि पृ २४६)

णाण—ज्ञान ।

णाणति वा संवेदणंति वा अभिगमोत्ति वा चेतणति वा भावोति वा
एते सद्दा एगट्ठा । (दशजिचू पृ १०)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

णाण ति वा विज्ज त्ति वा एगट्ठा। (उचू पृ १४७)

णाण ति वा सवेदण ति वा अहिगमो त्ति वा वेयणि त्ति वा भावो त्ति वा एगट्ठा।[1] (आवचू १ पृ ६)

णाणि—मुनि।

णाणि त्ति वा मुणि त्ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ १६८)

णाम—नाम।

णाम ति वा ठाण ति वा भेद त्ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ ३५३)

णाय—दृष्टान्त।

णाय ति वा दिट्ठतो त्ति वा आहरण ति वा ओवम्म ति वा निदरिसण ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ ३९)

णाय—ज्ञात।

णाय गणिय गुणिय गय च एगट्ठ। (दश्रुचू प १७)

णावा—नाव।

णावा पोतो कोट्टिबो सालिका तप्पको प्लवो पिंडिका कडे वेलु तंबो कुंभो दती सघाडो कट्ठं।[2] (अवि पृ १६६)

णिकड्ढति—बाहर निकालता है।

णिकड्ढति विकड्ढति।

उक्कड्ढति त्ति वा बूया कड्ढति त्ति व जो वदे।[3] (अवि पृ ८०)

णिकम्मदरिसि—निष्कामदर्शी।

णिकम्मदरिसी-सिद्धदरिसी मोक्खदरिसी वा। (आचू पृ ११३)

णिक्खंत—प्रव्रजित।

णिक्खतो त्ति वा पव्वइओ त्ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ २९३)

णिक्खित्त—निक्षिप्त, स्थापित।

णिक्खित्त ठविय ति य एगट्ठ। (जीतभा १५१२)

१. देखे—परि० २

२. देखे—परि० २

३. देखे—परि० ३

णिक्खेव—निक्षेप, न्यास ।

णिक्खेवो णासो त्ति य ठवण त्ति य होंति एगट्ठा। (उशाटी प ६६९)

णिच्छय—सद्भाव ।

णिच्छयो सब्भावो स्वरूपं । (नंदीचू पृ ५८)

णिच्छुढ—निक्षिप्त ।

णिच्छुढे णिग्गते छुढे उक्कड्ढिय विकड्ढिते । (अंवि पृ १०८)

णिच्छोडण—निर्भर्त्सन ।

णिच्छोडण णिब्भलकं तधा णिल्लिक्खणं ति वा । (अंवि पृ १०६)

णिज्जरा—निर्जरा ।

णिज्जर त्ति वा तवो त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ २१५)

णिडाल—ललाट ।

णिडालं मत्थको सीसो । (अंवि पृ ११९)

णिडालमासक—तिलक ।

णिडालमासको व त्ति तिलको मुहफलकं ति वा ।
विसेसको त्ति वा बूया अवंगो त्ति व जो वदे ।।[1] (अंवि पृ ६४)

णिण्णेहक—निःस्नेह

णिण्णेहक अणेहं वा फुट्टं ति फरुसं ति वा । (अंवि पृ १०६)

णितिय—नित्य ।

णितिउ त्ति वा सासतो त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ १३४)

णिदंसण—निदर्शन ।

णिदंसणं हेतु दिट्ठंत उवदंसणा उवणय उवसंधार ''एगट्ठिता एते ।
(नंदीचू पृ ५२)

---

१. देखें—परि० २

णिप्पीलित—निष्पीड़ित ।

णिप्पीलिते णिगलिते भीणे भविते य । (अवि पृ२५५)

णिप्फत्ति—निष्पत्ति ।

णिप्फत्तिः प्रभव प्रसूतिः । (निचूभा ४ पृ ३८८)

णिप्फत्ति लाभो आगमो । (अवि पृ २५२)

णिब्भामित—रूक्ष ।

णिब्भामित णिग्गलित अब्मुक्कढितं ति वा । (अवि पृ १०६)

णिम्मंसक—मास रहित ।

णिम्मंसको त्ति वा बूया तधा अट्ठिकलेवर ।
अट्ठिकं चम्मणद्धं ति तधा अट्ठिकसकला ।।
सुक्कलो त्ति व जो बूया णिस्सुक्को त्ति व जो वदे ।
ओभीण परिहीण ति मात ति मलितं ति वा ।।[1] (अवि पृ ११४)

णिम्मज्जित—हटा देना ।

णिम्मज्जिते निल्लक्खिते णिस्सारिते णिव्वट्टिते णिलुलिते णिक्कड्ढिते णिद्धाडिते णिस्साविते णिप्फाविते णिच्छोलिते णिक्खण्णे णिव्विट्ठे णिच्छुढे विच्छुढे णिस्सिते णिल्लुविते णिवोल्लिते णित्थणिते णिस्ससिते णिस्सिघिते णिठ्ठुते णित्थुढे णिस्सरिते णिप्फेडिते णिद्दीणे णिण्णीते णिकुज्जिते णिव्वासिते णीरक्कए णिराणंदे । (अवि पृ १७१)

णियत—नियत ।

णियतं भूतपुव्वं ति कतपुव्वं ति वा पुणो ।
तधा रयितपुव्वं ति अणुभूत ति वा पुणो ।। (अवि पृ ८२)

णियय—नियत ।

णियय वा णिच्छियं वा एगट्ठा । (जीतभा २३४)

णिव्वंजीयंति—व्यक्त करते हैं ।

णिव्वंजीयंति विभाविज्जंति फुडीकज्जंति ।[2] (आवचू १ पृ २६)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० ३

णिव्वाण—निर्वाण, सुख।

णिव्वाणं सुहं सायं सीइभूयं-पयं अणाबाहं।[1] (आनि २०८)

णिव्वाणिकर—मांगलिक।

णिव्वाणिकरं च मंगलिज्जं च इट्ठा आणंदकरं च। (अंवि पृ २५०)

णिव्वुत—सुखी।

णिव्वुते सुहिते व त्ति आरोगो पीणितो त्ति वा। (अंवि पृ १२१)

णिस्संकित—नि:शंकित।

णिस्संकिते णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिते।[2] (स्था ३/५२४)

णिसियणा—निसीदन।

णिसियणा उवविसणा संपिहणा इति एगट्ठा। (आचू पृ ४६)

णिसीहिया—निषीधिका।

णिसीहिय त्ति वा ठाणं ति वा एगट्ठं। (उचू पृ ६७)

णिस्सारित—बाहर निकाला हुआ।

णिस्सारिते णिण्णामिते णिद्धाडिते णिल्लोलिते णिक्कड्ढिते णिप्फीलिते णिच्छालिते णिक्खित्ते णिच्छुढे णिव्वाडिते णिसित्ते णिलूचिते णिच्छोलिते णिस्ससिते णिस्सरिते णिप्पतिते णिप्फाडिते णिड्डीले णिकुज्जिते णिव्वामिते णिराकते णिराणते। (अंवि पृ १६८-६९)

णिहण—कपट।

णिहण ति वा गूहणं ति वा छायणं ति वा एगट्ठा। (आचू पृ १७३)

णिहुय—उपशान्त।

णिहुय णट्ठं भट्ठं उवसंतं पसंतं। (राजटी पृ ५४)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

णिहित—रखना।

णिहित ति वा णिहेति त्ति वा ठवेति त्ति वा एगट्ठा।[1]
(अनुद्वाचू पृ २१)

णीरागदोस—राग-द्वेष रहित।

णीरागदोस णिम्मम णिस्संग णीसल्ल। (जबू ५/५८)

णीहारेति—नीहरण करता है।

णीहारेति णीहरति त्ति अपकड्ढति णिकड्ढति।
णिसारेति णिसरति णिक्खुस्सति विकड्ढति॥[2] (अवि पृ १०८)

ण्हात—स्नात।

ण्हात व मज्जिय वा वि आलोलित पलोलियं।
पलोट्टित ति वा बूया तधा सम्मज्जित ति वा॥ (अवि पृ ८१)

ण्हाय—स्नात।

ण्हाओ विमलो विसुद्धो सुसुइभूओ। (उ १२/४६)

तंडि—अविनीत।

तडी ति वा गली ति वा मराली ति वा एगट्ठा।[3] (उचू पृ ३०)

तंत—तन्त्र, ग्रंथ।

ततं ति वा सुत्तो त्ति वा गंथो ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ ३४६)

तका—शय्या।

तका अभिशय्या अभिनिषद्या। (व्यभा ३ टी प ५४)

तक्क—छाछ।

तक्क उदसी छासि त्ति एगट्ठं।[4] (निपीचू पृ ६२)

तक्क—तर्क।

तक्का इ वा, सण्णा इ वा, पण्णा इ वा। (भ १/१६५)

तक्को मीमांसा विमर्श इत्यनर्थान्तरम्।[5] (सचू २ पृ ३९८)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

तट्टक—थाल ।

तट्टकं सरकं थालं सिरिकुंडं ति वा पुणो ।
तधा पणसकं व त्ति तधा अद्धकविट्ठगं ॥
सुपतिट्ठकं ति व वदे तधा पुक्खरपत्तगं ।
सरगं मुंडगं व त्ति तधेव सिरिकंसगं ॥[1] (अवि पृ ६५)
थालकं·········।

तनुतरशरीर—सूक्ष्मशरीरी ।

तनुतरशरीरो महावीर्यो देवो वा । (विभामहेटी १ पृ २८८)

तण्हा—तृष्णा ।

तण्ह गेहि लोभ । (प्र ५/६)

तत्त्व—पारमार्थिक सत्य ।

तत्त्वेन परमार्थेन मौनीन्द्राभिप्रायेण । (सूटी १ प ६३)

तत्थ—त्रस्त ।

तत्था उव्विग्गा सजायभया । (विपाटी प ४३)

तत्थ तत्थ—वहां वहां ।

तत्थ-तत्थ देसे-देसे तहिं-तहिं ।[2] (सू २/१/२)

तद्दिट्ठि—एकाग्रदृष्टि ।

तद्दिट्ठिए, तम्मोत्तिए, तप्पुरक्कारे, तस्सण्णी, तन्निवेसणे ।
(आ ५/६८)

तमस्—अन्धकार ।

तमो तिमिरमन्धकार इत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ३४७)

तमुक्काय—तमस्काय ।

तमे इ वा, तमुक्काए इ वा, अंधकारे इ वा, महंधकारे इ वा, लोगंधकारे इ वा, लोगतमिसे इ वा, देवंधकारे इ वा, देवतमिसे इ वा, देवरण्णे इ वा, देववूहे इ वा, देवफलिहे इ वा, देवपडिक्खोभे इ वा, अरुणोदए इ वा । (भ ६/८६)

---

1. देखें—परि० २

2. देखें—परि० २

तमे ति वा, तमुक्काले ति वा, अंधकारे त्ति वा, महंधकारे ति वा, लोगंधगारे ति वा, लोगतमसे ति वा, देवंधगारे ति वा, देवतमसे ति वा, वातफलिहे ति वा, वातफलिहक्खोभे ति वा, देवरण्णे ति वा, देववूहेति वा।[1] (स्था ४/२७५-७७)

तरच्छ—व्याघ्र विशेष।

तरच्छ-अच्छ-भल्ल-सद्दूल-सीह।[2] (प्र १/६)

तरुणय—नवीन।

तरुणय त्ति अभिनवा कोमला। (अनुटी प ४)

तच्चित्त—तन्मयता।

तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए।[3] (भ १/३५४)

तज्जेंति—तर्जना देते हैं।

तज्जेंति तालेंति परिवहेति पव्वहेंति।[4] (भ ३/४५)

तवस्सि—तपस्वी।

तवस्सी त्ति वा साहु त्ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ २०३)

तसंति—भयभीत होते हैं।

तसति त्ति वा उव्वियंति वा संकुयंति वा बीभिंति वा एगट्ठा।[5] (आचू पृ ३६)

तह—तथ्य।

तहमवितहमसंदिद्धं। (भ २/५२)

तिण्ण—तीर्ण।

तिण्णे मुत्ते विरए। (आ ५/६१)

तितिक्खति—तितिक्षा करता है।

तितिक्खति त्ति वा सहति त्ति वा एगट्ठा।[6] (आचू पृ १७१)

---

१ देखें—परि० २
२ देखें—परि० २
देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० ३
६. देखें—परि० ३

तितिक्खा—अहिंसा ।

तितिक्खा य अहिंसा य हिरि एगट्ठिया पदा । (उनि १५८)
तितिक्खा अहिंसा वेरति वा ।[1]

तिरीड—मुकुट ।

तिरीडं मउडो चेव तधा सीहस्स भंडक ।
अलकस्स परिक्खेवो, अधवा मत्थककटकं ।।
तधा गुरुलको व त्ति वदे मगरको त्ति वा ।
तधा उसभको व त्ति अधवा सीउको भवे ।। (अंवि पृ ६४)

तिरीड ति किरीट च मुकुटम् ।[2] (समटी प १४६)

तिलोवलद्धीय—तिलपपड़ी ।

तिलोवलद्धीयं पललं वा तिलक्खली वा ।[3] (अवि पृ १८२)

तिसरा—मछली पकड़ने का जाल ।

तिसराहि य, भिसराहि य, घिसराहि य, विसराहि य, हिल्लिरीहि य, भिल्लिरीहि य, गिल्लिरीहि य, झिल्लिरीहि य, जालेहि य ।[4]
(विपा ८/१६)

तिसला—त्रिशला, महावीर की माता ।

तिसला ति वा विदेहदिण्णा ति वा पियकारिणी ति वा ।[5]
(आचूला १५/१८)

तीरित—पार पा गया ।

तीरित णीत अंतम् । ((दश्रुचू प ७०)

तीर्थ—घाट ।

तीर्थं जलपानस्थानमित्येकोऽर्थः । (बृकटी पृ १३०३)

तुच्छ—असार ।

तुच्छ ति रित्तकं व त्ति असारं झुसिरं ति वा । (अंवि पृ १००)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

तुट्ठि— तुष्टि ।

तुट्ठी वा ऊसए वा हरिसे वा आणंदे वा । (निर १/७२)

तुदति— प्रेरित करता है ।

तुदति उत्तुदति प्रचोदयति ।[1] (निचूभा ३ पृ ४०)

तुलना—तुलना ।

तुलना भावना परिकर्म चेत्येकार्थानि ।[2] (प्रसाटी प १२६)

तुस—तुष ।

तुस त्ति कोटको व त्ति कक्कुसो तप्पणो त्ति वा ।[3] (अवि पृ १०६)

तेगिच्छियसाला—चिकित्सालय ।

तेगिच्छियसाला चिकित्साशाला अरोगशाला । (ज्ञाटी प १८७)

तेय—तेज ।

तेउ त्ति उण्हं ति इति एगट्ठा । (आचू पृ ३१७)

त्वग्वर्तन—शयन करना ।

त्वग्वर्तन तुयट्टण शयनं । (निचूभा २ पृ ३७०)

थणंति—चिल्लाते है ।

थणंति वा कंदंति वा सोयति वा ।[4] (आचू पृ २०२)

थिर— स्थिर ।

थिर ध्रुवं धारणिज्जं । (आचूला ५/३०)

थिरसंघयण—दृढ़ संहनन वाला ।

थिरसघयणो दढसंघयणो बलितसरीर । (दश्रुचू प २१)

थिल्ली— पालकी ।

थिल्ली गिल्लि त्ति वा यूया सिबिका संदमाणिका ।[5] (अंवि पृ ७२)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० २

थुइ—स्तुति।

थुइथुणणवंदणनमंसणाणि एगट्ठियाणि। (आवनि १०६२)

थुइवदणपूयाअच्चणाइ।[1] (आचू पृ ३१५)

थुत—स्तुत।

थुता पूइया ह्येते एकार्थवचनाः। (नंदीचू पृ ४६)

थूल—स्थूल।

थूलं वड्ढं वरढ ति परिवूढ ति वा पुणो।
पीण उवचितं व त्ति पीवरं मासलं ति वा॥
महासारं महाकाय अतिकायं ति वा पुणो।
मड ति वहुल व त्ति पुत्थव्वा मेदितं ति वा॥[2] (अवि पृ ११४)

थेज्ज—विश्वसनीय।

थेज्जे वेस्सासिए सम्मए बहुमए अणुमए।[3] (भ २/५२)

थेरकप्प—स्थविरकल्प।

थेरकप्पो थेरमज्जाता थेरसमायारी। (दशचू पृ ७०)

थेरभूमि—स्थविरभूमि।

थेरभूमि त्ति वा थेरट्ठाणं त्ति वा थेरकालो त्ति वा एगट्ठ।[4]
(व्यभा १० टी प १००)

दंड—विनाश।

दडो घातो मारण ति एगट्ठा। (आचू पृ ६१)

दंत—दात।

दंते दविए वोसट्ठकाए। (सू १/१६/२)

दंतप्प— आत्मदांत।

दतप्पा समिए गुत्ते। (उ ३४/३१)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

दउवर— जलोदर व्याधि ।

दउवरे त्ति दकोदरं जलोदरम् । (ज्ञाटी प १६०)

दक्ख— दक्ष ।

दक्खो दक्खिण्णवं णिउणो । (अंवि पृ ४)

दगतीर—पानी के पास ।

दगतीर दगासण्णं दगब्भास ति वा एगट्ठ । (निचूभा ४ पृ ४६)

दगवीणिय—जल की प्रणालिका ।

दगवीणिय दगवाहो दगपरिगालो य एगट्ठा । (निभा ६३४)

दण्ड—यातना ।

दण्डो निग्रहो यातना विनाश इति पर्यायाः । (आवहाटी २ पृ २२६)

दया—संयम ।

दया य संजमो लज्जा दुगुञ्छाऽछलणा इ य ।[1] (उनि १५८)

दर्शन—दृष्टि, सिद्धान्त ।

दर्शन दृष्टि र्वा देश उपदेशो मार्गः । (सूचू २ पृ ४५७)

दर्शनं मतं सिद्धान्तम् । (उपाटी पृ १७४)

दविय—बंधनमुक्त ।

दविए बंधणुम्मुक्के छिण्णबंधणे । (सू १/८/१०)

दव्वी—कुड़छी ।

दव्वी तध कवल्ली य दीविक त्ति कडच्छुकी ।[2] (अंवि पृ ७२)

दारिया—बालिका ।

दारिया बालिया व त्ति सिगिका पिल्लिक त्ति वा ।
वच्छिका तण्णिका व त्ति पोतिक त्ति व जो वदे ।।
कण्ण त्ति व कुमारि त्ति धिज्जा ।[3] (अंवि पृ ६८)

---

१. देखें— परि० २

२. देखें—परि० २

३ देखें परि० २

दारुण—दारुण ।

दारुणो कक्कसो असाओ । (प्र १/३९)

दारुणसद्द—दारुणशब्द ।

दारुणसद्दो कक्कससद्दोऽवि य एगट्ठा । (दशजिचू पृ २८३)

दास—दास, नौकर ।

दासा इ वा, पेस्सा इ वा, भयगा इ वा, भाइल्लगा इ वा ।
(आ १/२/६०)

दास किंकर कम्मकर । (दश्रु ६/२४)

दास-भयक-पेस (प्र १०/३)

दासे इ वा, पेसे इ वा, भयए इ वा, भाइल्ले इ वा, कम्मकरे इ वा, भोगपुरिसे इ वा । (सू २/२/५८)

दासे इ वा, पेसे इ वा, सिस्सी इ वा, भयगे इ वा, भाइल्लए इ वा, कम्मारए इ वा ।[1] (जंबू २/२६)

दासी—दासी ।

दासी कम्मकरी व त्ति पेसि त्ति नत्तिक त्ति वा । (अवि पृ ६८)

दिट्ठ—दृष्ट ।

दिट्ठाणं सुयाणं मुयाण विण्णायाणं निज्जूढाणं वोगडाण वोच्छिण्णाणं णिसिट्ठाणं णिवूढाणं उवधारियाणं । (सू २/७/३४)

दिट्ठ सुय मय विण्णायं ।[2] (आ ४/२०)

दिट्ठि—दर्शन ।

दिट्ठी दरिसणं मत । (निपीचू पृ १५)

दिट्ठिवाय—दृष्टिवाद (बारहवां अंग) ।

दिट्ठिवाए ति वा, हेउवाए ति वा, भूयवाए ति वा, तच्चावाए ति वा, सम्मावाए ति वा, धम्मावाए ति वा, भासाविजए ति वा, पुव्वगते ति वा, अणुजोगगते ति वा, सव्वपाण (सुहावहे) ति वा, सव्वभूत (सुहावहे) ति वा, सव्वजीव (सुहावहे) ति वा, सव्वसत्त (सुहावहे) ति वा ।[3] (स्था १०/९२)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

द्वितीयसमवसरण—ऋतुबद्धकाल ।

द्वितीयसमवसरणं ऋतुबद्ध इति चैकार्थम् ।[1] (बृकटी पृ ११५१)

दिप्पते—दीप्त होता है ।

दिप्पते भासते सोभते ।[2] (निपीचू पृ १६)

दीण—दीन ।

दीणो त्ति दुम्मणो व त्ति परितंतो त्ति वा पुणो ।
उक्कट्ठितो त्ति सोकत्तो चिंता-झाणपरो त्ति वा ।।
अणिव्वुतो आतुरो त्ति परायितणिरागतो ।
अकतत्थो असिद्धत्थो अहमो णियमसक्कतो ।। (अवि पृ १२१)

दीणा दुम्मणा निराणंदा । (ज्ञा १/१/३४)

दीणं ति वा कलुणं ति वा एगट्ठा ।[3] (दशजिचू पृ ३१२)

दीव—दीप (अग्नि का स्थान) ।

दीवा त्ति दीवक त्ति य चुडली मघअग्गि चुल्लके व त्ति ।
विज्जु त्ति विज्जुता आयवो त्ति कज्जोपको व त्ति ।।
अणलि त्ति व चुल्लि त्ति व भितक त्ति व फुंफक त्ति वा ।[4]
(अवि पृ २५४)

दीविय—प्रकाशित ।

दीविय पभासिउ त्ति य पगासितो चेव एगट्ठा । (जीतभा २४८)

दीविय—सिंह ।

दीविय वियग्घ सदूल सीह ।[5] (प्र १/२९)

दीह—दीर्घ, ऊंचा ।

दीहमुच्चं महतं ति । (अवि पृ ११५)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

दुहट्ट—दुःखी ।

दुहट्ट त्ति दुर्घटो दुःस्थगो । (उपाटी पृ १०८)

दूइज्जति—विहरण करता है ।

दूइज्जति रीयति गच्छति ।[1] (निचूभा २ पृ १२१)

देव—देवता ।

देवो अमरो व त्ति सुरो वा विबुधो त्ति वा ।[2] (अंवि पृ ६२)

देश—भाग ।

देशः प्रस्तावोऽवसरः विभागः पर्याय इत्यनर्थान्तरम् ।
(दशहाटी प ६)

देशन—कथन ।

देशन भाषणं देशो निर्देशः । (विभामहेटी १ पृ ५६३)

देसकालण्ण—देश-कालज्ञ ।

देसकालण्णे खेत्तण्णे कुसले पंडिते विअत्ते मेधावी अबाले मग्गण्णे मग्गविदू मग्गस्स गतिआगतिण्णे परक्कमण्णू ।[3] (सू २/१/६)

दोमणस्स—दौर्मनस्य ।

दोमणम्स ति वा दुम्मणियं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३२१)

दोसिणा—ज्योत्स्ना ।

दोसिणा इ वा चंदलेस्सा इ य एगट्ठे । (सूर्य १६/२)

दोसीण—रात का बासी अन्न ।

दोसीण-वावण्ण-कुहिय-पूइय ।[4]

द्रव्य—भव्य, मोक्षगामी ।

द्रव्यो भव्यो मुक्तिगमनयोग्यो । (सूटी १ प ५६)

धण्ण—धन्य ।

धण्णासि पुण्णासि कयत्थासि । (जंबू ५/५)

---

१. देखें—परि० ३
२ देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

धम्म—स्वभाव।

धम्मो त्ति वा सभावो त्ति वा दो वि एगट्ठा। (निचूभा ४ पृ ३७५)
धम्मो सब्भावो लक्खण त्ति एगट्ठा। (दशजिचू पृ १६)

धम्मत्थिकाय—धर्मास्तिकाय।

धम्मे इ वा, धम्मत्थिकाये इ वा, पाणाइवायवेरमणे इ वा, मुसावायवेरमणे इ वा, अदिण्णादाणवेरमणे इ वा, मेहुणवेरमणे इ वा, परिग्गहवेरमणे इ वा, कोहविवेगे इ वा, माणविवेगे इ वा, माया-विवेगे इ वा, लोहविवेगे इ वा, रागविवेगे इ वा, दोसविवेगे इ वा, कलहविवेगे इ वा, अब्भक्खाणविवेगे इ वा, पेसुणविवेगे इ वा, परपरिवायविवेगे इ वा, रइ-अरइविवेगे इ वा, मायामोसविवेगे इ वा, मिच्छादसणसल्लविवेगे इ वा, रियासमिती इ वा, भासासमिती इ वा, एसणासमिती इ वा, आयाणभडमत्तनिक्खेवणासमिती इ वा, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिट्ठावणियासमिती इ वा, मणगुत्ती इ वा, वइगुत्ती इ वा, कायगुत्ती इ वा······सव्वेते धम्मत्थिकायस्स अभिवयणा।[1] (भ २०/१४)

धम्ममण—धर्म मे रक्त मन वाला।

धम्ममणे अविमणे सुहमणे अविग्गहमणे समाहिमणे।[2] (प्र ६/२०)

धम्मिय—धार्मिक।

धम्मिया धम्माणुया धम्मिट्ठा धम्मक्खाई धम्मप्पलोई धम्मपलज्जणा धम्मसमुदायारा।[3] (सू २/२/७१)

धरण—धारणा (मति ज्ञान का भेद)।

धरण अविच्चुती धारणा। (नंदीचू पृ ३४)

धरणा धारणा ठवणा पइट्ठा कोट्ठे।[4] (नदी ४६)

धर्म—धर्म।

धर्म. स्वभाव· सम्यग्दर्शनमित्येकार्थम्।[5] (व्यभा १० टी प ४४)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

दीहसक्कुलिका—खजली (गुड़ से निष्पन्न खाद्य विशेष)।

दीहसक्कुलिकं वा, खाजट्टिका वा, खोक्के वा, दीवालिकाणि वा, दसीरिका वा, भिसकंटकं वा, मत्थकतं वा।[1] (अंवि पृ १८२)

दुक्कड—दुष्कृत।

दुक्कडं ति वा सावज्जमणुट्ठितं ति वा पावकम्ममासेवितं ति वा वितट्ठमाइन्नं ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ ३४६)

दुक्ख—दुःख।

दुक्खं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणामं। (सूचू १ पृ ४८)

दुक्ख—कर्म।

दुक्खं ति वा कम्मं ति वा एगट्ठं।[2] (दश्रुचू पृ २८)

दुक्खइ—दुःखित होता है।

दुक्खइ वा सोयइ वा जूरइ वा तिप्पइ वा पीडइ वा परितप्पइ वा।[3] (सू २/१/४२)

दुक्खण—दुःख।

दुक्खण-जूरण-सोयण-तिप्पण-पिट्टण-परितप्पण।[4] (सू २/२/३१)

दुगुंछणा—संयम।

दुगुंछणा संजमणा अकरणा वज्जणा विउट्टणा णियत्ति त्ति वा एगट्ठा। (आचू पृ ३८)

दुग्गव—दुष्ट बैल।

दुग्गवो त्ति वा कुट्टगोणो त्ति वा गलियद्दो त्ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ ३१५)

दुब्भाण—दुर्भिक्ष।

दुब्भाणं ति वा दुभिक्खं ति वा एगट्ठं। (बृकचू प १४८)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० २

दुट्ठ—दुष्ट ।

दुट्ठे मूढे वुग्गाहिते ।[1] (स्था ३/४७८)

दुद्ध—दूध ।

दुद्धं पयो वालु खीरं च । (जीतभा ११३२)

दुद्धं पओ पीलु खीरं च ।[2] (पिनि १३१)

दुब्बल—दुर्बल ।

दुब्बले किलंते जुंजिए । (आ० १/१/१८६)

दुम—वृक्ष ।

दुमा य पायवा रुक्खा, विडिमी य अगा तरू ।
कुहा महीरुहा वच्छा, रोवगा भंजगा वि य ॥[3] (दशनि १४)

दुमपुप्फिया—दशवैकालिक के प्रथम अध्ययन का नाम ।

दुमपुप्फिया य आहारएसणा गोयरे तया उंछो ।
मेस जलूगा सप्पे, वणऽक्खइसुगोलपुत्तुदए ॥[4]

(दशहाटी प १८)

दुर्भेद—दुर्भेद्य ।

दुर्भेदो दुर्मोचो दुःक्षपणीयः । (विभामहेटी १ पृ ४५६)

दुरुहइ—आरोहण करता है ।

दुरुहइ त्ति विलग्गइ त्ति आरुभति त्ति एगट्ठं ।[5]

(निभूभा ४ पृ २०५)

दुस्सह—दुस्सह ।

दुस्सहा व्याकुला असमंजसा । (जंबूटी १६७)

दुस्सील—दुश्शील ।

दुस्सीले दुपरिचए दुरणुणेए दुव्वए । (दश्रु ६/३)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० ३

नस्समाण—नष्ट होता हुआ।

नस्समाणे विणस्समाणे वज्झमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे।[1] (उपा ७/४६)

नागदन्तक—खूंटी।

नागदन्तकौ नर्कुटिकौ अंकुटिकौ। (अंचूटी प ५०)

नाण—ज्ञान।

नाणं ति वा उवयोगे ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ १२०)

नापित—नाई।

नापिता नखशोधका वारिका। (व्यभा १० टी प १५)

नाय—ज्ञात।

नायं दिट्ठं बुद्धं अभिसमण्णागयं। (ज्ञा १७/३३)

नायं आगमियं ति वा एगट्ठं। (व्यभा १०/२०८)

नायय—सखा।

नायए इ वा, घाडियए इ वा, सहाए इ वा, सुहि त्ति वा।[2]
(ज्ञा १/२/७५)

निअच्छंति—प्राप्त करते हैं।

निअच्छंति निग्गच्छंति वा पावंति वा एगट्ठा।[3]
(दशजिचू पृ ३१४)

निकाच—निमंत्रण।

निकाचो निकाचनं च्छंदनं निमंत्रणमित्येकार्था.।
(व्यभा ५ टी प १२)

निक्षेप—न्यास।

निक्षेपः मोचनं रचनं न्यास इति। (विभाकोटी पृ २८८)

निक्षेपो न्यासः समर्पणम्। (विपाटी प ५२)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० १

णिग्गमण—निर्गमन ।

निग्गमणमक्कमणं निस्सरणपलायणं च एगट्ठा ।[1]

(व्यभा ३ टी प १२४)

णिज्जामय—नाविक ।

निज्जामए कुच्छिधारा कण्णधारा गब्भेल्लगा ।[2] (ज्ञा १७/१०)

णिट्ठिय—उपरत ।

निट्ठिए उवरए उवसंते विज्झाए । (ज्ञा १/१/१८३)

णिट्ठियट्ठ—सिद्ध, निर्मल ।

निट्ठियट्ठा निरेयणा नीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा ।[3]

(औप १८४)

णिट्ठुर—निष्ठुर ।

निट्ठुर खर फरुस । (ज्ञा १/८/७२)

णिधान—न्यास ।

निधानं निधिर्निक्षेपो न्यासो विरचना प्रस्तारः स्थापनेति पर्यायाः ।

(अनुद्वामटी प ४७)

णिमित्त—हेतु ।

निमित्त हेतुरूपदेश. प्रमाणं कारणमित्यनर्थान्तरम् ।

(सूचू २ पृ ३१४)

णियाग—मोक्ष ।

नियागो मोक्ष. सद्धर्मो वा ।[4] (सूटी १ प ३६)

णियाण—निदान, कारण ।

नियाणं हेतु. कारणमित्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ३८०)

णियोग—ग्राम ।

नियोग इति ग्राम इति चैकोऽर्थः । (बृकटी पृ ३४५)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

धर्म—व्यवस्था ।

धर्मः स्थितिः समयो व्यवस्था मर्यादेत्यनर्थान्तरम् । (आवचू १ पृ ७)

धाय—सुभिक्ष ।

धायं ति वा सुभिक्खं ति वा एगट्ठा । (निचूभा ३ पृ ७०)

धारणववहार—धारणा व्यवहार ।

उद्धारण विहारण, संधारण संपहारणा चेव ।
धारणववहारस्स उ, णामा एगट्ठिता एते ॥[1]

(जीतभा ६५५)

धारयंति—धारण करते हैं ।

धारयति वा संजमति वा निमित्तंति वा एगट्ठा ।[2]

(दशजिचू पृ २२१)

धी—बुद्धि ।

धी बुद्धि पेहा मतीति । (आचू पृ ५४)

धीर—धीर ।

धीर त्ति वा सूरे त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ११६)

धुणण—धूनन ।

धुणणं ति वा करीसणं ति वा एगट्ठा । (आचू पृ १४६)

धुण्ण—पाप ।

धुण्ण ति वा पावं ति वा एगट्ठा ।[3] (दशजिचू पृ २६४)

धुत—प्रकंपित ।

धुतः प्रकम्पितः स्फटितः । (व्यभा ४/१ टी प ५६

धुव—ध्रुव ।

धुवे णितिए (णिइए) सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे ।[4]

(इभा ३१/१)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

धुवक—ध्रुव ।

धुवको अचलितो व त्ति, तधा थावरको त्ति वा ।
सिवणामो गुत्तणामो, भवो त्ति अभवो त्ति वा ॥
थितो त्ति सुत्थितो व त्ति, तधा ठाणट्ठितो त्ति वा ।
अकंपो णिप्पकंपो त्ति, णिब्भरो सुहुते त्ति वा ॥[1]

(अंवि पृ ७६)

धूत—संयम ।

धूत संयम मोक्षं वा ।[2] (सूटी १ प १६४)

धूमिका—धूसर ।

धूमिका धूम्रवर्णा धूसरा । (भटी प १६६)

धूर्त—धूर्त ।

धूर्ता नैकृतिकाः स्तब्धा लुब्धाः कार्पटिका शठाः ।[3]

(उशाटी प २८१)

ध्रुव—ध्रुव ।

ध्रुवं नियतं नैत्यिकमिति त्रयोऽप्येकार्थाः । (व्यभा ४/३ टी प ६८)

नन्दन—समृद्ध ।

नन्दन समृद्धीभवन वाञ्छितस्याधिगतिरित्यनर्थान्तरम् ।

(बृकटी पृ ५)

नन्दि—शास्त्र ।

नन्दी शास्त्रं एकार्थम् ।[4] (बृकटी पृ ११)

नयन—उत्तेजित करना ।

नयनं जलनं जालन ओसक्कं त्ति एगट्ठं । (निपीचू पृ ८३)

नववधू—नववधू ।

नववधूः अप्रसूतागर्भिणी वा ।[5] (सूचू १ पृ ८४)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

पकप्पण—भेद ।

पकप्पणा पकप्पो भेद । (निपीचू पृ ३८)

पकिण्ण—प्रकीर्ण, बिखरा हुआ ।

पकिण्ण विप्पकिण्ण ति छड्डितं परिसाडियं । (अंवि पृ ८०)

पगडि—प्रकृति (पर्याय) ।

पगडीओ त्ति वा पज्जाय त्ति वा भेद त्ति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ ३७)

पगत—अधिकार ।

पगतं अहिगार: प्रयोजन: । (निपीचू पृ ३०)

पगासेति—प्रकाशित करता है ।

पगासेति त्ति वा बुज्झावेति त्ति वा पच्चाणेति त्ति वा एगट्ठा ।[1]
(आवचू १ पृ १०)

पच्चंतिक—म्लेच्छ ।

पच्चंतिकाणि दस्सुगायतणाणि मिलक्खूणि अणारियाणि दुस्सन्नप्पाणि दुप्पण्णवणिज्जाणि ।[2] (आचूला ३/८)

पच्चक्खाण—प्रत्याख्यान ।

पच्चक्खाण नियमा चरित्तधम्मो य होति एगट्ठा । (पचा प १४६)

पज्जव—पर्यव, पर्याय ।

पज्जवो त्ति वा भेदो त्ति वा गुणो त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ४)

पज्जाहार—परिधि ।

पज्जाहारो त्ति वा परिरओ त्ति वा एगट्ठं । (व्यभा २ टी प १०)

पज्जोसवणा—पर्युषण ।

पज्जोसवणाए अक्खराइ होंति उ इमाइं गोण्णाइं ।
परियायवत्थवणा, पज्जोसवणा य पागइता ॥
परिसवणा पज्जुसणा, पज्जोसवणा य वासावासो य ।
पढमसमोसरणं ति य, ठवणा जेट्ठोग्गहेगट्ठा ॥[3] (निभा ३१३८-३९)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

पट्ठवण—प्रवर्तन ।

पट्ठवणं प्रारंभः प्रवर्तन । (अनुद्वाचू पृ ५)

पडण—पतन ।

पडणं ति वा उज्झणं ति वा एगट्ठं । (निचूभा २ पृ २३१)

पडिकमण—प्रतिक्रमण ।

पडिकमण पडियरणा, परिहरणा वारणा नियत्ती य ।
निंदा गरिहा सोही । (आवनि १२३३)

पडिपुन्न—प्रतिपूर्ण ।

पडिपुन्न ति वा निरवसेस ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३२६)

पडियाणिया—पैबन्द ।

पडियाणिया थिग्गलयं छदतो य एगट्ठं । (निचूभा ३ पृ ५६)

पडिसेवणा– प्रतिसेवना (दोष) ।

पडिसेवणा मइलणा भंगो य विराहणा य खलणा य ।
उवघाओ य असोही सबलीकरण च एगट्ठा ।[1] (ओनि ७८८)

पडिहत्थ—अत्यधिक ।

पडिहत्थ। अतिरेकिता अतिप्रभूता । (जबूटी प ४२)

पडुच्च—प्रसंग को प्राप्त कर ।

पडुच्च त्ति वा पप्प त्ति वा अहिकिच्च त्ति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ २१)

पणिधि—माया ।

पणिधी उवधी माया । (दश्रुचू प ७४)

पणिहाण—प्रणिधान (अध्यवसाय) ।

पणिहाण ति वा अज्झवसाणं ति वा चित्तं ति वा एगट्ठा ।
(निपीचू पृ २२)

---

१. देखें—परि० २

निर्मम—निर्मोही।

निर्ममो निरहंकारो वीतरागो निराश्रवः। (उचू पृ २८०)

निव्वट्टण—निर्वर्तन।

निव्वट्टनं ति वा खिप्पणं ति वा एगट्ठा। (आचू पृ १२८)

निव्वाण—निर्वाण।

निव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए निरावरणे अणंते अणुत्तरे।[1]
(आचूला १५/३८)

निव्वुड—निर्वृत।

निव्वुडे वितिमिरे विसुद्धे। (भटी प २१७)

निश्चय—निश्चय।

निश्चयो निर्णयोऽवगम इत्यनर्थान्तरम्। (नंदीटी पृ ५१)

निषण्ण—बैठा हुआ।

निषन्ना अनुपविष्टा स्थिता। (व्यभा ७ टी प ४५)

निष्कंटक—आवरणरहित।

निष्कटका निष्कवचा निरावरणा निरुपघातेति। (राजटी पृ १७८)

निष्ठित—पूरा करना।

निष्ठितं कृतमित्येकोऽर्थः। (बृकटी पृ १०१६)

निष्पंक—निर्मल।

निष्पंका कलंकरहिता कर्दमरहिता। (अंबूटी प २१)

निसृजति—छोड़ता है।

निसृजति उत्सृजति मुञ्चति इति पर्यायाः।[2]
(विभामहेटी १ पृ १७७)

निसर्ग—स्वभाव।

निसर्गः स्वभावः परिणाम इत्यनर्थान्तरम्। (आवचू १ पृ ४३६)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

निस्सा—आलंबन ।

निस्सोवसपय त्ति य एगट्ठं । (व्यभा ४/३ टी प ३१)

निस्सील—निश्शील ।

निस्सीले निव्वए निग्गुणे निम्मेरे । (राज ६३५)

निस्सीले निव्वए निग्गुणे निप्पच्चक्खाणे ।[1] (भ १/१८/१६)

नीय—नीचा ।

नीयं ति वा अवयं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ १६६)

नील—नीला, काला ।

नील तिमिरंधकार ति, रत्ती उत्तासो त्ति य ।[2] (अंवि पृ २४३)

पउंजेज्जा—प्रयुक्त करे ।

पउजेज्ज त्ति वा कुव्विज्ज त्ति वा एगट्ठा ।[3] (दशजिचू पृ ३०६)

पंडिय—पडित ।

पडिए मेहावी णिट्ठियट्ठे वीरे ।[4] (आ ६/६८)

पंडुर—अत्यन्त सफेद ।

पडुरं धवलयं सेय । (आटी प १७)

पंतावेज्ज—क्रोध करे ।

पतावेज्ज वा ओभासेज्ज वा उक्कोसेज्ज वा फरुसेज्ज वा ।[5]

(निचूभा २ पृ १४८)

पंथ—पथ, रास्ता ।

पथि त्ति मार्गो विहारः । (बृकटी पृ ४०६)

पकप्प—प्रकल्प, मर्यादा ।

पकप्पो समायारी मज्जाता । (आचू पृ २७७)

---

१ देखें—परि० २

२ देखें—परि० २

३. देखें—परि० ३

४. देखें—परि० २

५. देखें—परि० ३

पम्हुट्ठ—विनष्ट ।

पम्हुट्ठे पमुक्के पब्भट्ठे पकिण्णे पविसिते पमुच्छिते पलोसिते परावते परिसडिते परिसोडिते पडिसिढे पप्फोडिते पडिणायिते पडिहरिते पविदिन्ने पडिछुढे पडिते परिवडिते पडिलोलिते पडिसरिते पडिओघुते । (अंवि पृ १६६)

पयत्त—संयत ।

पयतो पयत्तवान् अप्रमत्तः । (दचू प ८९)

पयस्—पानी ।

पयः पिच्चं नीरमुदकम् । (प्रसाटी प २९२)

पयाति—उत्पन्न होता है ।

पयाति उपपद्यत इत्यनर्थान्तरम् ।[1] (सूचू २ पृ ३४४-४५)

पर—ज्येष्ठ ।

परं प्रधान ज्येष्ठम् । (निचूभा ३ पृ ४)

परग्घ—महंगा ।

परग्घम्हि महग्घम्हि जुत्तग्घम्हि । (अंवि पृ १६)

परज्झ—परवश ।

परज्झा परवसा रागद्दोसवसगा । (उचू पृ १२६)

परम—प्रधान ।

परमं पहाणं ति होति एगट्ठं । (जीतभा ७०६)

परमाणु—परमाणु ।

परमाणुर्निरंशो निरवयवोनिष्प्रदेशो निर्भेदः । (आवमटी प ४५)

परिउसित—पास में बैठा हुआ ।

परिउसितो पच्चुसितो थितो त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ २७३)

---

१. देखें—परि० ३

परिकम्मण—परिकर्म, सीवन ।

परिकम्मण ति वा सिव्वण ति वा एगट्ठं । (निचूभा ४ पृ १४३)

परिकर्म—भावना ।

परिकर्मेति वा भावनेति वा एकार्थम् । (बृकटी पृ ३९७)

परिक्कमिज्ज—संस्कारित करे, युक्त करे ।

परिक्कमिज्जासि घडिज्जासि जोलेज्जासि ।[1] (आच पृ ११०)

परिक्खित्त—विस्तारित ।

परिक्खित्त त्ति परिक्षिप्तो विस्तारितः । (अंतटी प ७)

परिगण्यमान—गिना जाता हुआ ।

परिगण्यमान परीक्ष्यमाण मीमास्यमानो वा । (सूचू १ पृ २०८)

परिगम—पर्याय, गुण ।

परिगमो त्ति वा पज्जाहारो त्ति वा परिरओ त्ति वा एगट्ठं ।

(निचूभा ४ पृ २७९)

परिग्गह—परिग्रह ।

परिग्गहो, संचयो, चयो, उवचयो, निहाणं, संभारो, संकरो, आयारो, पिंडो, दव्वसारो, महिच्छा, पडिबंधो, लोहप्पा, महद्दी, उवकरण, सरक्खणा, भारो, सपायुप्पायको कलिकरंडो, पवित्थरो, अणत्थो, संथवो, अगुत्ति, आयासो, अविओगो, अमुत्ति, तण्हा, अणत्थको, आसत्ति, असंतोसो ।[2] (प्र ५/२)

परिचेट्ठति—चेष्टा करता है ।

परिचेट्ठति त्ति वा बूया, तधा विप्परिचेट्ठते ।
परिवत्तते त्ति वा बूया, तधा विप्परिवत्तते ॥[3] (अंवि पृ ८०)

परिज्झभासि—परीक्षापूर्वक बोलने वाला ।

परिज्जभासि त्ति वा परिक्खभासि त्ति वा एगट्ठा ।

(दशजिचू पृ २६४)

---

१ देखें—परि० ३
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३

पणिहाणं अभिप्पायो चित्तमिति समाणं । (दशजिचू पृ १८०)

पणिहि—निक्षेप, प्रक्षेप ।

पणिहि निक्खिविय ति वा पणिहाणं ति वा एगट्ठा ।
(दशजिचू पृ २९५)

पण्णत्त—प्रज्ञप्त ।

पण्णत्त पण्णवितं प्ररूपितमित्यनर्थान्तरम् । (नंदीचू पृ १३)

पण्णवण—प्रज्ञापन ।

पण्णवण त्ति परूवण त्ति वा विण्णवण त्ति वा एगट्ठं ।
(निपीचू पृ १६०)

पण्णविय—प्ररूपित ।

पण्णवियं परूविय पसिद्ध । (प्र ७/२५)

पति—स्वामी ।

पति. प्रभु स्वामी । (निचूभा २ पृ ११८)

पतिट्ठा– प्रतिष्ठा, स्थापना ।

पतिट्ठा ठावणा ठाण, ववत्था संठिती ठिती ।
अवट्ठाण अवत्था य, एगट्ठा चिट्ठणा त्ति य ।। (बृकभा ६३५६)

पत्ति—पत्नी (स्त्री) ।

पत्ति वधु त्ति वा ।
वधू उपवधू व त्ति, इत्थिया पदम त्ति वा ।।
अंगणा महिला णारी, पोहट्ठी जुवति त्ति वा ।
जोसिता धणिता व त्ति, विलक त्ति विलासिणी ।
इट्ठा कंता पिया व त्ति, मणामा हितइच्छिता ।
इस्सरी सामिणी व त्ति, तधा वल्लभिक त्ति वा ।।[1] (अंवि पृ ६८)

पत्थेमाण—चाहता हुआ ।

पत्थेमाणे पीहेमाणे अभिलसमाणे । (विपा १/५७)

---

१. देखें—परि० २

पद—हिंसा ।

पदं ति वा भूताधिकरणं ति वा हणणं ति वा एगट्ठा ।

(दशजिचू पृ २६०)

पदपाश—पैरों का बंधन ।

पदपाश कूड· उपक. । (सूचू १ पृ ३३)

पदुम—पद्म ।

पदुमं पुंडरीकं च, पंकयं णलिणं ति वा ।
सहस्सपत्तं सतपत्तं, सप्फं ति कुमुदं ति वा ॥
तधुप्पलं कुवलयं, तधा गद्दभगं ति वा ।
तणसोल्लिकं ति वा बूया, तधा तामरसं ति वा ॥
इदीवर कोज्जक ति, पाडलं कंदलं ति वा ।[1] (अंवि पृ ६३)

पधावति—दौडता है ।

पधावति त्ति वा बूया, सधावति विधावति ।
परिधावति त्ति वा बूया, तधा णिद्धावति त्ति वा ।।[2] (अवि पृ ८०)

पभासइ—प्रभासित करता है ।

पभासइ त्ति वा उज्जोएइ त्ति वा एगट्ठा ।[3] (दशजिचू पृ ३०७)

पभु—योग्य, समर्थ ।

पभु त्ति वा जोग्गो त्ति वा एगट्ठं। (निचूभा ४ पृ ३३१)

पमिलायति—म्लान होता है ।

पमिलायति पविद्धसति विद्धंसति ।[4] (स्था ३/१२५)

पम्हुठ—विस्मरण ।

पम्हुठ ति वा परिठवियं ति वा एगट्ठं । (व्यभा ८ टी प २६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३

परिच्छा—इच्छा ।

परिच्छं ति वा पत्थणं ति वा गिद्धि त्ति वा अभिलासो त्ति वा कंखं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३०)

परिभासति—निन्दा करता है ।

परिभासति परिभवति अवमण्णति ।[1] (दश्रचू प ७)

परिभीत—अपमानित ।

परिभीते अवमाणिते विमाणिते । (अंवि पृ १०८)

परियट्टण—परावर्तन, अभ्यास ।

परियट्टण ति वा अब्भसण त्ति वा गुणणं ति वा एगट्ठा ।
(दशजिचू पृ २८)

परिरय—परिधि ।

परिरय. पर्यहार: परिधि: । (व्यभा २ टी प १०)

परिवंदण—परिवंदना ।

परिवंदण-माणण-पूयणाए । (आ १/४४)

परिवयण—परिवाद ।

परिवयण परिवातो अगुणकित्तणं । (निचूभा ३ पृ ५)

परिवुड्ढ—पुष्ट ।

परिवुड्ढे त्ति णं बूया, बूया उवचिए त्ति य ।
संजाए पीणिए वा वि, महाकाए त्ति आलवे ।। (दश ७/२३)

परिवूढ—मोटा ।

परिवूढं वा उवचितदेहं वा संजातदेहं वा पीणितदेहं वा ।
(दशजिचू पृ २५३)

परिसहण—सहना ।

परिसहणं ति वा अहियासणं ति वा एगट्ठा । (आचू पृ २१०)

---

१. देखें—परि० ३

परिहार—परिहार ।

परिहारः परित्यागो वर्जनं । (व्यभा २ टी प १०)

परिहार—एक प्रकार का तप ।

परिहार तवो त्ति एगट्ठं । (व्यभा ५/१४३)

परूवण—प्ररूपण ।

परूवण त्ति वा कप्पणे त्ति वा एगट्ठा । (निपीचू पृ ३२)

परूवण त्ति कहणं ति वक्खाणं ति मग्गो त्ति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ १७)

परूवित—प्ररूपित ।

परूवितं पण्णवितं ति एगट्ठा । (आचू पृ १३६)

पर्यव—पर्याय ।

पर्यवा विशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरम् । (भटी पृ ११७५)

पर्याय—पर्याय, विशेष धर्म ।

पर्याया गुणा विशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरम् । (प्रज्ञाटी प १७६)

पर्याया भेदा धर्मा बाह्यवस्त्वालोचनप्रकारा इत्यनर्थान्तरम् ।
(आवहाटी पृ १०६)

पर्यायाः पर्यवाः पर्ययाः धर्मा इत्यनर्थान्तरम् ।
(विभामहेटी १ पृ ४७)

पर्यायः भेदः भाव इत्यनर्थान्तरम् । (विभामहेटी १ पृ ३३)

पर्याय—परिपाटी, क्रम ।

पर्यायः परिपाटिरित्यनर्थान्तरम् । (ज्ञाटी प ५५)

पलिउंचण—माया ।

पलिउंचणं ति य माय त्ति य नियडि त्ति य एगट्ठा ।
(व्यभा १ टी प ४७)

पलिमंथ—विघ्न ।

पलिमंथो वक्खेवो वक्खोड विणास विग्घो य । (बृकनि ६३१४)

पवयण—प्रवचन ।

सुयधम्म तित्थ मग्गो, पावयणं पवयणं च एगट्ठा । (आवनि १३०)

पवयणं ति वा सुत्तं ति वा अत्थे ति वा । (आवचू १ पृ १०७)

पविट्ठ—प्रविष्ट ।

पविट्ठो त्ति व जो बूया, तधा अतिगतो त्ति वा ।
तधातिसरितो य त्ति, तधा लीणो त्ति वा पुणो ।।

(अवि पृ ८६)

पवेइय—प्रवेदित, कहा हुआ ।

पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता ।[1] (दश ४/१)

पव्वइज्जा—दीक्षित करे ।

पव्वइज्जा संजमेज्जा संवरेज्जा ।[2] (स्था ३/१७५)

पव्वइय—प्रव्रजित ।

पव्वइए संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी ।[3] (स्था ४/१)

पव्वाविय—प्रव्रजित ।

पव्वावियं मुंडावियं सेहावियं सिक्खावियं ।[4] (भ २/५२)

पहर—प्रहार करो, मारो ।

पहर, छिंद, भिंद, उप्पाडेहि, उक्खणाहि, कत्ताहि, विकत्ताहि य, भंज, हण, विहण, विच्छुभोच्छुभ, आकड्ढ, विकड्ढ ।[5] (प्र १/२७)

पहारेत्थ—निश्चय किया ।

पहारेत्थ त्ति संप्रधारितवान् विकल्पितवान् । (ज्ञाटी प ३७)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० ३

पहेण—उपहृत भोजन ।

पहेणं ति वा उक्खित्तभत्तं ति वा एगट्ठा । (आचू पृ ७७)

पागार—प्राकार ।

पागारो फलिहो त्ति य वति त्ति । (अंवि पृ २४१)

पाठीण—मछली ।

पाठीण तिमि तिमिंगिल । (प्र १/५)

पाण—प्राण (प्राणी) ।

पाणे भूए जीवे सत्ते विण्णू वेदे ।[1] (भ २/१४)

पाण—चाडाल ।

पाणा डोबा किणिया सोवागा । (व्यभा ४/२ टी प २१)

पाणवह—हिंसा ।

पाणवहुम्मूलणा सरीराओ, अवीसंभो, हिंसविहिंसा, तहा अकिच्चं च, घायणा, मारणा य, वहणा, उद्दवणा, तिवायणा य, आरंभ, समारंभो, आउयकम्मस्स उवद्दवो, (भेय, णिट्ठवण, गालणा य, संवट्टग, संखेवो) मच्चू, असंजमो, कडग-मद्दणं, वोरमणं, परभव-संकामकारओ, दुग्गतिप्पवाओ, पावकोवो य, पावलोभो, छविच्छेओ, जीवियंतकरणो, भयकरो, अणकरो, वज्जो, परितावण-अण्हओ, विणासो, निज्जवणा, लुंपणा गुणाण विराहणत्ति ।[2] (प्र १/३)

पात्र—पात्र ।

पात्रं भाजनमाधारः इति पर्यायवचनम् । (बृकटी पृ १६४)

पात्र—योग्य ।

पात्रस्य योग्यस्य परिणामकस्य । (व्यभा १० टी प ११०)

पाव—पाद ।

पादस्यैवाय पदशब्दः पर्यायो ज्ञेयः । (प्रसाटी प ४३)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

पादव—वृक्ष ।

पादवो व दुमो व त्ति, रुक्खो वा अगमो त्ति वा ।
तथा थावरकायो त्ति, विडवि त्ति य जो वदे ॥[1] (अंवि पृ ६३)

पामुद्दिका—पैर का आभूषण ।

पामुद्दिक त्ति वा बूया, वम्मिका पाअसूचिका ।
तधा पाधट्टिका व त्ति, तधा खिंखिणिक त्ति वा ॥[2]
(अंवि पृ ७१)

पार—अन्त ।

पारमन्तगमनमित्येकोऽर्थः । (सूचू २ पृ ३३५)

पारण—पूरा करना ।

पारण त्ति वा पालणं ति वा पारगमणं ति वा एगट्ठा ।
(आवचू २ पृ २५३)

पालित—रक्षित ।

पालितो रक्खितो चेव विन्नेया गुत्त रक्खिते । (अंवि पृ १५७)

पाली—मर्यादा (पाल) ।

पाली मेरा सीमंतिक त्ति । (अंवि पृ २४१)

पाव—पाप ।

पावे वज्जे वयरे, पंके पणये खुहे दुहमसाते ।
संगे धुण्णे य रए, कम्मे कलुसे य एगट्ठा ॥
(आवचू १ पृ ६०६)

पावे वज्जे वेरे पंके पणए । (उशाटी प ६७)

पाव—पापी, रौद्र कार्य करने वाला ।

पावो, चंडो, रुद्दो, खुद्दो, साहसिओ, अणारिओ, निग्घिणो, निस्संसो, महब्भओ, पइभओ, अतिभओ, बीहणओ, तासणओ, अणज्जो, उव्वेयणओ य, निरवयक्खो, निद्धम्मो, निप्पिवासो, निक्कलुणो, निरयवासगमण-निधणो, मोह-महब्भय-पवड्ढओ, मरण, वेमणंसो । (प्र १/२)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २

पावा असंजया अविरया अणिहुण-परिणाम-दुप्पयोगी। (प्र १/४)
पावा चडदंडा अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा।[1] (सूटी २ प १३)

पावकम्मनिसेहकिरिया—पाप कर्म की निषेधक क्रिया।

पावकम्मनिसेहकिरिय त्ति वा अवस्सकम्मं ति वा अवस्सकिरिय त्ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ ३५०)

पावय—पापकारी।

पावए सावज्जे सकिरिए सउक्केसे अण्हयकरे छविकरे भूताभिसंकणे।[2] (स्था ७/१३२)

पास—बंधन।

पासो त्ति य बंधणो त्ति य एगट्ठं। (निभा ४३४३)

पासाण—पत्थर।

पासाणो पत्थरो व त्ति, उपलो त्ति मणि त्ति वा।
सिलोपट्टो त्ति वा बूया, गंडसेलो त्ति वा पुणो॥
णामतो गिरिको व त्ति, तहा पव्वतको त्ति वा।
सेलो वइरो त्ति वा बूया, मेरुको मरुभूतिको॥[3] (अंवि पृ ७८)

पासादिय—दर्शनीय।

पासादिए दरिसणिज्जे अभिरुवे पडिरुवे।[4] (उपा १/१५)

पाहुड—उपहार।

पाहुड ति पहेणगं ति वा एगट्ठं। (आचू पृ ३५०)
पाहुड पहेण पणयण एगट्ठा। (बृकभा २६७८)

पिंड—समूह।

पिंड निकाय समूहे, संपिडण पिंडणा य समवाए।
समोसरण निचय उवचय, चए य जुम्मे य रासी य॥[5]
(ओनि ४०७)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

पिच्चिअ—कूटा हुआ ।

पिच्चिउ त्ति वा विप्पिउ त्ति वा कुट्टितो त्ति वा एगट्ठं ।
(निचूभा २ पृ ६८)

पिज्ज—प्रेम ।

पिज्ज प्रेम राग । (उशाटी पृ ५६४)

पितवण्ण—पीला रंग ।

पितवण्णं ति पीतकं ॥
पउमकेसरवण्णं ति, तिगिच्छसरिसं ति वा ।[1] (अंवि पृ ६०)

पितामह—ब्रह्मा ।

पितामहो त्ति वा बूया, तधा बंभं ति वा पुणो ।
सयंभु त्ति व जो बूया, तधेव य पयावति ॥[2] (अंवि पृ १०१)

पियइ—जानता है ।

पियइ त्ति वा मिणइ त्ति वा दो वि अविरुद्धा ।[3]
(व्यभा ६/२५७ टी प ४६)

पियति—पीता है, पान करता है ।

पियति त्ति वा आपियइ त्ति वा एगट्ठा ।[4] (दशजिचू पृ २०२)

पिवासित—पिपासित ।

पिवासितो परिस्संतो छातो तण्हाइतो त्ति वा । (अंवि पृ १२१)

पीणणिज्ज—प्रीणनीय ।

पीणणिज्जे दीवणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे बिंहणिज्जे ।[5]
(ज्ञा १/१२/४)

पीहण—इच्छा करना ।

पीहनं अभिलसनं प्रार्थनम् । (उचू पृ १११)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० २

पुच्छणा—पृच्छा ।

पुच्छणा दावणा णिज्जवणा य एगट्ठा । (आवचू १ पृ ५०८)

पुच्छा—पृच्छा, प्रेरणा ।

पुच्छ त्ति वा चोदण त्ति वा एगट्ठं । (निचूभा ३ पृ ५१६)

पुज्ज—पूज्य ।

पुज्जो पूयणिज्जो त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३१८)

पुट्ठ—पुष्ट ।

पुट्ठे परिवूढे जायमेए महोदरे । (उ ७/२)

पुण्ण—पुण्य ।

पुण्या पवित्रा शुभा । (जंबूटी प २०२)

पुप्फ—पुष्प ।

पुप्फाणि अ कुसुमाणि अ, फुल्लाणि तहेव होंति पसवाणि ।
सुमणाणि अ सुहुमाणि अ, पुप्फाणं होंति एगट्ठा । (दशहाटी प १७)

पुराण—पुराना ।

पुराण जरठं कक्खडीभूत । (विपाटी प ३७)

पूज्यभक्त—पूज्यभक्त ।

पूज्यभक्त उत्क्षिप्तभक्तं पट्टकभक्तं एतान्येकार्थिकानि ।
(बृकटी पृ १०१५)

पूयणट्ठि—पूजार्थी ।

पूयणट्ठी जसोकामी माण (कामय) सम्माणकामए ।[1] (दश ५/२/३५)

पूया—पूज्य के लिए निष्पादित भोजन ।

पूय त्ति वा उक्खित्तं ति वा पट्टगो त्ति वा भत्तं ति वा पन्नागारो त्ति वा एगट्ठ । (बृकचू पृ १५०)

पूया उक्खित्त ति य पट्टगभत्तं च एगट्ठा । (बृकटी पृ १०१५)

---

१. देखें—परि० २

पूया—पूजा ।

पूय त्ति वा विक्खा त्ति वा आयारो त्ति वा एगट्ठं । (उचू पृ १९५)

पूर्व—पहला ।

पूर्वं प्रथममादिरिति पर्यायाः । (अनुद्वाहाटी पृ ३०)

पृथु—विस्तार ।

पृथु विस्तारः विच्छण्णा । (उचू पृ १८६)

पेक्खते—देखता है ।

पेक्खते पेच्छते व त्ति, णिज्झायति व पेक्खति ।
णियक्खेति त्ति वा बूया, णिरिक्खति णिलिक्खति ॥[1] (अंवि पृ १०७)

पेम—प्रेम ।

पेम ति वा रागो त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २९२)

पेहति—देखता है ।

पेहति त्ति वा पेच्छति त्ति वा एगट्ठा ।[2] (दशजिचू पृ ३२६)

पोग्गलत्थिकाय—पुद्गलास्तिकाय ।

पोग्गले इ वा, पोग्गलत्थिकाए इ वा, परमाणुपोग्गले इ वा, दुपएसिए इ वा, तिपएसिए इ वा, जाव असंखेज्जपएसिए इ वा, अंणतपएसिए इ वा खंधे, जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे पोग्गलत्थिकायस्स अभिवयणा ।[3] (भ २०/१८)

पोत्थ—वस्त्र ।

पोत्थ पोतं वस्त्रम् । (अनुद्वामटी प १२)

पोरेवच्च—अग्रगामिता ।

पोरेवच्च पुरोवर्तित्वं अग्रेसरत्वम् । (विपाटी प ४६)

प्रकाश—आविर्भाव ।

प्रकाशः प्रकटत्वम् आविर्भाव इत्यप्यभिन्नार्थम् ।
(विभामहेटी २ पृ १४०)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २

प्रकृति—प्रकृति (सांख्यमत का एक तत्त्व) ।

प्रकृति. प्रधानमव्यक्तमित्यनर्थान्तरम् ।[1] (सूचू २ पृ ३११)

प्रकृति—भेद, विभाग ।

प्रकृतयो भेदा: इत्यनर्थान्तरम् । (आवमटी प ४४)

प्रज्ञापनीय—कथनीय ।

प्रज्ञापनीय अभिलाप्य इत्येकोऽर्थ: । (बृकटी पृ २०४)

प्रणमन—प्रणाम ।

प्रणमनं प्रणाम: पूजा । (उचू पृ १)

प्रणाम पूजा नमस्कारो वंदनमिति पर्याया: । (विभाकोटी पृ ३)

प्रणिधान—अभिप्राय ।

प्रणिधानं बुद्धिरभिप्राय इत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ३४१)

प्रतिगमन—व्रतभंग ।

प्रतिगमन प्रतिभञ्जनं व्रतमोक्षम् । (व्यभा १० टी प ५८)

प्रतिबद्ध—प्रतिबद्ध ।

प्रतिबद्धा युक्ता संश्लिष्टा । (निचूभा २ पृ ८)

प्रतिमा—प्रतिज्ञा ।

प्रतिमा प्रतिज्ञा अभिग्रह: । (स्थाटी प १८८)

प्रतीष्ट—स्वीकृत ।

प्रतीष्ट प्रतीप्सितं अभ्युपगतम् । (ज्ञाटी प २०)

प्रत्येति—विश्वास करता है ।

प्रत्येति श्रद्धाति स्पृशति ।[2] (प्रसाटी प २८८)

प्रथम—पहला ।

प्रथम: आद्य: प्रधान: । (विपाटी प ५६)

---

१. देखो—परि० २

२ देखो—परि० ३

प्रथमसमवसरण—वर्षावास, चतुर्मास ।

प्रथमसमवसरणं ज्येष्ठावग्रहो वर्षावास इति चैकार्थम् ।[1]

(बृकटी पृ ११५१)

प्रदेश—भेद ।

प्रदेशा प्रतिभागा भेदा. । (व्यभा १० टी प ३२)

प्रभव—उत्पत्ति ।

प्रभवः प्रसूतिः निर्गमः । (सूचू १ पृ २०)

प्रभाति—प्रकाशित होता है ।

प्रभाति शोभते प्रकाशते ।[2] (जंबूटी प २१)

प्रयोग—प्रयोग ।

प्रयोग उपाय इत्यनर्थान्तरम् । (आवचू १ पृ ५१४)

प्रवचन—प्रवचन ।

प्रवचनमुपदेशोऽर्हद्वचनम् । (विपाकोटी पृ २)

प्रवहण—गाड़ी ।

प्रवहणं यानं गन्त्री । (ज्ञाटी प १००)

प्रवृत्ति—उत्पत्ति ।

प्रवृत्तिः प्रवाहः प्रसूतिरित्येकार्थाः । (बृकटी पृ ७२)

प्रशस्त—प्रशस्त ।

प्रशस्त प्रधानं प्रथमं । (अनुद्वामटी प ३४)

प्राप्ति—लाभ ।

प्राप्तिः गोचरा एमट्ठा । (आवचू १ पृ ४३१)

प्रासुक—प्रासुक ।

प्रासुक प्रगतासु निर्जीवम् । (दशहाटी प १८१)

प्रीति—प्रीति ।

प्रीति पेमं वा पेज्जं वा । (सूचू २ पृ ४०९)

---

१. देखें—परि० ३   २. देखें—परि० ३

प्रेक्षण—देखना ।

प्रेक्षण प्रेक्षा विलोकनं निरीक्षितमिति पर्याया. । (बृकटी पृ १७६)

फरुस—कठोर ।

फरुसा णिट्ठुरा अमनोज्ञा । (आचू पृ ३८०)

फलपिंडी—फलों का गुच्छा ।

फलपिंडि त्ति वा बूया, फलगोच्छो त्ति वा पुणो ।
फला फलिक त्ति वा बूया, फलमाल त्ति वा पुणो ॥

(अवि पृ ७१)

फासिय—स्पृष्ट, पालित ।

फासिय पालियं सोहियं तीरियं किट्टिय आराहियं आणाते अणुपालियं ।

(प्र ६/२४)

फासिए पालिए तीरिए किट्टिए अवट्ठिए आणाए आराहिए ।[1]

(आचूला १५/४६)

फासेइ—स्पर्श करता है ।

फासेइ पालेइ सोभेइ तीरेइ पूरेइ किट्टेइ अणुपालेइ आणाए आराहेइ ।[2] (भ २/५६)

फुडण—भंजन ।

फुडण भजण छेयण तच्छण विलुंचण ।[3] (प्र १/३५)

फुडित—स्फुटित ।

फुडित खंड भग्गं । (अवि पृ ५३)

फुलित—भग्न ।

फुलितं दालित दलियं छड्डित परिसाडित भग्गं त्ति । (अवि पृ ८०)

फुल्ल—विकस्वर ।

फुल्लं विकोच विकाशं विकसितं उन्मीलितं उन्मिषितं उन्निद्रं विजृम्भित हसितं उद्बुद्धं व्याकोशमित्यादि । (विभामहेटी १ पृ ५०६)

---

१. देखो—परि० २
२. देखो—परि० ३
३. देखो—परि० २

फुल्लं विकचं विकसितमुत्फुल्लबुद्धमुद्भिन्नम् । (विभाकोटी पृ ३९९)

फुसित—पालन करना ।

फुसिते वुज्झोसए त्ति वा एगट्ठं । (आचू पृ १७३)

बंभण—ब्राह्मण ।

बंभणो त्ति वियाणीया, तधा बंभरिसि त्ति वा ।
बंभवत्थो त्ति वा बूया, बंभण्णू पिअबंभणो ॥

दिजाति त्ति व जो बूया, दिजातीवसभो त्ति वा ।
द्विजातीपुंगवो व त्ति, दिजाईपवरो त्ति वा ॥

विप्पो व त्ति व जो बूया, तधा विप्परिसि त्ति वा ।
तधा विप्पगुणोवेओ, विप्पाणं पवरो त्ति वा ॥
जण्णो कतो त्ति वा बूया, जण्णकारि त्ति वा पुणो ।
जट्ठो पढमजण्णो त्ति जण्णमुंडो त्ति वा पुणो ॥
सोमो त्ति व जो बूया, सोमपाइ त्ति वा पुणो ।
सोमपा इत्ति वा बूया, सोमणाम च वाहरे ॥
अग्गिहोत्तं ति वा बूया, आहितग्गि त्ति वा पुणो ।
अग्गिहोत्तरती व त्ति, अग्गिहोत्तं हुतं ति वा ॥
वेदो त्ति व जो बूया, वेदज्झाइ त्ति वा पुणो ।
वेदाण पारगो व त्ति, चतुवेदो त्ति वा पुणो ॥[1] (अंवि पृ १०१)

बकुश—चितकबरा ।

बकुशः शबलः कर्बुर इति पर्यायाः । (प्रसाटी प २१०)

बद्ध—बद्ध ।

बद्धे ति वा रइयं इ वा गहियं इ वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ७७)

बद्धं गृहीतमुपात्तमित्यनर्थान्तरम् । (अनुद्वाचू पृ ६१)

बलाहक—बादल ।

बलाहको त्ति मेघो त्ति, तधा जलहरो त्ति वा । (अंवि पृ ९२)

बहु—अनेक ।

बहवे त्ति वा अणेगे त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २६१)

१. देखें—परि० २

बहुजनाचीर्ण—उचित ।

बहुजनाचीर्णमिति वा उचितमिति वा जीतमिति वा एकार्थम् ।[1]
(व्यभा १ टी प ७)

बाल—मूढ ।

बाल मंद मूढा । (उचू पृ १७२)

बाला अज्ञा सदसद्विवेकविकलाः । (सूटी १ प ६४)

बाल—नवीन ।

बाल. अभिनवः प्रत्यग्रः । (सूटी १ प १३३)

बालक—बालक ।

बालको दारको व त्ति, सिंगको पिल्लको त्ति वा ।
बच्छको तण्णको व त्ति, पोतको कलभो त्ति वा ।।[2] (अंवि पृ ६७)

बीय—आधार ।

बीय ति वा पइट्ठाणं ति वा मूलं ति वा एगट्ठा ।
(दशजिचू पृ २१६)

बीहणय—भयभीत ।

बीहणओ तासणओ पइभओ अइभउ त्ति एकार्थाः । (प्रटी प २०)

बुज्झेज्ज—बोधि को प्राप्त करो ।

बुज्झेज्ज त्ति वा परिजाणेज्ज त्ति वा एगट्ठ ।[3] (सूचू १ पृ २१)

बुद्ध—बुद्ध ।

बुद्धा महाभागा वीरा । (सू १/८/२४)

बुद्धः अवगततत्व· गीतार्थ. । (दशहाटी प १६०)

बुद्धि—बुद्धि ।

बुद्धी मती मेधा । (इभा ३६/गा ७)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३

बोंति—बोलते हैं।

बोंति ब्रुवंति कथयन्ति।[1] (निशीचू पृ १८)

बोंदि—शरीर।

बोंदि: तनु: शरीरमिति पर्याया:। (अनुहाटी पृ ६३)

भंग—प्रकार।

भंग प्रकारो भेद:। (अनुद्वामटी प ११०)

भंत—सम्मानवाची संबोधन।

भंतेत्ति भदंत भयान्त भवान्त।[2] (आवचू १ पृ ५६३)

भत्ति—भक्ति।

भक्ति: सेवा बहुमानो वा। (भटी प १६६)

भग्ग—अनाथ।

भग्गो त्ति दुग्गतो किस्सते भणत्तो अणाधो त्ति। (अंवि पृ २५०)

भग्ग—भग्न।

भग्गे भिण्णे विणट्ठे विपाडिते विक्खिल्ने विच्छुद्धे विच्छिल्ने णिलुंचिते विणासिते विसंधिते रूपाकडे भूमिते विज्झविते धंते। (अंवि पृ १६८) भग्गे छिण्णे भिण्णे विणासिते विपाडिते विक्खिल्ने विच्छुद्धे विच्छिल्ने विणट्ठे वंते सिथितालिते रूयकडे पूसिते विज्झविते।[3]

(अंवि पृ १७१)

भजना—विधि।

भजना सेवना परिभोग:। (निचूभा २ पृ ४७)

भजना सेवना विधि:। (विभाकोटी पृ ७७६)

भणिय—कथित।

भणियं ति वा वुत्तं ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ २७४)

---

१. देखें—परि० ३

२. देखें—परि० २

३. देखें—परि० २

मङ्गल—कल्याण ।

मङ्गलं ति वा कल्लाणं ति वा सोभणं ति वा एगट्ठा ।

(दशजिचू पृ २०१)

भमर—भंवरा ।

भमरा मधुकर तोङ्गा पतंग । (अंवि पृ २३७)

भय—भय ।

भयं दुक्खं असातं मरणं असंति अणत्थाणमिति एगट्ठा ।[1]

(आचू पृ २६)

भव—जन्म ।

भवो गति जन्मेति पर्यायाः । (नंदीटी पृ ३७)

भवण—घर ।

भवण-घर-सरण-लेण ।[2] (प्र १/१४)

भवति—होता है ।

भवति हवइ त्ति वा एगट्ठा ।[3] (दशजिचू पृ ३२६)

भवन—होना ।

भवनं भूति भावः । (अनुद्वाचू पृ २६)

भवन भावः पर्यायः । (निपीचू पृ ३३)

भवनं वर्तनं करणं । (उचू पृ२४६)

भविय—भविष्य में होने वाला ।

भविय त्ति भव्यो भावीत्यनर्थान्तरम् । (व्यभा २ टी प ४)

भव्य—योग्य ।

भव्यो योग्यो दलं पात्रमिति पर्यायाः । (अनुद्वाहाटी पृ १५)

भाग—विभाग ।

भागा अविभागा पलिच्छेदा इति चानर्थान्तरम् ।

(नकप्र ५ टी पृ ११७)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३

भाव—अभिप्राय ।

भावः अभिप्रायः प्रार्थना । (दसहाटी प ६७)

भाव—भाव ।

भावः अधिगम उपयोग इत्यनर्थान्तरम् । (निचूभा पृ २७६)

भासा—व्याख्या, कथन ।

भासा विभासा अर्थव्याख्या । (निपीचू पृ ३१)

भिक्खु—भिक्षु ।

तिण्णे तासी दविए वती य खंते य दंत विरते य ।
मुणि तावत पण्णवगुज्जु भिक्खु बुद्धे जति विदू य ॥
पव्वयिये अणगारे पासंडी चरय बंभणे चेव ।
परिव्वाए समणे निग्गंथे संजते मुत्ते ॥
साहू लूहे य तधा तीरट्ठी होति चेव णातव्वे ।
णामाणि एवमादीणि होंति तवसंजमरताणं ॥

(दशनिगा २४४-४६)

भिक्खु त्ति वा जति त्ति वा खमग त्ति वा तविस्स त्ति वा भवंते त्ति वा एगट्ठा ।[1] (निचूभा ४ पृ २७४)

भिण्ण—भिन्न, व्यक्त ।

भिण्ण ति वा उज्झियं ति वा एगट्ठा । (निचूभा ४ पृ २३६)

भीम—भयानक ।

भीमा भयानका भयभैरवाः । (उचू पृ २३७)

भीय—भयभीत ।

भीया तस्था तसिया उब्विग्गा ।[2] (विपा १/१/६५)

भूमि—अवस्था विशेष ।

भूमिरिति स्थानमिति अवस्थारूपकाल इति मयोऽपि शब्दा एकार्थाः ।[3] (व्यभा १० टी प १००)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

भेउरधम्म—अशाश्वत, नष्ट होने वाला ।

भेउरधम्मं विद्धंसण-धम्मं अधुवं अणितियं असासयं चयावचइयं विपरिणामधम्मं । (आ ५/२९)

भेद—विकल्प ।

भेदा विकल्पा अंशा इत्यनर्थान्तरम् । (नंदीटी पृ ५६)

भेय—विकल्प ।

भेउ त्ति वा विकप्पो त्ति वा पगारो त्ति वा एगट्ठा ।

(आवचू १ पृ १०)

भेसण—डराना ।

भेसण-तज्जण-तालणाते ।[1] (पू ६/११)

भोज्ज—भोज, जीमनवार ।

भोज्जं ति वा संखडि त्ति वा एगट्ठं ।[2] (बृकटी पृ ८९०)

भोयण—भोजन ।

भोयण जेमणं व त्ति आहारो त्ति व जो वदे । (अंवि पृ ६४)

मइ—मति ।

मइ सण्णा णाणं एगट्ठा । (आचू पृ ६)

मइ त्ति वा मुत्ति (सइ) त्ति वा सण्ण त्ति वा आभिणिबोहियणाणं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २९)

मंद—मन्द ।

मन्दा जडा अशक्ता । (सूटी १ प ८१)

मंदर—मेरुपर्वत ।

मंदर मेरु मणोरम सुदंसण सयंपभे य गिरिराया ।
रयणुच्चयपियदंसण मज्झे लोगस्स नाभी य ॥

अत्थे अ सूरियावत्ते, सूरियावरणे त्ति य ।
उत्तरे य दिसाई य, वडेंसे इअ सोलसे ॥ (सम १६/३)

---

1. देखें—परि० २   2. देखें—परि० २

मंदर मेरु मणोरम सुदंसण सयंपभे य गिरिराया ।
रयणोच्चए सिलोच्चए मज्झे लोगस्स नाभी य ॥
अच्छे य सूरियावत्ते सूरियावरणे त्ति य ।
उत्तमे य दिसादी य, वडेंसे ति य सोलस ॥ (जंबू ४/२६०)

मंदरंसि मेरुंसि मणोरमंसि सुदंसणंसि सयंपभंसि गिरिरायंसि रयणुच्चयंसि सिलुच्चयंसि लोयमज्झंसि लोयणाभिंसि अच्छंसि सूरियावत्तंसि सूरियावरणंसि उत्तमंसि दिसादिंसि अवतंसंसि धरणिखीलंसि धरणिसिंगंसि पव्वतिंदंसि पव्वयरायंसि ।[1] (सूर्य ५/१)

मंदरो मेरुः सुदर्शनः सुरगिरिः । (सूटी १ पृ १४७)

मग्गण—एषणा ।

मग्गणं ति वा एसणं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ १११)

मग्गण—पृथक्करण ।

मग्गण ति वा पिथकरणं ति वा विवेयणं ति वा विजओ त्ति वा, एगट्ठा । (दशजिचू पृ २२६)

मग्गत—पीछे ।

मग्गतो त्ति वा पिट्ठउ ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ ५६)

मज्जाया—मर्यादा ।

मज्जाय त्ति वा ओहि त्ति वा मेर त्ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ ३७)

मज्झ—मध्य ।

मज्झो त्ति मज्झिमो त्ति य, मज्झत्थो मज्झदेसकं व त्ति ।
मज्झण्हो मज्झट्ठिय, तम त्ति मज्झण्हमेतेहिं ॥ (अंवि पृ २४७)

मज्झि मज्झंतिको मज्झो मज्झिमो । (अंवि पृ ७७)

मणसंकप्प—अध्यवसाय ।

मणसंकप्पो त्ति वा अज्झवसाणं ति वा चित्तं ति वा एगट्ठं । (निचूभा ३ पृ ७०)

---

1. देखें—परि० २

मणाम—सुन्दर ।

मणामो त्ति व जो ब्रूया, छलिको (छंदको) त्ति व ओ वदे ।
पियदसणो त्ति वा ब्रूया, तधा भावस्सिओ त्ति वा ॥
(अंवि पृ १२०)

मणुण्ण—मनोज्ञ ।

मणुण्णा मणहरा निव्वुइकरा । (जीवटी प ४०१)

मतिसहित—मति-सहित ।

मतिसहित ति वा मतिअणुगयं ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ ६)

मधुर—मधुर ।

मधुरा य मणोहरा य इट्ठा य णिव्वुतिकरा य ।
चित्ता आणदकरा य ।……। (अवि पृ २५६)

मनन—पर्यालोचन ।

मनन चिन्तन पर्यालोचनम् । (सूटी १ पृ २६४)

मन्नंति—जानते हैं ।

मन्नति वा जाणति वा एगट्ठा ।[1] (दशजिचू पृ २३३)

मयूर—मोर ।

मयूरो कारडओ पिलओ सिरिकंठो । (अंवि पृ ६२)

मरण—मृत्यु ।

मरणं मच्चू वा मारो । (आचू पृ १०८)

मल—पाप ।

मलं ति वा पाव ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २६४)

महत्थ—महान् ।

महत्थ महग्घ महरिह । (ज्ञा १/१/११६)

महब्भय—भयंकर ।

महब्भय भयंकर पतिभयं उत्तासणगं । (प्र ३/७)

---

१. देखें—परि० ३

महव्वय—बड़ी उम्र वाला, बूढा ।

महव्वयो त्ति वा बूया, तधा जुण्णवयो त्ति वा ।
तधा तीतवयो व त्ति, तधा गतवयो त्ति वा ॥
थेरो जुण्णो त्ति वा बूया, वुड्ढो परिणतो त्ति वा ।
जरातुरो त्ति वा बूया, खीणवंसो त्ति जो वदे ॥
वत्तुस्सयो त्ति वा बूया, णिठवत्त त्ति व जो वदे ।
उववुत्तं ति वा बूया, झीणं वा णिट्ठितं ति वा ॥
वातं ति मलित व त्ति, तधा परिमलितं ति वा ।
मिलाणं परिसुक्क ति, तधा परिसडितं ति वा ॥[1]

(अंवि पृ १००)

महाकम्मतर—महाक्रिया ।

महाकम्मतराए महाकिरियतराए महासवतराए । (भ ५/१३३)

महापउम—महापद्म (नृप) ।

महापउमे देवसेणे विमलवाहणे ।[2] (स्था ६/६२)

महापण्ण—महाप्रज्ञ ।

महापण्णे प्रधानप्रज्ञ: विस्तीर्णप्रज्ञो वा । (सूचू १ पृ २०४)

महामुणि—महामुनि ।

महामुणी त्ति वा महानाणी त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३४८)

महित—पूजित ।

महितो पूजितो नमंसितो एगट्ठा । (आवचू १ पृ ८६)

माण—मान, अभिमान ।

माणे मदे दप्पे थंभे गव्वे अत्तुक्कोसे परपरिवाए उक्कोसे अवक्कोसे उण्णते उण्णामे दुण्णामे । (भ १२/१०४)

मान: स्तम्भो गर्व उत्सुको अहंकारो दर्प: स्मयो मत्सर ईर्ष्या ।[3]
(अनुद्वाहाटी पृ ६२-६३)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

माण—माप।

माण ति वा परिच्छेदो त्ति वा गहणपगारो त्ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ ३७७)

मातंग—हाथी।

मातगो त्ति मतिंगो त्ति गयो त्ति। (अंवि पृ ६२)

मातगे दुपाणे कुंजरे। (जीव ३/११८)

माया—माया।

माया उवही णियडी वलए गहणे णूमे कक्के कुरुए जिम्हे किब्बिसे आयरणया गूहणया वंचणया पलिउंचणया सातिजोगे। (भ १२/१०५)

मायाप्रणिधिरुपधिर्निकृति वंचना दम्भ. कूटमभिसंधानं साठ्य-मनार्जवम्।[1] (अनुद्वाहाटी पृ ६३)

माहण—श्रमण, माहन।

माहणे त्ति वा समणे त्ति वा भिक्खु त्ति वा णिग्गथे त्ति वा। (सू १/१६/१)

मिच्छा—मिथ्या।

मिच्छ त्ति वा वितहं ति वा असच्चं ति वा असट्ठियं ति वा अकरणीयं ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ ३४६)

मिणति—मापता है।

मिणति त्ति वा परिच्छिंदति त्ति वा गिण्हाति त्ति वा एगट्ठा।[2] (आवचू १ पृ ३७७)

मित—परिमित।

मितं परिमित स्तोकम्। (उचूपृ २४६)

मित्त—मित्र, स्वजन।

मित्त-नाइ-नियग-सयण संबंधि-परियणा। (आ १/२/१२)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० ३

मित्ते ति वा वयंसे ति वा सही ति वा सुहिए ति वा संगतिए ति वा।
(जीव ३/६१३)

मित्ता इ वा, वयंसा इ वा, णायए इ वा, णाडिए इ वा, सहाए इ वा, सही इ वा, संगइए इ वा .[1] (जंबू २/२९)

मित्ति—मैत्री।

मित्ति सम्मोइ संपीति। (अंवि पृ ११२)

मिथ्या—असत्य।

मिथ्या वितथमनृतमिति पर्यायाः। (स्थाटी प ४७८)

मिय—परिमित।

मिय माइय त्ति एकार्थौ। (प्रटी प ८१)

मुंडावित्तए—मुंडित करने के लिए।

मुंडावित्तए सिक्खावित्तए उवट्ठावित्तए। (स्था २/१६८)

मुक्क—मुक्त।

मुक्को विरते त्ति एगट्ठा। (आचू पृ ९४)

मुक्त—छोड़ा हुआ।

मुक्त त्यक्तं क्षिप्तं उज्झितं निरस्तमित्यनर्थान्तरम्।
(अनुद्वाचू पृ ६१)

मुकुल—अर्धविकसित पुष्प।

मुकुलं कुड्मलं कोरकं जालकं कलिकावृन्तमित्यादिः।
(विभामहेटी १ पृ ५०६)

मुकुलं कुड्मलं पोण्डाप्रविबुद्धम्। (विभाकोटी पृ ३१९)

मुख—मुख।

मुखं वक्त्रं वयणं च एगट्ठं। (निचूभा २ पृ २८५)

मुखर—वाचाल।

मुखरा वाचाला असम्बद्धप्रलापिनः। (जंबूटी प २६४)

---

१. देखें—परि० २

मुच्छा—मूर्च्छा ।

मुच्छा य गिद्धि य दो वि एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३४५-४६)

मुच्छिय—आसक्त ।

मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे त्ति एकार्थाः ।[1]
(विपाटी प ४१)

मुणि—मुनि ।

मुणि त्ति वा णाणि त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २७६]

मुणि त्ति वा समणो त्ति वा माहणो त्ति वा । (आचू पृ १०६)

मुणित—ज्ञात ।

मुणित गमितमित्येकोऽर्थः । (सूचू २ पृ ३३५)

मुदित—प्रसन्न ।

मुदितो त्ति व जो बूया, तधा पमुदितो त्ति वा ।
हट्ठो तुट्ठो पहट्ठो, उदत्तो सुमणो त्ति वा ।।
(अवि पृ १२१)

मुदिता—प्रीति ।

मुदिते वा पमोद वा हास पीतिं । (अवि पृ १२१)

मुद्ध—मुख्य ।

मुद्ध पर प्रधानमाद्यम् । (निचूभा २ पृ ४४६)

मुनि—मुनि ।

मुनि. संयत· इति पर्यायौ । (दशहाटी प १८४)

मुम्मुर—अग्नि की अवस्था विशेष ।

मुम्मुरे ति वा अच्ची इ वा जाले इ वा अलाए इ वा सुद्धागणी इ वा ।[2] [शाटी प २११]

मूढ—मूढ ।

मूढो त्ति वा बालो त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ १५६)

---

१. देखें—परि० २ २. देखें—परि० २

मूर्च्छित—आसक्त ।

मूर्च्छिता मूढाः गृद्धिमन्तः । (उशाटी प ३३७)

मूर्च्छितो मूढो गतविवेकचैतन्यः । (ज्ञाटी प ६१]

मूल—आदिबिन्दु ।

मूलमादिरित्यनर्थान्तरम् । (उचू पृ १०४)

मूल—आधार ।

मूलं प्रतिष्ठा आधारो य एगट्ठा । (आचू पृ ४४)

मूलं ति वा प्रतिष्ठानं ति वा हेतु त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ ११०)

मूल—निमित्त ।

मूलमिति निमित्तं कारणं प्रत्यय इति पर्यायाः । (आटी पृ ९८)

मूलच्छेज्ज—मूलोच्छेद ।

मूलच्छेज्जं ति वा मूलगुणपडिवाओ त्ति वा एगट्ठा ।

(आवचू १ पृ १०२)

मेढी—आधार ।

मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खू ।[1] (उपा १/१३)

मेधावी—मेधावी ।

मेधावी प्रज्ञावान् मर्यादाव्यवस्थितो वा । (सूटी १ प ४६)

मेरा—मर्यादा ।

मेरा मर्यादा सामाचारी । (व्यभा ३ टी प ५२)

मेलना—मिलाना ।

मेलना योजना घटनेत्येकोऽर्थः । (आवमटी प ३५०)

मैथुनिकी—वेश्या ।

मैथुनिक्या मैथुनाजीवया वेश्यया ।

मैथुनिक्या मैथुनाजीवया पणाङ्गनया । (व्यभा ४/१ टी प ६७)

---

१. देखें—परि० २

मोत्ति—मुक्ति ।

मोत्ती णिव्वाणं निव्वाणं च एगट्ठियाणि । (दसचू प ६१)

मोहणिज्जकम्म—मोहनीयकर्म ।

मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स बावन्नं नामधेज्जा पण्णत्ता-कोहे, कोवे, रोसे, दोसे, अखमा, संजलणे, कलहे, चंडिक्के, भंडणे, विवाए, माणे, मदे, दप्पे, थंभे, अत्तुक्कोसे, गव्वे, परपरिवाए, उक्कोसे, अवक्कोसे, उन्नए, उन्नामे, माया, उवही, नियडी, वलये, गहणे, णूमे, कक्के, कुरुए, दंभे, कूडे, जिम्हे, किब्बिसिए, अणायरणया, गूहणया, वंचणया, पलि-कुंचणया, सातिजोगे, लोभे, इच्छा, मुच्छा, कंखा, गेही, तण्हा, भिज्जा, अभिज्जा, कामासा, भोगासा, जीवियासा, मरणासा, नंदी, रागे ।[1] (सम ५२)

यजन—यज्ञ ।

यजनं इज्या यागः । (अनुद्वामटी प २६)

यत—संयत ।

यत. प्रयतः प्रयत्नवान् । (सूटी १ प २०६)

यत प्रयतः सत्संयमवान् । (सूटी १ प २६६)

युवा—युवक ।

युवा यौवनस्थः प्राप्तवया । (अनुद्वामटी प १६२)

योग—अवसर ।

योग प्रस्तावोऽवसरः । (विभाकोटी पृ ५)

योग—सामर्थ्य, चेष्टा ।

योगो विरिय थामो, उच्छाह परक्कमो तहा चेट्ठा ।
सत्ती सामत्थं ति य, योगस्स हवंति पज्जाया ॥ (आवचू १ पृ ६०६)

योगो व्यापारः कर्म क्रियेत्यनर्थान्तरम् । (आवहाटी १ पृ १०)

रज्ज—राज्य ।

रज्जं देसो त्ति य जणपदो ।[2] (अंवि पृ २४१)

---

१. देखें—परि० २   २. देखें—परि० २

रज्जति—आसक्त होता है ।

रज्जति वा पच्चति वा बज्झति (बज्झति) वा एगट्ठा ।[1]

(आचू पृ १७६)

रति—मैथुन ।

रतिः रतं निधुवनम् । (प्रटी प ६७)

रमंति—क्रीड़ा करते हैं ।

रमंति ललंति कीलंति किट्टंति मोहेंति । (राज १८५)

रमंति ललंति कीलंति ।[2] (जीवटी प ३५१)

रयणी—रात्री ।

रयणि त्ति सव्वरि त्ति य णिस त्ति खणता णिवियरत्ति ।

(अंवि पृ २४५)

रयस्—वेग ।

रयः वेगः चेष्टाऽनुभवः फलमित्यनर्थान्तरम् ।[3]

(आवहाटी १ पृ २९३)

रस—रस ।

रसो जूसो त्ति वा बूया खलको पाणियं ति वा । (अंवि पृ ६४)

रसिय—कथित ।

रसिय-भणिय कूविय-उक्कूइय । (प्र १/२७)

रहस्स—ह्रस्व, अल्प, छोटा ।

रहस्स मडहक व त्ति, संखित्तं छुडितं ति वा ।
रुद्ध ति सण्णिरुद्ध ति, संपीलितं ण पीलितं ॥
संपिंडितं पेंडितं ति, सम्मुद्धं सन्निकासियं ।
अप्पं थोवं ति किंचि त्ति, अतिथोवं ति वा पुणो ॥
आकुंचितं सहितं ति, तधा संवेल्लितं ति वा ।
उस्सारितं ति णिम्मट्ठं अवमट्ठाऽपमज्जियं ॥[4] (अंवि पृ ११५)

---

1. देखें—परि० ३
2. देखें—परि० ३
3. देखें—परि० २
4. देखें—परि० २

राग—अनुराग ।

रागो त्ति वा सगो त्ति वा एगट्ठा । (निचूभा ३ पृ १६०)

इच्छा मूर्च्छा कामः स्नेहो गार्ध्यं ममत्वमभिनन्द. अभिलाषो इत्यनेकानि रागपर्यायवचनानि ।[1] (उशाटी प ६३०)

राशि—राशिगणित ।

राशिर्गच्छ इत्यनर्थान्तरम् । (व्यभा २ टी प ६५)

राहु—राहु (देव विशेष) ।

सिंघाडए जडिलए खतए खरए दद्दुरे मगरे मच्छे कच्छभे कण्हसप्पे ।[2] (भ १२/१२३)

रिउ—ऋतु, ऋतुमास ।

रिउ त्ति वा कम्ममासो वा एगट्ठं । (निचूभा ४ पृ २७८)

रीत—पद्धति ।

रीत रीति स्वभाव· । (भटी प २१२)

रुइय—रुचिकर ।

रुइयं ति वा सेयं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू ३२६)

रुट्ठ—रुष्ट, कुपित ।

रुट्ठे कुविए चंडिक्किए । (भटी प ३२२)

रुट्ठा परिकुविया समरवहिया अणुवसंता । (भ ७/१८१)

रुण्ण—रोदन ।

रुण्णे वा कंदिते वा कूजिते वा । (अवि पृ १६२)

रुण्ण-रडिय-कंदिय-निग्घुट्ठरसिय-कलुणविलवियाइं ।[3] (प्र १०/१४)

रुद्धापित—रोका हुआ ।

रुद्धापिते य संतापिते य संतप्पमाणे य । (अवि पृ २५४)

रुसिय—रुष्ट होना ।

रुसिय हीलिय निंदिय खिंसिय । (प्र १०/१४)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

३. देखें—परि० २

रोयमाणी—रुदन करती हुई ।

रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी ।[1]

(ज्ञा १/१/१०६)

लंचा—रिश्वत ।

लंचा उत्कोच इत्यनर्थान्तरम् । (व्यभा १ टी प ८)

लघुक—प्रायश्चित्त का एक प्रकार ।

लघुकमिति वा उद्घातितमिति वा शुक्लमिति वा लघुकस्य नामानि ।[2]

(बृकटी पृ ११)

लज्जामो—दया करते हैं ।

लज्जामो त्ति वा दयामो त्ति वा एगट्ठा ।[3] (आचू पृ २५६)

लज्जिय—लज्जित ।

लज्जिया विलिया वेड्डा । (जंबू २/६०)

लज्जिया विलिया विड्डा । (निर ८३)

लता—श्रेणि ।

लता श्रेणि. परिपाटी चेत्येकार्थाः ।[4] (प्रसाटी प ४३५)

लद्ध—प्राप्त ।

लद्धाओ पत्ताओ अभिसमण्णागताओ । (स्था ३/३६६)

लद्धट्ठ—लब्धार्थ ।

लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा ।[5]

(भ २/९४)

लद्धमईय—मतिमान् ।

लद्धमईए लद्धसुइए लद्धसण्णे ।[6] (ज्ञा १७/१२)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २
६. देखें—परि० २

लब्भति—प्राप्त करता है।

लब्भति त्ति वा दीसति त्ति वा पभायति त्ति वा एगट्ठा।[1]
(आवचू १ पृ १०३)

लय—लीनता।

लयः लीनता तिरोभाव इत्यनर्थान्तरम्। (विभामहेटी २ पृ १४०)

लयण—घर।

लयणं ति वा गिहं ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ २६०)

लाघविय—अल्पेच्छा।

लाघविय अप्पिच्छा अमुच्छा अगेही अपडिबद्धया। (भ १/४१७)

लाभ—लाभ, प्राप्ति।

लाभे आगमे य उवगमण उवगमो वा वि। (अंवि पृ २५५)

लाभः प्राप्तिः परिच्छित्तिरित्येकोऽर्थः। (आवमटी प ६४)

लिङ्ग—चिह्न।

लिगं चिंध निमित्तं, कारणमेगट्ठियाइं एयाइं। (जीतभा १७)

लिंगिय—लिंग—हेतु से निष्पन्न।

लिंगियं ति वा चिंधणिप्फण्णं ति वा करणनिप्फण्णं ति वा परनिमित्त-णिप्फण्णं ति वा एगट्ठं। (आवचू १ पृ ७)

लुटण—लुटना।

लुटण लोट्टण पलोट्टण उट्ठाणं चेव एगट्ठा। (व्यभा ३ टी प १२४)

लूसग—हिंसक।

लूसगा भंजगा विहारगा एगट्ठा। (आचू पृ २४२)

लोटन—लुटना।

लोटनं लुठनं प्रलोटनमवधावनमिति चैकार्थः। (व्यभा ३ टी प १२४)

---

१. देखें—परि० ३

लोभ—लोभ ।

लोभे इच्छा मुच्छा कंखा गेही तण्हा भिज्झा अभिज्झा आसासणया पत्थणया लालप्पणया कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा नंदिरागे ।
(भ १२/१०६)

लोभो रागो गार्ध्यमिच्छा मूर्च्छाऽभिलाषो संग: कांक्षा स्नेह: ।[1]
(अनुद्वाहाटी पृ ६३)

लोमसिका—ककड़ी ।

तधा लोमसिका व त्ति, अक्कोल त्ति व जो वदे ।
तधा कक्कुडिगा व त्ति, तधा संगलिक त्ति वा ।।[2] (अंवि पृ ७१)

लोमहरिसजणण—रोमाञ्चक ।

लोमहरिसजणणे भीमे उत्तासणए । (भ ६/८५)

लोलुग—प्रगाढ ।

लोलुगं भृशं गाढं प्रगाढं निरन्तरम् ।[3] (सूचू १ पृ १३०)

लोलुय—लोलुप ।

लोलुया मुच्छिया गढिया गिद्धा अज्झोववण्णा । (उपा ८/२०)

वइर—वज्र ।

वइरं वज्जं ति एगट्ठं । (व्यभा १०/३)

वंक—वक्र, कुटिल ।

वंक वंकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए ।
पलिउंचग ओवहिए । (उ ३४/२५)

वंझा—वंध्या ।

वंझा अवियाउरी वाणुकोप्परमाया ।[4] (ज्ञा १/२/८)

वंद—समूह ।

वंदो संघो त्ति गणो महाजणो वाउलं निकायो त्ति । (अंवि पृ २४०)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

वंदण—वंदन।

वदण-माणण-पूयणासु। (अंवि पृ १४६)

वदण नमसण पूयण। (नंदीचू पृ ४८)

वंदणग—वदनकर्म।

वदणगंति वा चितिकंमति वा कितिकंमंति वा पूजाकंमंति वा विणयकंमंति वा एगट्ठिताणि।[1] (आवचू २ पृ १४)

वंदित—वदित।

वदिते पूजिते सक्कते संथुते अच्चिते पणमिते अभिवादिते।[2] (अवि पृ २६८)

वंश—वंश परम्परा।

वंश प्रवाह आवलिका इत्येकार्थाः। (जंबूटी प २५८)

वक्क—वाणी।

वक्क वयण च गिरा, सरस्सती भारती य गो वाणी।
भासा पण्णवणी देसणी, य वईजोग जोगे य॥[3] (दशनि १७२)

वक्कमंति—च्युत होते है।

वक्कमति विउक्कमति चयति।[4] (भ २/११३)

वक्र—वक्र।

वक्रः कुटिलो निष्कारणप्रतिसेवी। (व्यभा १ टी प १४)

वक्षस्कार—सीमा-पर्वत।

वक्षस्कारपर्वतो गजदन्तापरपर्यायः। (जंबूटी प ३१४)

वगडा—वाड, परिक्षेप।

वगडा पलिहृत वतिपरिक्खेव इत्यनर्थान्तरम्। (बृकटी पृ २०२)

वचन—वचन।

वचन वागित्येकार्थम्। (बृकटी पृ ६०)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३

वच्छग—वत्सक ।

वच्छके पुत्तके चेति पोतके पिल्लके तुधा ।
सिगके तण्णके य त्ति (पंवि पृ १४२)

वज्ज—कर्म ।

वज्जं ति वा पावं ति वा ओज्जं ति वा । (सूचू १ पृ १२०)

वज्ज—वैर ।

वज्जं ति वा वेरं ति वा परं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २२५)

वड—विभाग ।

वडो वंटगो विभागो एगट्ठं । (निचूभा ४ पृ २४४)

वडो वंडगो विभागो एगट्ठं । (आवचू २ पृ २३४)

वडभिका—वामन, ह्रस्व ।

वडभिका मडहकोष्ठा वक्राधःकाया । (जंबूटी प १९१)

वण्णित—वर्णित ।

वण्णिताइं कित्तिताइं बुइयाइं पसत्थाइं अब्भणुण्णताइं । (स्था ५/३५)

वण्णिय—वर्णित ।

वण्णियं ति वा देसियं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २२२)

वन्दते—वन्दन करता है ।

वंदते स्तौति नमस्यति ।[1] (सूर्यटी प ६)

वध—वध ।

वधे तालणे मारणे । (आचू पृ १५२)

वध बंधण तालणंकण निवायण । (प्र १/३०)

वध बंधण घायण । (प्र २/२०)

वध बंधण विघाय दुम्भिवाय ।[2] (प्र ४/१)

1. देखें—परि० २

2. देखें—परि० २

वमण—वमन ।

वमणं ति वा विरेयणं ति वा विगिंचणं ति वा विसोहणं ति वा एगट्ठा । (आचू पृ १२६)

वमेंति—वमन करते हैं ।

वमेति परिच्चयंति छड्डेंति ।[1] (नंदीचू पृ ५०)

वयंति—जाते हैं ।

वयंति त्ति वा गच्छंति त्ति वा एगट्ठा ।[2] (दशजिचू पृ ३२४)

वयत्थ—वयस्थ ।

वयत्थो पवत्तो उदग्गो पोढो । (अंवि पृ ६८)

वर—श्रेष्ठ ।

वरा प्रधाना श्रेष्ठा । (दश्रुचू प ७६)

वर्द्धन—व्याख्या ।

वर्द्धनं वृद्धि व्याख्या । (अनुद्वाचू पृ ६०)

ववगत—व्यपगत ।

ववगतं वत्तं विप्पजढं । (अनुद्वाचू पृ ६)

ववगय—व्यपगत ।

ववगय-चुय-चइय-चत्त । (भ ७/२५)

ववगय-चुय-चाविय । (अनुद्वा ३७)

ववण— वपन ।

ववणं ति रोवणं ति य पकिरण परिसाडणा एगट्ठं । (व्यभा १/४)

---

१. देखें—परि० ३

२. देखें—परि० ३

ववसाय—व्यवसाय, अवबोध ।

ववसाउ त्ति वा निच्छअत्थपडिवत्ति त्ति वा अवबोहो त्ति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ १०)

ववसाओ बुद्धिअज्झवसाओ एगट्ठं । (आचू पृ २७६)

ववहार—व्यवहार ।

सुत्ते अत्थे जीए कप्पे मग्गे तहेव नाए य ।[1] (व्यभा १/७)

ववहार—प्रायश्चित्त ।

ववहारो आलोयण, सोही पच्छित्तमेव एगट्ठा । (व्यभा ४/१/६०)

ववहारो आरोवण, सोही पच्छित्तमेयमेगट्ठं । (जीतभा १८४)

वसित्तु—पालन करके ।

वसित्तु वा पालित्तु वा एगट्ठा । (आचू पृ २०६)

वसुम—वसुमान् ।

वसुमं ति व वसिमं ति व वसति व वुसिमं व । (निभा ५४२०)

वस्तु—वस्तु ।

वस्तु द्रव्यं दलिकमित्यनर्थान्तरम् । (बृकटी पृ ३००)

वहित—व्यथित ।

वहितं ति वा चलियं ति वा (खोभियं ति वा) एगट्ठा ।
(आचू पृ १७७)

वाघात—व्याघात ।

वाघातो विणासो य एगट्ठा । (व्यभा १०/३२२)

वाट—वाड, कांटों की परिधि ।

वाटेन वाटकेन वृत्या । (प्रटी प २२)

वाम—प्रतिकूल ।

उत्तर ति व वामं ति, वामावट्टो त्ति वा पुणो ।
वामसीलो त्ति वा बूया, वामायारो त्ति वा पुणो ।।

---

१. देखें—परि० २

वामपक्खं ति वा बूया, वामदेसं ति वा पुणो ।
वामभागं ति वा बूया, वामतो त्ति व जो वदे ॥
अपवामं ति वा बूया, अपसव्वं ति वा वदे ।
अवसव्वं ति वा बूया, अप्पसव्वं ति वा पुणो ॥[1] (अंवि पृ ७६)

वारण—निवारण ।

वारण निवारणं प्रवारणं । (उचू पृ ५६)

वावड—व्यापृत ।

वावडो व्यापृतः नियुक्तः । (निचूभा ३ पृ १२०)

वावण्ण—विनष्ट ।

वावण्ण विणट्ठं कुहितं पूति । (निचूभा २ पृ ६३)

वाहिय—रोगी ।

वाहियाण य गिलाणाण य रोगियाण य । (ज्ञा १/१३/२२)

विउस्सग—व्युत्सर्ग ।

विउस्सग्गो त्ति वा विवेगो त्ति वा अधिकिरण ति वा छड्डुण ति वा वोसिरणं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३७)

विकल्प—विकल्प ।

विकल्पो व्याहृतिर्भजना । (विभामहेटी १ पृ ७५७)

विकल्प—अंश ।

विकल्पा अंशा इत्यनर्थान्तरम् । (आवहाटी १ पृ ७)

विकल्पित—विकल्पित

विकल्पित रचितं स्वेच्छाकल्पितम् । (व्यभा ३ टी प ११३)

विकूणित—रुदित ।

विकूणिते कूविते य, रुण्ण विक्कंदिते तधा । (अंवि पृ १५५)

विकिण्ण—विकीर्ण ।

तधा विकिण्ण णिकिण्णे विप्पकिण्णे विणासिते ।
अवकिण्णे । (अंवि पृ १०८)

---

१. देखें—परि० २

विक्षेप—व्याघात ।

विक्षेपो व्याघातः पलिमन्थः । (व्यभा ८ टी प ३)

विगत—नष्ट ।

विगतं विनष्टमतीतम् । (विभामहेटी २ पृ १२)

विगिंचण—विवेक ।

विगिंचणं ति वा विवेगो त्ति वा जवण त्ति वा एगट्ठा ।

(आचू पृ १२७)

विग्घ—विघ्न ।

विग्घो वक्खोडो बंधणं ति वा एगट्ठा । (आचू पृ ४१)

विग्घित—बाधित ।

विग्घित त्ति विप्पित त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ २४२)

विचल—अध्रुव ।

विचले अधुवे व त्ति, ओधुते संधुते त्ति वा ।
अधुवे त्ति गए व त्ति, आधुते त्ति धुते त्ति वा ॥ (अंवि पृ ८०)

विचिकित्सा—संशय ।

विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः संशयज्ञानम् । (सूटी १ प २६१)

विचीयते—निर्णय किया जाता है ।

विचीयते निर्णीयते पर्यालोच्यते । (स्याटी प १८३)

विच्छिण्णतर—विस्तृत ।

विच्छिण्णतराए चेव विपुलतराए चेव महंततराए । (जंबू ४/१०२)

विच्छिन्न—विस्तीर्ण ।

विच्छिन्न ति वा अणंतं ति वा विउलं ति वा एगट्ठा ।

(दशजिचू पृ २१५-१६)

विजय—पराभव ।

विजयः अभिभवः पराभवः पराजय इति पर्यायाः । (आटी प ८३)

विजय—विचय, चिंतन ।

विजयो विचारणा मग्गणा एगट्ठा । (आनि ४३)

विज्ञापना—परिभोग ।

विज्ञापना परिभोग एकार्थिकानि । (सूचू १ पृ ६७)

विणय—विनय ।

विणय पणामो य एगट्ठा । (आवनि १०६२)

विणिच्छय—

विणिच्छओ त्ति वा अवितहभावो त्ति वा एगट्ठं । (दशजिचू पृ २८७)

विण्णाण—विज्ञान, अभिप्राय ।

विण्णाण वेयणा भावो अभिप्पातो त्ति तुल्लं । (दशअचू पृ ७)

वितर्क—वितर्क ।

वितर्क मीमांसेत्यनर्थान्तरम् ।[1] (सूचू १ पृ ३६)

वितिगिच्छा—विचिकित्सा, संदेह ।

वितिगिच्छा विमर्षः मतिविप्लुति संदेहः । (निचूभा ३ पृ ६८)

वित्थिन्न—विस्तृत ।

वित्थिन्न वित्थतं व त्ति, वत्थितं ति व जो वदे ।
विततं वियाणकं व त्ति, तधा पत्थरियं ति वा ।। (अवि पृ ११७)

विदित—ज्ञात ।

विदित आगमित उपलब्धं । (दश्रुचू पृ १७)

विदित मुणितमेकोऽर्थः । (आवचू १ पृ ८६)

विदु—ज्ञानी ।

विदु त्ति वा नाणि त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३३४)

विद्वस्—विद्वान् ।

विद्वान् पण्डितो विरत. । (सूटी १ प १६१)

विद्वान् पण्डितो धर्मदेशनाभिज्ञः । (सूटी १ प २४६)

---

१. देखें—परि० २

विधि—प्रकार ।

विधिर्विधानं भेदः प्रकार इत्यनर्थान्तरम् । (बृकटी पृ १६६)

विधिर्विधानं प्रकारः । (सूचू १ पृ ४२)

विनयन्ति—प्रेरित करते हैं ।

विनयन्ति प्रेरयन्ति अतिवाहयन्ति ।[1] (प्रटी प ६४)

विन्नत्तिकारण—ज्ञान का हेतुभूत ।

विन्नत्तिकारणं ति वा जाणितव्वगसामत्थजुत्तं ति वा विन्नत्तिहेउभूयं ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ ७३)

विपरिणामइत्ता—विपरिणत कर ।

विपरिणामइत्ता परिपालइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता ।

(जीवटी प २१)

विप्फालण—पूछना ।

विप्फालण त्ति पुच्छण त्ति वा एगट्ठं । (व्यभा २ टी प २१)

विभजन—विभाग ।

विभजन विभागः विस्तरः । (निचूभा ४ पृ ४०२)

विमल—मल रहित ।

विमलं सुद्धं परिमज्जितं । (अंवि पृ २४५)

वियंजित—तथ्य ।

वियंजितं ति वा तत्थं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २८६)

वियालण—चिन्तन ।

वियालणं ति वा मग्गणं ति वा ईहणं ति वा एगट्ठं ।

(आवचू १ पृ १०)

विरत—विरत, संयमी ।

विरते समिए सहिए सया जए । (सू १/१६/३)

---

१. देखें—परि० ३

विरति—विरति।

विरतिर्विरमणं निवृत्तिः। (पंचा पृ १३)

विरमण—विरमण।

विरमण विरति सावद्ययोगनिवृत्तिः। (विभामहेटी १ पृ ७६४)

विरल्लिय—प्रसारित।

विरल्लिओ त्ति प्रसारितः क्षिप्तः। (ज्ञाटी प २४१)

विराहणा—विराधना।

विराहणा खंडणा भंजणा य एगट्ठा। (निपीचू पृ १३)

विरिय—वीर्य, सामर्थ्य।

विरियं सामत्थं वा, परक्कमो चेव होइ एगट्ठा। (जीतभा १७७४)

विल्लरी—राजहंसिनी।

विल्लरी रायहंसि त्ति कलहंसि। (अवि पृ ६६)

विवाद—विवाद।

विवादे विग्गहे त्ति य कलहं। (अंवि पृ १४३)

विवेक—विवेक।

विवेक पृथग्भावं विनाशम्। (सूटी १ प १६४)

विशति—वास करता है।

विशति निविशति प्रविशति।[1] (निचूभा २ पृ २४४)

विशुद्ध—विशुद्ध।

विशुद्धो निर्मलः स्नातकः। (प्रसाटी प २१२)

विशोधि—शुद्धीकरण।

विशोधिः प्रायश्चित्तमित्यनर्थान्तरम्। (बृकटी पृ ११२)

विसय—विषय, उपपत्ति।

विसओ त्ति वा संभवो त्ति वा उवयत्ति त्ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ २१)

---

१. देखें—परि० ३

विसारत—विशारद ।

विसारतो पंडितं बुद्धिमंतं । (अंवि पृ १२३)

विस—दुर्गन्धयुक्त ।

विस्रा आममत्स्यवः कुथिताः । (प्रटी प १६)

विह—प्रकार ।

विह त्ति वा भेद त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३२९)

विहरण—विहरण ।

विहरणं क्रीडनं विहारः । (सूटी १ प ८६)

विहि—विधि, क्रम ।

अणुपुव्वी परिवाडी कमो य नायो ठिई य मज्जाया ।
होइ विहाणं च तहा, विहीए एगट्ठिया हुंति ॥ (बृकभा २०८)

विहि मेरा सीमा आयरणा इति एगट्ठा । (आवहाटी २ पृ ६६)

वीथि—मार्ग, गली ।

वीथी रत्था वा मग्गो वा एगट्ठा । (आचू पृ २६)

वीर—धर्मवीर ।

वीरा समिता सहिता जता । (आचू पृ १५३)

वीर—वीर ।

वीरा सूरा विक्रान्ताः । (दशअचू पृ ६३)

वीरिय—वीर्य ।

वीरियं ति वा बलं ति वा सामत्थं ति वा परक्कमो त्ति वा थामो त्ति वा एगट्ठा । (निपीचू पृ २४)

वीरियं ति वा सामत्थं ति वा सत्तीति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ ३७६)

वुग्गह—कलह ।

वुग्गहो त्ति वा कलहो त्ति वा भंडणं ति वा विवादो त्ति वा एगट्ठा ।
(निचूभा ४ पृ १०१)

वुच्चमाण—निर्भर्त्सित होता हुआ ।

वुच्चमाणो असुस्सूसमाणो निंदिज्जमाणो वा खिसिज्जमाणो वा ।
(सूचू १ पृ १८२)

वुड्ढ—वृद्ध, श्रावक ।

वुड्ढा सावगा बंभणा ।[1] (अनुद्वाचू पृ १२)

वुत्त—कथित ।

वुत्तं ति वा भणितं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २२१)

वृक—भेड़िया ।

वृका ईहामृग पर्यायाः । (प्रटी प ६)

वृणीते—वर्णन करता है ।

वृणीते वृणोति वर्णयति ।[2] (उचू पृ १०२)

वेच्च—बुना हुआ ।

वेच्चं व्यूतं वानम् । (जीवटी प २१०)

वेर—कर्म ।

वेरे वज्जे य कम्मे । (उशाटी प २०६)

वेरति—विरति ।

वेरति वा वांति वा वेरमणं ति वा एगट्ठं । (सूचू २ पृ ३६१)

वेला—सीमा ।

वेला मेरा सीमा मज्जाय त्ति एगट्ठं । (सूचू १ पृ १८२)

वेला सीमा मर्यादा सेतुरित्यनर्थान्तरम् । (उचू पृ ५६)

वेवित—कंपित ।

वेविते परिदेविते पयलाइते पसुत्ते पतिते विप्पलोट्टिते । (अंवि पृ १५५)

---

१. देखें—परि० २ २. देखें—परि० ३

वैगुण्य—विपरीतता ।

वैगुण्य वैधर्मता विपरीतभावः । (भिचूभा ४ पृ २५०)

वोसट्ठ—छोड़ा हुआ ।

वोसट्ठं ति वा वोसिरियं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३४४)

वोसिरति—त्याग करता है ।

वोसिरति विसोधेति णिल्लवेति एगट्ठं ।[1] (आचू पृ ३६६)

व्यक्तिकर—व्याख्याकार ।

व्यक्तिकरो वार्त्तिकर इत्येकार्थौ । (बृकटी पृ ६४)

व्यञ्जक—उद्दीपित करने वाला ।

व्यञ्जकं दीपकमित्यनर्थान्तरम् । (आवटि पृ ४४)

व्यञ्जनाक्षर—अक्षरों की आकृति ।

व्यञ्जनाक्षर द्रव्याक्षरमित्यनर्थान्तरम् । (विभामहेटी १ पृ ८६)

व्यत्यय—व्यत्यय, विपर्यास ।

व्यत्यये विपर्यासे उत्क्रमोल्लंघने । (व्यभा ३ टी प १३५)

व्यवसायिन्—उद्यमी ।

व्यवसायी अनलस उद्योगवान् । (व्यभा ४/३ टी प १८)

व्यवहार—व्यवहार ।

व्यवहारः अनुपदेशः अननुमार्गः इत्यनर्थान्तरम् ।
(सूचू २ पृ ४०३)

व्यापन्न—विनष्ट ।

व्यापन्नं विपन्नं विनष्टम् । (प्रसाटी प २७५)

व्यावृत्त—निवृत्त ।

व्यावृत्तं निवृत्तमपगतम् । (समटी प ४)

व्युत्सर्ग—कायोत्सर्ग ।

व्युत्सर्गः कायोत्सर्गं इत्यनर्थान्तरम् । (व्यभा १ टी प ३६)

---

१. देखें—परि० ३

शंकित—शंकित ।

शंकितमिति वा भिन्नमिति वा कलुषितमिति वा एकार्थम् ।
(व्यभा १० टी प ३३)

शांत—उपशांत ।

शान्तः उपशान्तः प्रशान्तः अकषायवान् । (उचू पृ ६२)

शान्तो निशान्तः अक्रोधवान् । (उचू पृ २८)

शापित—बुलाया हुआ ।

शापित. शब्दित आकारितः । (व्यभा ३ टी प ८३)

शिक्षित—प्रशिक्षित ।

शिक्षितमित्यंतंनीतमधीतम् । (अनुद्वाहाटी पृ ६)

शुभवृद्धि—कल्याणवृद्धि ।

शुभवृद्धि कल्याणोपचयं सुखवर्धनं वा । (पचा पृ १२१)

शृणोति—सुनता है, ग्रहण करता है ।

शृणोति गृह्णाति उपलभत इति पर्यायाः ।[1] (आवहाटी १ पृ ८)

शोधि—शोधि ।

शोधिरिति वा धर्म इति वा एकार्थः ।[2] (व्यभा १० टी प ६७)

श्लक्ष्ण—चिकना ।

श्लक्ष्णो मसृण. स्निग्धः । (जबूटी प २६८)

श्लोक—प्रशंसा ।

श्लोकं श्लाघा कीर्तिम् आत्मप्रशंसाम् । (सूटी १ प २४६)

सअट्ठ—हेतु सहित, सप्रयोजन ।

सअट्ठ सहेउं सनिमित्त । (सू २/१/११)

सअट्ठ सहेउं सकारणं । (निचूभा ४ पृ ३८८)

संकण—शका ।

सकण संका चिन्ता । (निपीचू पृ १५)

---

१. देखें—परि० ३ २. देखें—परि० २

संकित—शंकित ।

संकिते कंखिते वितिगिच्छिते ।[1] (स्था ३/५२३)

संकीर्ण—व्याप्त ।

संकीर्णं व्याप्तं संभिन्नम् । (विभामहेटी १ पृ ४१८)

संख—निर्मल, श्वेत ।

संख-उज्जल-विमल-निम्मल-दहिघण-गोखीर-फेण-रयणियरप्पयासे ।[2] (ज्ञा० १/१/१६६)

संखेव—संक्षेप ।

संखेव समासो त्ति य, ओहो त्ति य होंति एगट्ठा । (जीतभा ६)

संग—विघ्न ।

संगो त्ति वा विग्घो त्ति वा वक्खोडो त्ति वा एगट्ठा । (सूचू १ पृ ८३)

संगो त्ति वा वग्घो त्ति वा वक्खोडि त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ ३)

संग—बंधन ।

संगो त्ति वा बंधणं ति वा एगट्ठं । (निचूभा ४ पृ १४३)

संग—इन्द्रियों के विषय ।

संगो त्ति वा इंदियत्थो त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३४६)

संगाम—संग्राम ।

संगामे जुद्धसद्देसु अन्मातलपलाइते ।
सन्नाहे जुद्धसंरागे··· । (अंवि पृ १४४)

संघ—संघ ।

संघ गणं कुल गच्छं वा ।[3] (आचू पृ ३३०)

संघाड—प्रकार, भेद ।

संघाड त्ति वा लय त्ति वा पगारो त्ति वा एगट्ठं । (बृकटी प ८११)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

संघात—समागम ।

संघातः समिति समागम एते एगट्ठा । (अनुद्वाचू पृ ५६)

संचालयंति—संचालित करते हैं ।

संचालयन्ति-संचारयन्ति पर्यालोचयन्ति ।[1] (ज्ञाटी प २७)

संजत—संयमी ।

संजते विमुत्ते निस्संगे निप्परिग्गहरुई निम्ममे निन्नेहबंधणे ।[2]
(प्र १०/११)

संजम—संयम ।

संजमो विरती य एगट्ठा । (दश्रुचू ६२)

संजमो त्ति वा सामाइयं ति वा एगट्ठा । (आवचू १ पृ ३४६)

संजमठाण—संयमस्थान ।

संजमठाणं ति वा अज्झवसायठाणं ति वा परिणामठाणं ति वा एगट्ठं । (निचूभा ४ पृ २८१)

संजमतवड्ढय—संयम-तप-वर्धक ।

संजमतवड्ढए त्ति वा आउत्ते त्ति वा अविग्घिपरिहारि त्ति वा एगट्ठा ।
(आवचू १ पृ ३४८)

संजमबहुल—संयमबहुल ।

संजमबहुले संवरबहुले संवुडबहुले समाहिबहुले । (प्र ८/११)

संजय—संयत ।

संजय-विरय-पडिहय (पावकम्मे) पच्चक्खाय-पावकम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिए ।[3] (सू २/४/२५)

संजायते—होता है ।

संजायते संभवति संचिट्ठते ।[4] (अंवि पृ ८३)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० ३

संठाण—संस्थान, आकृति।

संठाणं ति वा आगिति त्ति वा एगट्ठा। (आवचू १ पृ ५५)

संत—तथ्य।

संते तच्चे तहिए अवितहे सब्भूए।[1] (आ १/१२/१६)

संत—शांत।

संते पसंते उवसंते पडिणिव्वुडे छिण्णसोए निरुवलेवे। (अंवृ २/६८)
संते पसंते उवसंते परिनिव्वुडे अणासवे अममे अकिंचणे निरुवलेवे।[2]
(आ १/५/३५)

संत—श्रान्त, थका हुआ।

संता तंता परितंता निव्विण्णा।[3] (आ १/६/४५)

संत—सत्, अस्तित्व वाला।

संतं त्ति वा अत्थि त्ति वा विज्जमाणं ति वा एगठ्ठा।
(आवचू १ पृ १७)

संतत—निरन्तर।

सन्ततमनुबद्धं प्रारब्धम्। (प्रटी प १२५)

संदाण—बंधन।

संदाण निदाणं ति य पज्जो य होंति एगट्ठा। (वश्रुनि १३५)
संताणं ति वा निदाणं ति वा बंधो त्ति वा॥[4] (वश्रुचू प ८६)

संति—शांति।

संति त्ति वा णेव्वाणं ति वा मोक्खो त्ति वा कम्मक्खयो त्ति वा एगट्ठं। (सूचू १ पृ १००)

संति विरतिं उवसमं निव्वाणं। (आ ६/१०२)

संथुणण—संस्तवन।

संथुणण सथवो तू, थुणणा वंदणममेगट्ठं। (जीतभा १४२०)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३ देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

संधयेत्—संधान करे ।

सन्धयेत् अभिसन्दध्यात् प्रार्थयेत् ।[1] (सूटी १ प १८६)

संधाण—संसार ।

संधानं संधि संसारः । (दश्रुचू प ६१)

संधि—मैत्री ।

संधी संपीइ सम्मोह मित्ति णिव्वाणिमेव वा । (अंवि पृ १२)

संपण्ण—पंडित, प्रज्ञावान् ।

संपण्णा पंडिता पवियक्खणा तुल्लं । (दशअचू पृ ४८)

संपुण्णदोहला—जिसका दोहद पूर्ण हो गया हो वह स्त्री ।

संपुण्णदोहला संमाणियदोहला विणीयदोहला विच्छिण्णदोहला संपण्णदोहला । (विपा १/२/३०)

संपेहेति—देखता है ।

संपेहेति त्ति संप्रेक्षते पर्यालोचयति ।[2] (ज्ञाटी प ३७)

संबुद्ध—संबुद्ध ।

संबुद्धा पंडिया पवियक्खणा ।[3] (दश२/११)

संमय—सम्मत ।

संमओ त्ति वा अणुमओ त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २९३)

संयत—संयत ।

संयत. विरतः निवृत्तः । (सूचू १ पृ ६१)

संयताः साधवः सुसमाहिताः ।[4] (दशहाटी प २०२)

संरंभ—हिंसा ।

संरंभे सरंमाभे आरंभे ।[5] (व्यभा १/४२)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

संवर—संवरण ।

संवर चट्टूण पिहणं एगट्ठं । (जीतभा ७०७)

संवरित—स्थगित ।

संवरिताः स्थगिता निवारिता । (निचूभा २ पृ २७१)

संविग्ग—संविग्न साधु ।

संविग्ना उद्यतविहारिणः आयतस्थिताः । (व्यभा ६ टी प ६)

संविच्चिण्ण—आसेवित ।

संविच्चिण्णे त्ति संविचरित आसेवितः । (ज्ञाटी प १०६)

संविद्—ज्ञान ।

संवित् ज्ञानमवगमो भावोऽभिप्राय इत्यनर्थान्तरम् ।

(आवमटी प ६)

संविदधिगमो ज्ञानं भाव इत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ४४३)

संशय—संशय ।

संशयः संदेहो वितर्कः ऊहा वीमंसेत्यनर्थान्तरम् । (सूचू १ पृ ३५)

संस्कृत—संस्कारित ।

सस्कृतं ति वा करणं ति वा एगट्ठा । (उचू पृ १०३)

संस्तव—परिचय ।

संस्तवपरिचयमभिष्वङ्गं । (सूटी १ प ६५)

संहर्ष—समूह ।

संहर्षः समुदायः पिण्ड इत्यनर्थान्तरम् । (आवचू १ पृ ५७५)

सकम्मवीरिय—प्रमाद में प्रयुक्त वीर्य ।

सकर्मवीरियं ति वा बालवीरियं ति वा एगट्ठं । (सूचू १ पृ १६८)

सकल—सम्पूर्ण ।

सकलः परिपूर्णोऽच्छिन्नो । (विभामहेटी २ पृ ८१)

सक्क—शक्य ।

सक्क ति वा सहूय त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ १२०)

सक्क—इन्द्र ।

सक्कं देविंदं देवरायं, मघवं पाकसासणं ।
सयक्कतु सहस्सक्खं, वज्जपाणि पुरंदरं ॥
दाहिणड्ढलोगाहिवइं एरावणवाहणं सुरिंदं ।[1] (प्र ३/१०६)

सक्कार—सत्कार ।

सक्कारे इ वा, सम्माणे इ वा, किइकम्मे इ वा, अब्भुट्ठाणे इ वा, अंजलिपग्गहे इ वा, आसणाभिग्गहे इ वा, आसणाणुप्पदाणे इ वा ।[2]
(भ १४/३२)

सक्त—आसक्त ।

सक्ता गृद्धा अध्युपपन्ना । (सूटी १ प १५)

सच्च—सत्य ।

सच्च सब्भूयं अवितहं अविसंदिद्ध । (अनुद्वाचू पृ ८६)

सच्चं तहियं आहातहियं । (सू २/१/३५)

सज्जइ—आसक्त होता है ।

सज्जइ रज्जइ गिज्झइ मुज्झइ अज्झोववज्जइ ।[3] (ज्ञा १५/१४)

सज्जिय—आसक्त ।

सज्जिय रज्जिय गिज्झिय मुज्झिय लुब्भिय । (प्र १०/१४)

सडइ—सड़ता है ।

सडइ वा पडइ वा गलइ वा ।[4] (निर १/५१)

सडण—विध्वंसन ।

सडण-पडण-विद्धंसण । (ज्ञा १/१/१०७)

सडण-पडण-विकिरण विद्धंसणधम्मं । (इभा २४/१)

सण्णा—संज्ञा ।

सण्ण त्ति वा बुद्धि त्ति वा नाणं ति वा विण्णाणं त्ति वा एगट्ठा ।
(आचू पृ १२)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३

सण्णिहि—संग्रह ।

सण्णिही इ वा सण्णिचया इ वा निही इ वा निहाणा इ वा ।[1]

(भ ३/२९८)

सद्दहइ—श्रद्धा करता है ।

सद्दहइ पत्तियइ रोएइ ।[2] (भ ९/२३५)

सद्दूल—सिंह ।

सद्दूल सीह चिल्लला ।[3] (प्र १/६)

सन्त्राण—रक्षण ।

सन्त्राणं-परित्राणं रक्षणमित्येकोऽर्थः । (बृकटी पृ ५८१)

सन्धि—छिद्र ।

सन्धि छिद्रं विवरं । (सूटी १ प २९)

सन्नतपास—सुन्दर पार्श्व वाला ।

सन्नतपासा संगतपासा सुंदरपासा सुजातपासा । (प्र ४/८)

सन्नद्ध—सन्नद्ध ।

सन्नद्ध बद्ध कवचिय । (ज्ञाटी प २२८)

सप्पज्जाय—अस्तित्वयुक्त ।

सपज्जाय त्ति वा अत्थिभावो त्ति वा विज्जमाणभावो त्ति वा एगट्ठा ।

(आवचू १ पृ २९)

सप्पभ—प्रभा सहित ।

सप्पभा समिरीया सउज्जोया । (जंबू १/८)

सप्पभे समीरिईए सउज्जोवे । (आवचू १ पृ ४७९)

सबल—चितकबरा ।

सबलो ति वा चित्तलो त्ति वा एगट्ठं । (आवचू १ पृ १३८)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० ३

३. देखें—परि० २

समण—शमन ।

समण संति परिहरणा दुगुंछा वा एगट्ठा । (आचू पृ ४०)

समण—श्रमण ।

समणे ति वा, माहणे ति वा, खंते ति वा, दंते ति वा, गुत्ते त्ति वा, मुत्ते ति वा, इसी ति वा, मुणी ति वा, कती ति वा, विदू ति वा, भिक्खू ति वा, लूहे ति वा, तीरट्ठी ति वा, चरणकरण-पारविउ । (सू २/१/७२)

पव्वइए अणगारे, पासंडी चरक तावसे भिक्खू ।
परिवायए य समणे, णिग्गंथे संजए मुत्ते ॥
तिण्णे णेया दविए, मुणी य खते य दंत विरए य ।
लूहे तीरट्ठी वि य, हवंति समणस्स णामाइं ॥ (दशनि ६५-६६)

समण समाहिय समत्त समजोगि । (जंबू ५/५८)

समण सजयं दंतं सुमणं । (ओनिभा ११०)

समणे त्ति वा माहणे त्ति वा मुणि त्ति वा एगट्ठं ।[1] (आचू पृ ६३)

समय—सकेत ।

समयः आगमः संकेतो वा । (सूटी १ प २०३)

समर—युद्ध ।

समर-सग्राम-डमर-कलि कलह ।[2] (प्रश्न ३/१)

समवयन्ति—सम्मिलित होते हैं ।

समवयन्ति वा समवतरन्ति सम्मिलन्ति ।[3] (समटी प १)

समागम—समागम ।

समागम वा सम्मोह वा संपीर्ति वा मित्तसंगमं वा वीवाहं वा । (अंवि पृ १४५)

समाणधम्मिय—साधर्मिक ।

समाणधम्मिया. साहम्मिया स्वप्रवचनं प्रतिपन्नः । (निपीचू पृ ११७)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३

समास—संक्षेप ।

समासो संखेवो पिंडार्थः । (निपीचू पृ १०१)

समित—उपशांत ।

समितं ति वा सेवितं ति वा एगट्ठा । (आचू पृ १०१)

समुस्सय—ढेर ।

समुस्सयो त्ति वा रासि त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ २१६)

समूह—समूह ।

समूहो वर्गः राशिः इति पर्यायाः । (विभामहेटी पृ २७८)

समूहः समुदायो मीलनक इति । (विभामहेटी पृ ३६३)

समूहः संघात इत्यनर्थान्तरम् । (सूचू २ पृ ४५०)

सयय—सतत ।

सययं ति वा सव्वकालं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३२४)

सययं ति वा अणुबद्धं ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३२३)

सरभ—शरभ ।

सरभा परासरेति पर्यायाः । (प्रटी प ६)

सर्व—सम्पूर्ण ।

सर्वं संपूर्णमखण्डं निरवशेषं कृत्स्नमिति पर्यायाः ।
(विभाकोटी पृ ६५६)

सर्वर्जु—संयम ।

सर्वर्जुः संयमः सद्धर्मो वा । (सूटी १ प ३५०)

सव्व—सम्पूर्ण ।

सव्वं कसिणं पडिपुण्णं निरवसेसं । (अनुद्वा ५५७)

सव्वओ—सब ओर से ।

सव्वओ समंत त्ति एकार्थौ । (भटी पृ ७८)

ससंभम—शीघ्रता ।

ससंभमं तुरियं चवलं । (राजटी पृ ४६)

सहइ—सहन करता है ।

सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।[1] (अत ६/५)

सागय—स्वागत ।

सागय सुसागयं कथञ्चिदेकार्थौ । (भटी प ११६)

सागारिक—जननेन्द्रिय ।

सागारिक मेहन लिङ्गम् । (आवटि प २५)

सागारिय—शय्यातर ।

सागारियस्स णामा, एगट्ठा णाणावंजणा पच ।

सागारिय सेज्जायर, (सेज्जा) दाता य (सेज्जा) धरे (सेज्जा) तरे

वावि ।[2] (निभा ११४०)

सात—सुख ।

सातं ति वा सुहं ति वा अभय ति वा परिणिव्वाण ति वा एगट्ठा ।

सात ति वा सुहं ति वा परिणिव्वाणं ति वा अभयं ति वा एगट्ठा ।

(आचू पृ ३१)

सात सुख रतिरित्येकोऽर्थः । (बृकटी पृ ६६७)

साधु— साधु ।

साधु त्ति वा संजतो त्ति वा भिक्खु त्ति वा एगट्ठ ।

(दशजिचू पृ २६३)

साधु· निसगो मुनि. । (विभाकोटी पृ ६१३)

साध्यते—निष्पन्न किया जाता है ।

साध्यते निष्पाद्यते ज्ञाप्यते ।[3] (दशहाटी प ३४)

सामायिक—सामायिक ।

समया सम्मत्त पसत्थ संति सुविहिअ सुहं अनिदं (अनिद्दं ?) च ।

अदुगुंछियमगरिहिय अणवज्जमिमेऽवि एगट्ठा ।[4] (आवनि १०३३)

---

१. देखें— परि० ३

२. देखें—परि० २

३. देखें—परि० ३

४. देखें—परि० २

सायण—ध्वंस ।

सायण धंसो विणासो त्ति एगट्ठा । (जीतभा ८६३)

सारक्खमाण—रक्षा करता हुआ ।

सारक्खेमाणे संगोवेमाणे अणुपालेमाणे अणुकंपमाणे ।
(आवचू १ पृ ५१३)

साला—शाखा ।

साल त्ति वा साह त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३०८)

साहरण—बाहर निकालना ।

साहरणं उक्किरणं, विरेयणं चेव एगट्ठं । (जीतभा १५५७)

साहसिक—शीघ्र कार्य करने वाला ।

साहसिको मेहावी लहुको सद्धो त्ति मुक्कहत्थो त्ति ।
चंडो सूरो दच्छो त्ति । (अंवि पृ २४१)

साहा—शाखा ।

साहा साहुली वृक्षसाला । (निपीचू पृ ८५)

सिंगबेर—अदरख ।

सिंगबेरं सुंठी अल्लग वा । (आचू पृ ३४०)

सिक्ख—शैक्ष ।

सिक्खउ त्ति वा सेहो त्ति वा सीसो त्ति वा । (सूचू १ पृ २२७)

सिक्खिय—शिक्षित ।

सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं ।[1] (अनुद्वा ३४)

सिखंड—सिर ।

सिखडो मत्थको सीसं तधा सीमंतको । (अंवि पृ ५६)

सिग्घ—शीघ्र ।

सिग्घं तुरियं चवलं चंडं वेइयं । (भ ११/१३६)

सिग्घं तुरियं जइणं ।[2] (जंबू ५/२८)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

सिज्झइ—मुक्त होता है।

सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।[1]
(भ १/४४)

सिणाण—स्नान।

सिणाण ति वा ण्हाणं ति वा एगट्ठा। (दशजिचू पृ २३१)

सिणाण मज्जणा दो वि एगट्ठा। (निचूभा ३ पृ ३७८)

सिण्ह—ओस।

सिण्ह त्ति वा ओस त्ति वा एगट्ठं। (निपीचू पृ ६८)

सिद्ध—सिद्ध।

सिद्ध ति य बुद्ध त्ति य, पारगय त्ति य परंपरगय त्ति।
उम्मुक्क-कम्म-कवया, अजरा अमरा असंगा य॥
विच्छिण्णसव्वदुक्खा, जाइजरामरणबंधणविमुक्का। (ओप १९५)

सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतकडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।
(जंबू २/८८)

सिद्धः प्राप्तनिष्ठ इत्यनर्थान्तरम्। (आवचू १ पृ ५३९)

सिद्धो मुत्तो त्ति तिण्णो त्ति, णीरयो णिव्वुतो त्ति य।
असगो केवली बुद्धो, असरीरकधासु य॥
अकम्मो णिप्पयोगो त्ति।[2] (अवि पृ २६९)

सिद्ध—प्रसिद्ध।

सिद्धं प्रख्यात प्रथित। (निपीचू पृ १९)

सिद्धउपपत्ति—सिद्धि, अपुनर्जन्म।

सिद्धउपपत्ति मोक्खो अपुणब्भवो संसारविप्पमोक्खो असंसारोपपत्ती।
(अंवि पृ २६४)

---

१. देखें—परि० ३

२. देखें—परि० २

सिद्धत्थ—सिद्धार्थ (महावीर के पिता का नाम)।

सिद्धत्थे सेज्जंसे जसंसे। (आचूला १५/१७)

सिद्धत्थ—जिसका प्रयोजन सिद्ध हो गया।

सिद्धत्थो सुभगो त्ति य। धण्णो य सुहभागी य सुद्धभावी य।
(अंवि पृ १०३)

सिद्धिगत—सिद्धि को प्राप्त।

सिद्धिगते णिव्वुयगते तिण्णगते अरजगते अकम्मगते मुक्कगते अयोगगते परिसुद्धगते। (अंवि पृ २६८)

सिद्धिमग्ग—सिद्धि का मार्ग।

सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे।
(ज्ञा १/१/११२)

सीईभूय—प्रशान्त।

सीईभूओ परिनिव्वुओ य संतो तहेव पल्हाणो (ल्हाओ)।
(आनि २०६)

सीत—शीतल, ठंडा।

सीतं हिमं ति सीतलं ति। (अंवि पृ २४४)

सीमा—मर्यादा।

सीमा मेरा मर्यादा इत्यनर्थान्तरम्। (आवचू २ पृ २५१)

सीलमंत—शीलवान्।

सीलमंता वयमंता गुणमंता।[1] (आचूला २/३८)

सुकड—सुकृत।

सुकडे ति वा सुट्ठुकडे ति वा साहुकडे त्ति वा।
(आचूला ४/२१)

---

१. देखें—परि० २

सुक्क—शुष्क, मास रहित।

सुक्के लुक्खे निम्मसे किडिकिडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे धमणिसंतए।[1]
(ज्ञा १/१/२०२)

सुक्किल—शुक्ल, सफेद।

सुक्किलेसु सप्पभेसु ओवातेसु। (अंवि पृ २५०)

सुत्त—श्रुत, सूत्र।

सुय सुत्त गंथ सिद्धंत सासण आणवयण उवएसे।
पण्णवण आगमे य, एगट्ठा पज्जवा सुत्ते॥ (अनुद्वा ५१)

सुत्त तंत गंथो पाढो सत्थं च एगट्ठा। (आवनि १३०)

सुत्त ति वा पवयणं ति वा एगट्ठा।[2] (आवचू १ पृ ६२)

सुद्ध—शुभ्र, विमल।

सुद्ध ति पंडर ति य, विमलं उज्जोतितं पभा व त्ति।
दिवसो त्ति णीरयो त्ति य पडिरूव।[3] (अंवि पृ २४३)

सुबुद्धिक—बुद्धिमान्।

सुबुद्धिको त्ति वा बूया, सुबुद्धिमंतो त्ति वा पुणो।
तधा पसण्णबुद्धि त्ति, कितबुद्धि त्ति वा पुणो॥ (अंवि पृ १२२)

सुभ—शुभ।

सुभ चारु कंत। (आचूला १५/२८)

सुभासिय—सुभाषित।

सुभासियं सुव्वयं सुकहियं सुदिट्ठं। (प्र ७/१)

सुरा—मद्य विशेष।

सुरं वा मेरगं वा वि मज्जगं रसं।[4] (दश ५/२/३६)

सुविवेग—सु-प्रव्रज्या।

सुविवेगो त्ति वा सुणिक्खंत त्ति वा सुपव्वज्ज ति वा एगट्ठं।
(सूचू १ पृ ६८)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २

सुसंहत—सघन ।

सुसंहता सुश्लिष्टा निर्विचाला । (जंबूटी प ११४)

सुसील—सुशील ।

सुसीला सुव्वया सग्गुणा समेरा ।[1] (स्था ३/१३६)

सूर—शूर ।

सूरे वीरे विक्कंते । (ज्ञा १/१/२६)

सूरे ति वा वीरे ति वा सत्तिए त्ति वा एगट्ठा । (आचू पृ ८३)

सूरलेस्सा—आतप ।

सूरलेस्सा इ वा आतवे इ य एगट्ठे । (सूर्य १६/४)

सेज्जा—बैठने तथा सोने में काम आने वाले आसन ।

सेज्जा खट्टा भिसी व त्ति, आसंदी पेढिक त्ति वा ।
महिसाहा सिला व त्ति, फलकी इट्टक त्ति वा ॥[2] (अवि पृ ७२)

सेत—श्वेत, शुभ्र ।

सेत ति पडर व त्ति, विमलं णिम्मलं ति वा ।
सुद्धं ति वातिविसुद्धं ति, तधा वितिमिरं ति वा ॥
सप्पभ सुचिम ।[3] (अंवि पृ ६०)

सेसवती—शेषवती, (महावीर की दौहित्री) ।

सेसवती ति वा जसवती ति वा । (आचूला ५/२४)

सोऊण—सुनकर ।

सोऊण वा सोच्चाण वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ ३२४)

सोभंत—शोभित ।

सोभत-रुइल-रमणिज्जं । (जीव ३/५६७)

सोम—सौम्य ।

सोमे सुभगे पियदंसणे सुरूवे । (ज्ञा १/५/३)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २

सोह—शोधि (शुद्धि)।

सोह त्ति व धम्मो त्ति व एगट्ठं। (व्यभा १० टी प ६७)

सौकरिक—कसाई।

सौकरिकाः श्वपचाश्चाण्डालाः खट्टिकाः। (सूटी २ प ६३)

स्थान—प्रवृत्ति।

स्थानं वृत्तं कर्मेत्यनर्थान्तरम्। (सूचू २ पृ ४४३)

स्थान—स्वाध्याय भूमि।

स्थानमिति वा नैषेधिकीति वा एगट्ठं। (व्यभा ३ टी प ५४)

स्थान—कारण।

स्थान कारणमित्येकोऽर्थः। (बृकटी पृ १४२५)

स्थापना—आकार।

स्थापना आकारो मूर्तिरिति पर्यायाः। (बृकटी पृ २६०)

स्पर्शना—प्राप्ति।

स्पर्शना प्राप्तिरवगाहो लंभ। (आवचू १ पृ ४८६)

स्पृष्ट—व्याप्त।

स्पृष्ट. व्याप्तः पूर्ण इत्यनर्थान्तरम्। (आवमटी प ३५)

स्वर्—स्वर्ग।

स्व स्वर्गः सुरसद्म त्रिदशावासः त्रिविष्टपं त्रिदिवमित्याद्येकार्थिकनाम।[1]

(विभामहेटी पृ ५०७)

स्थिति—अवस्थिति।

स्थतिरायुः कर्मानुभूतिर्जीवनमिति पर्यायाः। (प्रज्ञाटी प १६६)

हंतव्व—हनन करने योग्य।

हंतव्वा अज्जावेयव्वा परिघेतव्वा परियावेयव्वा उद्दवेयव्वा।[2]

(आ ४/२०)

---

१. देखें—परि० २

२. देखें—परि० २

हंता—हनन करके ।

हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवित्ता ।[1] (आ २/१४)

हक्कार—हाहाकार ।

हक्कार रुवित कंदित ।[2] (अंवि पृ २५३)

हट्ठ—नीरोग ।

हट्ठो णिरोगो णिव्वाधितो समत्थो । (निचूभा २ पृ ३१५)

हट्ठा अरोगा बलिया कल्लसरीरा । (स्था ४/४५१)

हट्ठचित्त—प्रसन्न ।

हट्ठ (चित्त) तुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए ।[3] (भ २/४३)

हत्थखड्डुग—हाथ का आभूषण (अंगूठी) ।

हत्थस्स खड्डुग व त्ति, अणंतं खड्डुगं ति वा । (अंवि पृ ६५)

हत्थभंडक—हाथ का आभूषण (कंकण) ।

हत्थस्स भडको व त्ति, कंकणं वेढको त्ति वा । (अंवि पृ ६५)

हत्थिक—हाथ का आभूषण ।

अथवा हत्थिको व त्ति, तथा चक्ककमिहुणयं ।
तथेवज्झंककं व त्ति, कडगं खड्डगं ति वा ॥[4] (अंवि पृ ६४)

हत्या—हनन ।

हत्या हननमुद्धारम् । (त्रिपाटी प ७५)

हय—हत ।

हय महिय घाइय विवडिय ।[5] (ज्ञा १६/२५३)

हयतेय—जिसका तेज नष्ट हो गया है ।

हयतेए गयतेए नट्ठतेए भट्ठतेए लुत्ततेए विणट्ठतेए । (भ १५/११६)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० २
४. देखें—परि० २
५. देखें—परि० २

हरंति—हरण करते हैं।

हरति वा विभयंति वा णूमेति वा एगट्ठं ।[1] (सूचू १ पृ १७६)

हर्ष—हर्ष ।

हर्ष· प्रमोदोऽनुरागः । (शाटी प १३८)

हसंति—हंसते हैं ।

हसति रमंति ललति ।[2] (भ ६/१३५)

हसित—मुदित ।

हसितप्पहिट्ठे मुदिते । (अवि पृ २५१)

हापयति—तिरस्कृत करता है ।

हापयति परिभवति विलुंपति ।[3] (व्यभा २ टी प २७)

हार—हरण ।

हारं हरण हियते इति वा एकार्थम् ।[4] (व्यभा १/४ टी प ५)

हाहाभूय—हाहाकार ।

हाहाभूए भंभब्भूए कोलाहलभूए । (भ ७/११७)

हाहाभूए भंभाभूए कोलाहलभूए । (जंबू २/१३१)

हिट्ठिम—निकृष्ट ।

हिट्ठिमो निकृष्टो जघन्यः । (उचू पृ २४७)

हिमानि—हिम समूह ।

हिमानि वा, हिमपुञ्जानि वा, हिमपटलानि वा, हिमकूटानि वा, एतान्येव पदानि नानादेशविनेयानुग्रहाय पर्यायैर्व्याचष्टे ।

(जीवटी प १२४)

हिय—हित ।

हियं सुहं खमं णिस्सेयसं (नीसेसं) आणुगामियं ।[5] (आ ८/६१)

---

१. देखें—परि० ३
२. देखें—परि० ३
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० ३
५. देखें—परि० २

हियकामग—हितेच्छु ।

हियकामगस्स सुहकामगस्स पत्थकामगस्स आणुकंपियस्स निस्सेसि-
यस्स । (भ १५/९३)

हीणस्सर—निम्नस्वर ।

हीणस्सरा दीणस्सरा अणिट्ठस्सरा अकंतस्सरा अप्पियस्सरा
अमणुण्णस्सरा अमणामस्सरा अणादेज्जवयणा । (जबूटी प १६५)

हीलणा—अवहेलना ।

हीलणाओ निंदणाओ खिसणाओ तज्जणाओ ताडणाओ गरहणाओ ।[1]
(राज ७७९)

हीलिज्जमाणी—तिरस्कृत होती हुई ।

हीलिज्जमाणी खिसिज्जमाणी निंदिज्जमाणी गरहिज्जमाणी
तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी थुक्कारिज्जमाणी ।[2]
(ज्ञा १/१६/२९)

हीलेति—निंदा करता है ।

हीलेति निंदेति खिंसति गरिहति परिभवति अवमण्णति ।[3]
(सू २/२/११)

हुतासिणा सिहा—अग्निशिखा ।

हुतासिणा सिहा व त्ति, तधा अग्गिसिह त्ति वा ।
तधा दीवसिहा व त्ति, ओवीवसिह त्ति वा ॥
दीविगाय सिहा व त्ति, चिडिलीय सिहि त्ति वा ।
एते उत्ता समा सद्दा । (अंवि पृ ९१-९२)

हेउगोवएस—संज्ञा का एक प्रकार ।

हेउगोवएसो त्ति वा कारणोवएसो त्ति वा पगरणोवएसो त्ति वा
एगट्ठा ।[4] (आवचू १ पृ ३१)

---

१. देखें—परि० २
२. देखें—परि० २
३. देखें—परि० ३
४. देखें—परि० २

हेतु—हेतु ।

हेतुः कारणं निमित्तमित्यनर्थान्तरम् । (नंदीचू पृ ४७)

हेतू कारण उवाओ । (आवचू १ पृ ५५७)

ह्री—लज्जा ।

ह्री लज्जा संयम इत्यनर्थान्तरम् । (सूचू १ पृ २२१)

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

शब्द-अनुक्रम

(प्रस्तुत परिशिष्ट के अन्तर्गत जिन शब्दों के आगे कोष्टक में पृष्ठ संख्या अथवा शब्द दिए गए हैं, वे एकार्थवाची शब्दों के प्रारंभिक शब्द के द्योतक हैं।)

अकयत्थ (अधम)
अकयलक्खण (अधम)
अकरणा (जुगुंछणा)
अकरणाए अब्भुट्ठिज्जइ (आलोइज्जइ)
अकरणीय (मिच्छत्त)
अकलुस (अक्षीण)
अकलुस (अणासव)
अकषायवद् (शान्त)
अकसाइ (अणाइल)
अकिंचण (अणासव)
अकिंचण (संत)
अकिंचण (पाणवह)
अकिट्ठ (पृ २)
अकिरिय (संजय)
अकुक्कुय (अचवल)
अकुटिल (ऋजु)
अकुटिलत्व (उज्जुगत्तण)
अकुडिल (पृ २)
अकुडिल (उज्जुय)
अकुसल (पृ २)
अक्कोस (पृ २)
अक्कोसति (आहणइ)
अक्कोसेज्ज (पृ २)
अक्कोह (पृ ३)
अकम (दुमपुप्फिया)
अक्खण (आलोयण)
अक्खय (ध्रुव)
अक्खयायार (पृ ३)
अक्खर (वेयव्व)
अक्खुभिय (अभीय)
अक्खेव (अविच्चाबाह)
अक्खोडभंग (खोडभंग)
अक्खोला (लोमसिका)
अक्रिया (पृ २)
अक्रोधवद् (शान्त)
अक्षताचार (पृ ३)
अखंड (पृ ३)
अखंड (पृ ३)
अखण्ड (सर्व)
अखमा (कोह)
अखमा (मोहणिज्जकम्म)
अखिल (अचल)
अग (दुम)
अगणि (अग्नि)
अगणिझामिय (पृ ३)
अगणिझूसिय (अगणिझामिय)
अगणिपरिणामिय (अगणिझामिय)
अगम (आगासत्थिकाय)
अगाम (पावय)
अगरिहिय (सामायिक)
अगर्भिणी (नववधू)
अगीतार्थ (अल्पश्रुत)
अगुणकित्तण (परिवयण)
अगुत्ति (परिग्गह)
अगृद्ध (पृ ३)
अगृहीतव्य (पृ ३)
अगेहि (लाघविय)
अगेहि (असंजण)
अगोय (पृ ३)
अग्ग (पृ ३)
अग्ग (पृ ३)
अग्ग (असा)

अणिंदिय (मेउरवयण)
अणिमस (उववज्झंत)
अणिवारियवावार (केवल)
अणिव्वुत (वीण)
अणिहु (अकुडिल)
अणिहुयपरिणामकुप्पयोमि (पाव)
अणु (पृ ६)
अणु (कस)
अणुओग (पृ ७)
अणुक (कस)
अणुक (खुड्डलक)
अणुकपण (पृ ७)
अणुकपमाण (सारक्खेमाण)
अणुकपा (अणुकंपण)
अणुक्कम (आणंतरिय)
अणुजोगगत (विट्ठिवाय)
अणुज्जग (अलिय)
अणुज्जल (असाहस)
अणुज्जुय (वंक)
अणुण्णा (पृ ७)
अणुत्तम (अणुत्तर)
अणुत्तर (पृ ७)
अणुत्तर (पृ ७)
अणुत्तर (अणंत)
अणुत्तर (निव्वाण)
अणुत्तर (खेम)
अणुपरिवाडि (आणंतरिय)
अणुपविट्ठ (पृ ७)
अणुपविट्ठ (अतियस)
अणुपालेइ (कासेइ)
अणुपालेमाण (सारक्खेमाण)
अणुपुव्वि (विट्ठि)
अणुबद्ध (सयय)
अणुब्भड (असाहस)
अणुभूत (भिवत)
अणुमय (संमय)
अणुमय (वेसम)
अणुमाण (पृ ७)
अणुवसंत (चड्ड)
अणुव्विग्ग (पृ ८)
अणुव्विग्ग (अभीय)
अणुसमरइ (पृ ८)
अणुसट्ठि (पृ ८)
अणुसमय (पृ ८)
अणेग (बहु)
अणेगणामभेद (अणेगपडिरय)
अणेगपज्जाय (अणेगपडिरय)
अणेगपडिरय (पृ ८)
अणेह (निण्णेहुक)
अणोज्जा (पृ ८)
अण्ण (पृ ८)
अण्णाण (अबाह)
अण्णाय (पृ ८)
अण्णेसणा (एसणा)
अण्हयकर (पृ ८)
अण्हयकर (पावय)
अण्हेते (सेमेंति)
अतत्थ (अभीय)
अतथाभूय (बहु)
अतलपलाइत (संगाम)
अतिकाय (थूल)
अतिकिमण (अवास)

अप्पडिकंटय (ओहयकंटय)
अप्पडिबद्ध (पृ १३)
अप्पमाय (अहिंसा)
अप्पसंत (कलुस)
अप्पाय (कम्म)
अप्पासवतर (अप्पकम्मतर)
अप्पिच्छा (लाघविय)
अप्पिय (दुक्ख)
अप्पिय (अणिट्ठ)
अप्पियववहारिय (पृ १३)
अप्पियस्सर (हीणस्सर)
अप्पीइ (अरति)
अप्फिडित (अपसारित)
अप्फुडिय (अखंड)
अप्रकाश (छन्न)
अप्रमत्त (पयत)
अप्रयोजन (अनर्थ)
अप्रविबुद्ध (मुकुल)
अप्रसूता (नववधू)
अबंधव (असाण)
अबंभ (पृ १३)
अबल (अत्थाम)
अबहिलेस्स (अणाइलभाव)
अबहुश्रुत (अल्पश्रुत)
अबाल (देसकालण्ण)
अबालसील (पृ १३)
अब्भंगण (उस्सिंघण)
अब्भंतर (अणुपविट्ठ)
अब्भंतरत्त (अणुपविट्ठ)
अब्भक्खाण (अलिय)
अब्भक्खाण (असब्भसब्भिकाय)
अब्भक्खाणविवेग (अब्भत्थिकाय)
अब्भणुण्णत (अब्भिणत)
अब्भपलाइत्त (संगाम)
अब्भसण (परियट्टण)
अब्भहियतर (पृ १३)
अब्भास (पृ १४)
अब्भुक्कढित (सिक्खामित)
अब्भुगय (पृ १४)
अब्भुज्जय (अब्भुज्जय)
अब्भुट्ठाण (सक्कार)
अब्भुट्ठि (आउट्टि)
अब्भुट्ठिय (उवट्ठिय)
अब्भुट्ठिय (अब्भुग्गय)
अब्भुण्णय (अब्भुगाय)
अभय (साय)
अभय (अहिंसा)
अभव (धुवक)
अभाजन (अपात्र)
अभार (अलस)
अभियच्छइ (आगइ)
अभिगच्छति (पृ १४)
अभिगयट्ठ (लद्धट्ठ)
अभिग्रह (प्रतिमा)
अभिज्जा (मोहणिज्जकम्म)
अभिज्झा (पृ १४)
अभिज्झा (लोभ)
अभिणिव्वट्ट (अभिसंभूत)
अभिणिव्वुड (संत)
अभिण्ण (अणण्ण)
अभिनन्द (राग)
अभिनव (बाल)

अभिनव (तरुणय)
अभिनिषद्या (तका)
अभिन्नाचार (अक्षताचार)
अभिन्नायार (अक्खयायार)
अभिप्पात (विण्णाण)
अभिप्पाय (पृ १४)
अभिप्पाय (पणिहाण)
अभिप्पायंति (अभिलसंति)
अभिप्राय (संविद्)
अभिप्राय (प्रणिधान)
अभिप्राय (छंद)
अभिप्राय (भाव)
अभिभव (विजय)
अभिरुह्य (दुरुह्य)
अभिरूप (पासादिय)
अभिलषणीय (कान्त)
अभिलसइ (आसाएइ)
अभिलसइ (कंखइ)
अभिलसंति (पृ १४)
अभिलसन (पीहन)
अभिलसमाण (पत्थेमाण)
अभिलाप्य (प्रज्ञापनीय)
अभिलाष (राग)
अभिलाष (लोभ)
अभिलाष (छंद)
अभिलासा (परिकंखा)
अभिवादित (वंदित)
अभिवायण (पृ १४)
अभिशय्या (तका)
अभिष्वङ्ग (संस्तव)
अभिसंजात (अभिसंभूत)
अभिसंधान (माया)
अभिसंभूत (पृ १४)
अभिसंवुड्ढ (अभिसंभूत)
अभिसन्दध्यात् (संधयेत्)
अभिसमण्णागत (लद्ध)
अभिसमण्णागय (भाव)
अभिहणति (पृ १४)
अभिहणेज्ज (पृ १४)
अभीय (अणुव्विग्ग)
अभीय (पृ १५)
अभूतिभाव (पृ १५)
अभेद (अणु)
अभ्याश (अंतिक)
अभ्युपमत (प्रतीष्ट)
अमणाम (दुक्ख)
अमणाम (अणिट्ठ)
अमणामस्सर (अणिट्ठस्सर)
अमणुण्ण (अणिट्ठ)
अमणुण्णस्सर (हीणस्सर)
अमनोज्ञ (फरुस)
अमम (अणासव)
अमम (संत)
अमर (सिद्ध)
अमर (देव)
अमाघाय (अहिंसा)
अमाण (पृ १५)
अमाया (पृ १५)
अमुच्छा (लाघविय)
अमुत्ति (परिग्गह)
अमुय (अण्णाय)
अमूढ (पृ १५)

अवगाढ (पृ १७)
अवगाढावगाढ (आइण्ण)
अवभास (ओभास)
अवगाहू (स्पर्शना)
अवगिरण (उस्सग्ग)
अवग्गह (उग्गह)
अवज्ञा (अश्लाघा)
अवट्ठाण (पतिट्ठा)
अवट्ठिय (धुव)
अवट्ठिय (फासिय)
अवड्ढ (पृ १७)
अवतंस (मंदर)
अवतरति (उवेति)
अवत्थग (अलिय)
अवत्था (पृ १८)
अवत्था (पतिट्ठा)
अवत्थाण (अवत्था)
अवत्थित (अचल)
अवत्थिय (असाहस)
अवत्थु (अलिय)
अवदात (पृ १८)
अवद्य (पृ १८)
अवधान (पृ १८)
अवधारण (उग्गह)
अवधावन (लोढन)
अवधि (अवधान)
अवधित (बोधित)
अवन (पृ १८)
अवबोह (ववसाय)
अवमट्ठ (रहस्स)
अवमाणण (अक्कोस)
अवमाणित (परिभीत)
अवमण्णति (हीलेति)
अवमण्णति (परिभासति)
अवय (णीय)
अवयव (अंस)
अवयव (कला)
अवलंबण (उग्गह)
अवलोव (अलिय)
अवसक्कित (उट्ठित)
अवसर (पृ १८)
अवसर (वेल)
अवसर (योग)
अवसव्व (वाम)
अवसारित (उट्ठित)
अवस्थारूपकाल (भूमि)
अवस्सकम्म (पावकम्मनिसेह किरिया)
अवस्सकरण (आवस्सग)
अवस्सकरणिज्ज (आवस्सय)
अवस्सकायव्व (आवस्सग)
अवस्सकिरिया (पावकम्मनिसेह किरिया)
अवहड (खीण)
अवहार (अविप्पणास)
अवहीय (अलिय)
अवाय (पृ १८)
अविकम्पित (केवल)
अविगतचित्त (अविमनस्)
अविग्गहगमण (अक्कमण)
अविचालित (अपूर्व)
अविच्चुति (अरण)

उद्द्वेति (अभिहणति)
उद्द्वेयव्व (हंतव्व)
उद्दामित (पृ ३५)
उद्दिट्ठ (पृ ३५)
उद्दिष्ट (पृ ३५)
उद्दूढ (पृ ३६)
उद्धंसण (आओसण)
उद्धरण (कड्ढण)
उद्धर्षणा (आक्रोश)
उद्धार (हत्या)
उद्धारणा (धारणववहार)
उद्धिय (ओहय)
उद्धियकंटय (ओहयकंटय)
उद्धुय (उक्किट्ठ)
उद्धृत (पृ ३६)
उद्बुद्ध (फुल्ल)
उद्भिन्न (फुल्ल)
उद्यतविहारिन् (संविग्न)
उद्योगवद् (व्यवसायिन्)
उन्नय (मोहणिज्जकम्म)
उन्नाम (मोहणिज्जकम्म)
उन्निद्र (फुल्ल)
उन्मिषित (फुल्ल)
उन्मीलित (फुल्ल)
उपक (पवपाश)
उपकड्ढित (उल्लोइत)
उपकार (गुण)
उपचार (आवेश)
उपणत (उल्लोइत)
उपणद्ध (उल्लोइत)
उपदेश (प्रवचन)
उपदेश (दर्शन)
उपदेश (निमित्त)
उपदेस (पृ ३६)
उपधि (माया)
उपनीत (भणित)
उपनीयते (पृ ३६)
उपपदरिसिते (उपनीयते)
उपपद्यते (पयाति)
उपयोग (भाव)
उपयोग (पृ ३६)
उपयोग (ज्ञान)
उपयोग (पृ ३६)
उपल (पासाण)
उपलब्ध (विदित)
उपलभते (शृणोति)
उपलभते (गृह्णाति)
उपलोलित (उल्लोइत)
उपवत्त (उल्लोइत)
उपवधू (पत्नि)
उपवप्पित (उल्लोइत)
उपशान्त (शान्त)
उपश्रा (पृ ३६)
उपसारित (उल्लोइत)
उपात्त (बद्ध)
उपादान (आय)
उपाय (प्रयोग)
उप्पज्जते (पृ ३६)
उप्पल (पदुम)
उप्पल (पृ ३६)
उप्पाडेहि (पहर)
उप्पायण (पृ ३७)

कंतत्ता (इट्ठत्ता)
कंता (पत्ति)
कंति (अहिंसा)
कंति (पृ ४३)
कदंति (वणंति)
कदण (पृ ४३)
कंदप्प (णंदी)
कंदमाणी (रोयमाणी)
कंदल (पदुम)
कंदित (रुण्ण)
कंदित (हक्कार)
कंदूग (केज्जूर)
कंपेति (अंचेति)
कक्क (पृ ४३)
कक्क (पृ ४३)
कक्क (माया)
कक्क (मोहणिज्जकम्म)
कक्कणा (अलिय)
कक्कव (गुलोवलद्धीय)
कक्करण (कूजण)
कक्कस (पृ ४३)
कक्कस (उज्जल)
कक्कस (दारुण)
कक्कससद्द (दारुणसद्द)
कक्कुडिगा (लोमसिका)
कक्कुस (तुस)
कक्खड (उज्जल)
कक्खडी (पृ ४३)
कक्खडीभूत (पुराण)
कच्छभ (राहु)
कज्ज (पृ ४३)
कज्ज (कारण)
कज्जोपक (हीक)
कट्टुक (ग्राम्यवचन)
कट्ठ (वाया)
कठिन (कक्खडी)
कडग (हत्थिक)
कडग (पृ ४३)
कडग-मद्दण (पाणवह)
कडच्छुकी (दव्वी)
कडपल्ल (पृ ४३)
कडि-उपक (कडीय)
कडीय (पृ ४३)
कडुय (उज्जल)
कडुय (कक्कस)
कड्डिति (णिकड्डति)
कढण (पृ ४३)
कण्णकोवग (कुंडल)
कण्णखीलक (कुंडल)
कण्णधार (निज्जामय)
कण्णपील (कुंडल)
कण्णपूर (कुंडल)
कण्णलोडक (कुंडल)
कण्णा (दारिया)
कण्हं (पृ ४४)
कण्हराति (पृ ४४)
कण्हसप्प (राहु)
कत (अतिवत्त)
कतकज्ज (कतत्थ)
कतत्थ (पृ ४४)
कतपुण्ण (णियत)
कति (समण)

कायगुत्ति (सम्मारियकाय)
कायर (कीव)
कायोत्सर्ग (व्युत्सर्ग)
कारंडय (मयूर)
कारग (कारण)
कारण (पृ ४७)
कारण (स्थाम)
कारण (नियाम)
कारण (निमित्त)
कारण (अत्थ)
कारण (लिंग)
कारण (कज्ज)
कारण (हेउ)
कारणोवएस (हेउणोवएस)
कार्पटिक (धूर्त)
काल (पृ ४७)
काल (अद्धा)
कालक (कण्ह)
कालक (गुरुक)
काहापण (पृ ४७)
किइकम्म (सक्कार)
किंकर (दास)
किंचि (रहस्स)
किट्टंति (रमंति)
किट्टते (पृ ४७)
किट्टिय (फासिय)
किट्टेइ (फासेइ)
किट्टेमि (आइक्खामि)
किडिकिडियाभूय (सुक्क)
किणिय (बाण)
कितबुद्धि (कुंबुद्धिक)

कितिकम्म (वंदणग)
कित्तइस्सामि (पृ ४७)
कित्तण (पृ ४७)
कित्ति (पृ ४७)
कित्ति (अहिंसा)
कित्तित (वण्णित)
किब्बिस (अलिय)
किब्बिस (माया)
किब्बिसिय (मोहणिज्जकम्म)
किरियंति (उत्पादयंति)
किरीट (तिरीड)
किलंत (दुब्बल)
किलामिज्जमाण (आउडिज्जमाण)
किलामेज्ज (अभिहणेज्ज)
किलिट्ठ (कलुस)
किलिम (नपुंसक)
किलेस (कम्म)
किव्विस (पृ ४७)
किस (कस)
किस (सुक्क)
किसिण (कण्ह)
किस्सते (भण्ण)
कीडंति (रमंति)
कीर्ति (श्लोक)
कीलंति (रमंति)
कीव (पृ ४८)
कुंचि (पृ ४८)
कुंजर (मातंग)
कुंजित (सब्द)
कुंडग (अरंजर)
कुंडल (पृ ४८)

कुंभ (जावा)
कुंभीकपंडक (णपुसक)
कुच्छति (पृ ४८)
कुच्छिधार (भिज्जामय)
कुट (घट)
कुटिल (कुंचि)
कुटिल (वक्र)
कुटुंब (कुल)
कुट्टण (पृ ४८)
कुट्टित (पिच्चिय)
कुट्टित (छिन्न)
कुड्मल (मुकुल)
कुठारक (अरंजर)
कुथित (विध्व)
कुब्ज (पृ ४८)
कुब्ब (पृ ४८)
कुब्जिक (कुब्ज)
कुमारी (दारिया)
कुमुद (पदुम)
कुमुय (उप्पल)
कुम्भ (घट)
कुरवक (कुडल)
कुरुय (माया)
कुरुय (कक्क)
कुरुय (मोहणिज्जकम्म)
कुल (पृ ४८)
कुल (संघ)
कुलमसि (अविण्णावाण)
कुवलय (पदुम)
कुविय (रुट्ठ)
कुविय (आसुरत्त)

कुव्वइ (आवहंति)
कुव्विज्ज (पउंजेज्ज)
कुशल (पृ ४८)
कुसल (देसकालण्ण)
कुसल (छेय)
कुसीलसंसग्गि (अणायतण)
कुसुम (पुप्फ)
कुह (दुम)
कुहित (वावण्ण)
कुहिय (दोसीण)
कूअण (पृ ४८)
कूट (माया)
कूड (पृ ४९)
कूड (अलिय)
कूड (उक्कंचण)
कूड (मोहणिज्जकम्म)
कूड (पदपाश)
कूड (अविण्णावाण)
कूर (ओयण)
कूरिकड (अविण्णावाण)
कूवित (विकूजित)
कूविय (रसिय)
कृत (चेतित)
कृत (निष्ठित)
कृत्स्न (पृ ४९)
कृत्स्न (अशेष)
कृत्स्न (सर्व)
कृश (पृ ४९)
केज्जूर (पृ ४९)
केतन पृ ४९)
केतु (पृ ४९)

केवल (पृ ४६)
केवलणाण (केवल)
केवलि (अरह)
केवलि (सिद्ध)
केवलिठाण (अहिंसा)
कोटक (तुस)
कोकणय (उप्पल)
कोज्झक (पउम)
कोट्टिब (णावा)
कोट्टिम (डिप्फर)
कोट्ठ (आरक्खा)
कोडि (अस्सि)
कोप (कोध)
कोमल (तवणय)
कोरक (मुकुल)
कोलाहलभूय (हाहाभूय)
कोव (कोह)
कोव (मोहणिज्जकम्म)
कोह (४६)
कोह (अधम्मत्थिकाय)
कोह (मोहणिज्जकम्म)
कोहनिग्गह (खमा)
कोहविवेग (धम्मत्थिकाय)
कौमुदी (चन्द्रिका)
क्मति (पृ ४६)
क्रिया (एजन)
क्रिया (पृ ५०)
क्रिया (योग)
क्रीडन (विहरण)
क्रोध (पृ ५०)
क्षपण (अणगार)
क्षपणा (पृ ५०)
क्षपित (क्षामित)
क्षाम (कुब्ब)
क्षामित (पृ ५०)
क्षिप्त (पृ ५०)
क्षिप्त (विरल्लिय)
क्षिप्त (मुक्क)
क्षिप्तचित्त (खित्त)
क्षुण्ण (कुशल)
क्षुद्र (पृ ५०)
खइय (अतिचत्त)
खंड (फुडित)
खंड (अंग)
खंडणा (विराहणा)
खंडित (पृ ५०)
खंडिसए (चालिसए)
खंत (पृ ५०)
खंत (भिक्खु)
खंत (समण)
खंति (अहिंसा)
खंध (गण)
खज्जमाण (नस्समाण)
खट्टा (सेज्जा)
खट्टिक (सौकरिक)
खड्ग (हत्थिक)
खड्डुग (हत्थखड्डुक)
खणता (रमणी)
खण्ड (खेव)
खतय (राहु)
खत्तपक (काहापण)
खत्तियकम्मक (गंडूपक)

खत्तियधम्मका (खिंखिणिका)
खद्ध (पृ ५०)
खम (हिय)
खमइ (सहइ)
खमग (भिक्खु)
खमति (पृ ५०)
खमा (पृ ५०)
खमिति (पृ ५१)
खर (पृ ५१)
खर (उज्जल)
खर (निट्ठुर)
खरय (राहु)
खलक (रस)
खलणा (पडिसेवणा)
खलुंक (पृ ५१)
खवण (विगिंचण)
खवण (झोसण)
खविय (खीण)
खह (आगासत्थिकाय)
खाइम (असण)
खाखट्टिका (दीहसक्कुलिका)
खात (पृ ५१)
खाति (जेमेति)
खामिय (पृ ५१)
खार (डिम्ब)
खिंखिणिका (पृ ५१)
खिंखिणिका (पामुद्दिका)
खिंसइ (पृ ५१)
खिंसण (अक्कोस)
खिंसणा (हीलणा)
खिंसणा (इंखिणी)
खिंसणिज्ज (हीलणिज्ज)
खिंसति (हीलेति)
खिंसिज्जमाणी (हीलिज्जमाणी)
खिंसिय (घसिय)
खिज्जणिया (पृ ५१)
खित्त (उक्कंपित)
खिल (अंग)
खिलीभूत (गाढीकय)
खीण (पृ ५१)
खीणंतराय (अणंतराय)
खीणक्कोह (अक्कोह)
खीणगोय (अगोय)
खीणनाम (अणाम)
खीणमाण (अमाण)
खीणमाया (अमाया)
खीणमोह (अमोह)
खीणलोह (अलोह)
खीणवंस (महक्कय)
खीणवेयण (अवेयण)
खीणाउय (अणाउय)
खीणावरण (अणावरण)
खीर (दुद्ध)
खुडित (रहस्स)
खुड्डतर (पृ ५१)
खुड्डलक (पृ ५१)
खुद्द (पाव)
खुह (कम्म)
खुह (पाव)
खेत्तण्ण (देसकालण्ण)
खेम (पृ ५२)
खेम (पृ ५२)

गय (पृ ५३)
गय (विचल)
गय (णाय)
गय (मातंग)
गयतेय (हयतेय)
गरहणा (हीलणा)
गरहति (कुच्छति)
गरहिज्जमाणी (हीलिज्जमाणी)
गरहित (पृ ५३)
गरिहति (हीलेति)
गरिहा (आलोयणा)
गरिहा (पडिक्कमण)
गरिहिज्जइ (आलोइज्जइ)
गरुलक (तिरीड)
गर्व (माण)
गर्हित (अवद्य)
गलइ (सडइ)
गलंत (चंचल)
गलन (पृ ५३)
गलि (गडि)
गलि (खलुंक)
गलि (तडि)
गलियकंटय (ओहयकंटय)
गलिवद्द (बुग्गव)
गवेषणा (ईहा)
गवेसण (ईहा)
गवेसणा (आभिणिबोहिय)
गवेसणा (आभोग)
गवेसणा (एसणा)
गवेसि (अत्थि)
गवेसिय (अन्विष्ट)
गव्व (माण)
गब्भ (मोहणिज्जकम्म)
गहण (पृ ५३)
गहण (अलिय)
गहण (एसणा)
गहण (माया)
गहण (मोहणिज्जकम्म)
गहणपगार (माण)
गहणा (गहण)
गहिय (बद्ध)
गहियट्ठ (लद्धट्ठ)
गाढ (लोलुग)
गाढलीण (अणुपविट्ठ)
गाढलीण (अतिगत)
गाढीकय (पृ ५३)
गाढोपगूढ (अणुपविट्ठ)
गाढोपगूढ (अतिगत)
गामधम्मतत्ति (अबंभ)
गार्घ्य (राग)
गार्घ्य (लोभ)
गाल (गलन)
गाह (विट्ठ)
गाहा (पृ ५४)
गिज्झइ (सज्जइ)
गिज्झिय (सज्जिय)
गिण्हाति (भिणति)
गिद्ध (पृ ५४)
गिद्ध (मुच्छिय)
गिद्ध (लोलुय)
गिद्धि (परिज्झा)
गिद्धि (मुच्छा)

छज्जिय (पृ ६०)
छड्डण (विउस्सग्ग)
छड्डुण (उस्सग्ग)
छड्डित (फुलित)
छड्डित (पक्खित्त)
छड्डिय (पृ ६०)
छड्डे (पृ ६०)
छड्डेति (वमेंति)
छड्डेहि (चयाहि)
छण (अच्च)
छण (उस्सय)
छन्द (पृ ६१)
छन्न (पृ ६१)
छर्दित (पृ ६१)
छलिक (मणाम)
छविकर (पावय)
छविच्छेय (पाणवह)
छात (पिवासित)
छायण (णिहण)
छाया (जुइ)
छाया (पृ ६१)
छाया (कंति)
छासि (तक्क)
छिद (पहर)
छिदंत (पृ ६१)
छिदंति (पृ ६१)
छिज्जमाण (नस्समाण)
छिड्ड (पृ ६१)
छिड्ड (आगासत्थिकाय)
छिण्ण (खत)
छिण्णग्ग (णिच्छूम)
छिण्णवंसण (वविय)
छिण्णसोय (संत)
छिद्द (अन्तर)
छिद्द (पृ ६१)
छिद्र (सन्धि)
छिन्न (कप्पिय)
छिन्न (पृ ६१)
छिन्नंति (पृ ६१)
छिन्नसोय (अणासव)
छुद्ध (णिच्छूढ)
छुभति (उवयंति)
छेत्ता (हंता)
छेद (पृ ६१)
छेदन (आकुट्टि)
छेय (उक्किट्ठ)
छेय (पृ ६२)
छेयकर (अण्हयकर)
छेयण (फुडण)
छेयणकरी (पृ ६२)
जइ (भिक्खु)
जइण (उक्किट्ठ)
जइण (सिग्घ)
जंतु (जीवत्थिकाय)
जंपति (आचिक्खति)
जंबू (पृ ६२)
जंबूका (कथी)
जंबूफलक (करोडक)
जग्गंतक (पृ ६२)
जघन्य (अवर)
जघन्य (हिट्ठिम)
जज्जर (जुण्ण)

जड (मंद)
जडिलय (राहु)
जड्डु (पृ ६२)
जड (छड्डिय)
जणकलकल (जणसमद्द)
जणपद (रज्ज)
जणबोल (जणसंमद्द)
जणवूह (जणसंमद्द)
जणसंमद्द (पृ ६२)
जणसण्णिवाय (जणसंमद्द)
जणुक्कलिया (जणसंमद्द)
जणुम्मि (जणसंमद्द)
जण्ण (पृ ६२)
जण्ण (उस्सय)
जण्णकत (बंभण)
जण्णकारि (बंभण)
जण्णमुंड (बंभण)
जत (वीर)
जति (भिक्खु)
जतितव्व (घडितव्व)
जन्म (भव)
जन्मपर्याय (गृहिपर्याय)
जय (उवसंत)
जय (जीवत्थिकाय)
जयणा (अहिंसा)
जरठ (पुराण)
जरती (जरत्का)
जरत्का (पृ ६२)
जरासुर (महुज्जय)
जराविमुक्क (सिद्ध)
जलण (अग्नि)
जलन (जलण)
जलपानस्थान (तीर्थ)
जलरुह (कमल)
जलहर (बलाहक)
जलूग (कुमपुप्फिया)
जलोदर (दउदर)
जल्ल (पृ ६२)
जल्लिय (पृ ६३)
जवइत्तय (पृ ६३)
जवण (उक्किट्ठ)
जवित्तय (पृ ६३)
जस (पृ ६३)
जसंस (सिद्धत्थ)
जसंसि (ओयंसि)
जसवती (सेसवती)
जसोकामि (पूयणट्ठि)
जसोधरा (जंबू)
जहाभूत (पृ ६३)
जहाहि (चयाहि)
जहेज्ज (चएज्ज)
जाइविमुक्क (सिद्ध)
जाणइ (पृ ६३)
जाणंति (मन्नंति)
जाणितव्वगसामत्थजुत्त (विण्णत्तिकारग)
जाणुकोप्परमाय (बंभा)
जात (पृ ६३)
जातवेय (अग्नि)
जाम (पृ ६३)
जाय ([illegible])
जायकोउहल्ल (जायसड्ढ)

जोति (अग्गि)
जोतिस (संवत्सर)
जोसेज्ज (परिक्कमिज्ज)
जोव्वण (पृ ६५)
जोव्वणक (जोव्वण)
जोव्वणत्थ (जुवाण)
जोव्वणत्थ (जोव्वण)
जोसिता (पत्ति)
ज्ञा (ज्ञान)
ज्ञान (संविद्)
ज्ञाप्यते (साध्यते)
ज्येष्ठ (पर)
ज्येष्ठावग्रह (प्रथमसमवसरण)
ज्योत्स्ना (चन्द्रिका)
झंझक (हस्थिक)
झपित (उक्कंपित)
झवणा (अज्झयण)
झवित (णिप्पीलित)
झविय (खामिय)
झाणपर (वीण)
झिज्झा (लोभ)
झिल्लिरी (तिसरा)
झीण (पृ ६६)
झीण (णिप्पीलित)
झीण (महव्वय)
झीण (अतिवस)
झुसिर (तुच्छ)
झुसिर (आगासत्थिकाय)
झमित (भग्ग)
झोस (पृ ६६)
झोसण (आभोगण)
झोसण (पृ ६६)
टिट्टियावेइ (उब्बतेइ)
ठप्प (पृ ६६)
ठवणा (धारणा)
ठवणा (णिक्खेव)
ठवणा (अणुण्णा)
ठवणा (अवत्था)
ठवणा (पज्जोसवणा)
ठवणिज्ज (ठप्प)
ठवणी (अवत्था)
ठविय (णिक्खित्त)
ठवेति (णिहित)
ठाण (णिसीहिया)
ठाण (पतिट्ठा)
ठाण (पृ ६६)
ठाण (पृ ६६)
ठाण (अचल)
ठाण (उवसग)
ठाण (णाम)
ठाणट्ठित (ध्रुवक)
ठावणा (पतिट्ठा)
ठिइ (विहि)
ठिइकरण (अणुण्णा)
ठित (पृ ६६)
ठिति (अहिंसा)
ठिति (पृ ६६)
ठिति (अवत्था)
ठिति (पतिट्ठा)
ठिय (सिक्खिय)
डंड (पृ ६६)

डंभण	(कक्क)	णाम्मत	(पासाण)
डज्झति	(रज्झति)	णामेति	(अंबेति)
डमर	(समर)	णाय	(पृ ६८)
डमर	(डिंब)	णाय	(पृ ६८)
डमर	(कलह)	णाय	(अणुण्णा)
डहरक	(खुड्डलक)	णायय	(मित्त)
डिंब	(पृ ६६)	णारी	(पत्ति)
डिप्फर	(पृ ६६)	णावा	(पृ ६८)
डोव	(पाण)	णास	(णिक्खेव)
णंगल	(पृ ६७)	णिइय	(धुव)
णंदि	(पृ ६७)	णिउण	(दक्ख)
णंदिय	(हट्ठचित्त)	णिंदणा	(इंखिणी)
णग	(पृ ६७)	णिकडि	(उवधि)
णट्ठ	(पृ ६७)	णिकड्ढति	(णीहारेति)
णट्ठ	(णिहय)	णिकड्ढति	(पृ ६८)
णत्थिभाव	(असपज्जाय)	णिकम्मदरिसि	(पृ ६८)
णपुंसक	(पृ ६७)	णिकाय	(वंद)
णमंसइ	(आढाइ)	णिकायण	(छंदण)
णमणी	(अणुण्णा)	णिकुज्जित	(णिस्सारित)
णमोक्कत	(पृ ६७)	णिकुज्जित	(णिम्मज्जित)
णरिंद	(पृ ६७)	णिक्कंखित	(णिस्संकित)
णरेतर	(णपुंसक)	णिक्कड्ढित	(णिस्सारित)
णलिण	(उप्पल)	णिक्कड्ढित	(णिम्मज्जित)
णलिण	(पदुम)	णिक्खंत	(पृ ६८)
णाण	(मइ)	णिक्खणंत	(खिवंत)
णाण	(पृ ६७)	णिक्खण्ण	(णिम्मज्जित)
णाणि	(मुणि)	णिक्खिवण	(णिक्खिवण)
णाणि	(पृ ६८)	णिक्खित्त	(णिस्सारित)
णाम	(पृ ६८)	णिक्खित्त	(पृ ६८)
णामण	(उवसमण)	णिक्खुस्सति	(णीहारेति)
णामणी	(अणुण्णा)	णिक्खेव	(पृ ६९)

णिगलित (णिप्पीलित)
णिग्गंथ (समण)
णिग्गंथ (माहण)
णिग्गत (उट्ठित)
णिग्गत (णिच्छुढ)
णिग्गलित (णिक्खामित)
णिच्च (धुव)
णिच्चमंडिया (मंडू)
णिच्छय (पृ ६९)
णिच्छयं णाहिति (चिंतेहिति)
णिच्छयत्थपडिवत्ति (ववसाय)
णिच्छालित (णिस्सारित)
णिच्छिद्दु (धण)
णिच्छिद्दय (णियय)
णिच्छुढ (पृ ६९)
णिच्छुढ (णिस्सारित)
णिच्छुढ (णिम्मज्जित)
णिच्छोडण (पृ ६९)
णिच्छोलित (णिस्सारित)
णिच्छोलित (णिम्मज्जित)
णिछुढ (छुढ)
णिज्जरा (अणुण्णा)
णिज्जरा (पृ ६९)
णिज्जवणा (पुच्छणा)
णिज्जाण (मोत्ति)
णिज्जूढ (अवितथ)
णिज्झायति (पेक्खते)
णिट्ठित (महण्णव)
णिट्ठित (अतिवत्त)
णिट्ठियट्ठ (पंडित)
णिट्ठुत (णिम्मज्जित)
णिट्ठुर (उक्कल)
णिट्ठुर (कवल)
णिट्ठुर (कक्कस)
णिट्ठुर (खर)
णिड्डाल (पृ ६९)
णिड्डालमासक (पृ ६९)
णिड्डील (णिस्सारित)
णिण्णामित (णिस्सारित)
णिण्णीत (णिम्मज्जित)
णिण्णोहक (पृ ६९)
णितिय (धुव)
णितिय (पृ ६९)
णित्थणित (णिम्मज्जित)
णित्थुढ (णिम्मज्जित)
णिदसण (पृ ६९)
णिदसिय (आघविय)
णिदरिसण (णाय)
णिद्दीण (णिम्मज्जित)
णिद्धाडित (णिस्सारित)
णिद्धाडित (णिम्मज्जित)
णिद्धावलि (पद्मावलि)
णिप्पकंप (धुवक)
णिप्पतित (णिस्सारित)
णिप्पयोग (सिद्ध)
णिप्पीलित (पृ ७०)
णिप्फत्ति (पृ ७०)
णिप्फल (अतिवत्त)
णिप्फाडित (णिस्सारित)
णिप्फाडित (णिम्मज्जित)
णिप्फीलित (णिस्सारित)
णिप्फेडित (णिम्मज्जित)

णिक्कविक्कुज्जमाण (कुज्जमाण)
णिक्कासित (पृ ७०)
णिमंतण (छंदण)
णिम्मंसक (पृ ७०)
णिम्मज्जित (पृ ७०)
णिम्मट्ठ (रहस्स)
णिम्मम (णीरागदोस)
णिम्मल (णिट्ठियट्ठ)
णिम्मल (अरय)
णिम्मल (सेत)
णियक्खेति (पेक्खते)
णियडि (उक्कंचण)
णियडिजोग (उवधि)
णियत (पृ ७०)
णियत (अचल)
णियत्ति (दुगुंछणा)
णियय (पृ ७०)
णियया (अंडू)
णिरणुकंप (पाव)
णिरत्ति (रयणी)
णिराकत (णिस्सारित)
णिराकार (अपमाण)
णिरागत (वीण)
णिराणद (णिम्मज्जित)
णिराणत (णिस्सारित)
णिरिक्खति (पेक्खते)
णिरोग (हट्ठ)
णिलिक्खति (पेक्खते)
णिलुंचिय (कम्म)
णिलुलित (णिम्मज्जित)
णिलूसित (णिस्सारित)
णिल्लक्खित (णिम्मज्जित)
णिल्लवेति (वोसिरति)
णिल्लाणित (उद्धिय)
णिल्लिक्खण (णिच्छोडण)
णिल्लिखित (उद्धित)
णिल्लुक्कित (णिम्मज्जित)
णिल्लोक्कित (उद्धित)
णिल्लोसित (णिस्सारित)
णिवूढ (विउट्ठ)
णिवालित (णिम्मज्जित)
णिव्वजीयंति (पृ ७०)
णिव्वट्टित (णिम्मज्जित)
णिव्वत (महव्वय)
णिव्वत्तणम (उप्पायण)
णिव्वर (धुवक)
णिव्वर (छिद्द)
णिव्वलक (णिच्छोडण)
णिव्वाघाय (अणुत्तर)
णिव्वाडित (णिस्सारित)
णिव्वाण (पृ ७१)
णिव्वाणि (संधि)
णिव्वाणिकर (पृ ७१)
णिव्वाधित (हट्ठ)
णिव्वामित (णिस्सारित)
णिव्वासित (णिम्मज्जित)
णिव्विट्ठ (णिम्मज्जित)
णिव्वितिगिच्छत (णिस्संकित)
णिव्वुत (सिद्ध)
णिव्वुत (पृ ७१)
णिव्वुतिकर (मधुर)
णिव्वुयमत्त (सिद्धिगत)

-तच्चावाय	(दिट्ठिवाय)	तण्हाइत	(पिवासित)
-तच्चित्त	(पृ ७४)	तण्हा-मेही	(अभिज्झावाण)
-तच्चित्त	(अज्झोववण्ण)	तत्तिव्वज्झवसाण	(तच्चित्त)
तच्छण	(फुडण)	तत्थ	(पृ ७३)
-तज्जण	(हीलण)	तत्थ	(भीय)
तज्जण	(खिसण)	तत्थ	(वियंजित)
तज्जण	(अक्कोस)	तत्थ-तत्थ	(पृ ७२)
तज्जण	(कुट्टण)	तत्व	(पृ ७३)
तज्जिज्जमाण	(आउडिज्जमाण)	तदज्झवसिय	(तच्चित्त)
तज्जिज्जमाणी	(हीलिज्जमाणी)	तदट्ठोवउत्त	(तच्चित्त)
तज्जित	(चोदित)	तदप्पियकरण	(तच्चित्त)
तज्जेंति	(पृ ७४)	तदुभय	(अणुण्णा)
तज्जेज्ज	(आओसेज्ज)	तद्दिट्ठि	(पृ ७२)
तज्जेति	(अभिहणति)	तनु	(बोंदि)
तज्जेमाण	(ओबीलेमाण)	तनु	(कृश)
तट्टक	(पृ ७३)	तनुतरशरीर	(पृ ७३)
-तण	(काय)	तन्निवेसण	(तद्दिट्ठि)
तणपल्ल	(कडपल्ल)	तप्पक	(भाया)
-तणसोल्लिक	(पउम)	तप्पण	(तुस)
तणु	(ईसिपब्भारपुढवी)	तप्पुरक्कार	(तद्दिट्ठि)
तणुतणू	(ईसिपब्भारपुढवी)	तब्भावणाभाविय	(तच्चित्त)
-तणुयतर	(ईसिपब्भारपुढवी)	तम	(तमुक्काय)
-तणूयरी	(ईसिपब्भारपुढवी)	तमस्	(पृ ७३)
-तण्णक	(वसभ)	तमुक्काय	(पृ ७३)
-तण्णक	(वच्छक)	तम्मण	(अज्झोववण्ण)
-तण्णक	(बालक)	तम्मण	(तच्चित्त)
तण्णिका	(दारिया)	तम्मोत्ति	(तद्दिट्ठि)
-तण्हा	(मोहणिज्जकम्म)	तरच्छ	(पृ ७४)
तण्हा	(लोभ)	तरु	(दुम)
-तण्हा	(परिग्गह)	तरुण	(जोव्वण)
-तण्हा	(पृ ७३)	तरुणय	(पृ ७४)

निट्ठुर (उज्जल)
निण्णाम (अनाम)
निदरिसण (णाय)
निदाण (संताण)
निद्देस (आणा)
निद्देस (उववाय)
निद्धम्म (पाव)
निधान (पृ ८८)
निधि (निधान)
निधुवन (रति)
निन्नेहबंधण (संजत)
निन्हव (आह्वान)
निपुण (कुशल)
निप्पंक (अच्छ)
निप्पच्चक्खाण (निस्सील)
निप्परिग्गहरुइ (संजत)
निप्पिवास (पाव)
निप्पीलए (आवीलए)
निब्भंच्छण (आओसण)
निब्भंछण (अक्कोस)
निब्भच्छेज्ज (आओसेज्ज)
निमंतण (छंद)
निमंत्रण (निकाय)
निमित्त (पृ ८८)
निमित्त (मूल)
निमित्त (लिंग)
निमित्त (हेतु)
निमित्तंति (आरभंति)
निम्न (कुब्ज)
निम्मंस (सुक्क)
निम्मम (संजत)
निम्मल (खीण)
निम्मल (अच्छ)
निम्मल (संख)
निम्मलतर (अहिंसा)
निम्माण (अमाण)
निम्माया (अमाया)
निम्मेर (निस्सील)
निम्मोह (अमोह)
नियम (मित्त)
नियडि (पलिउंचण)
नियडि (उक्कंचण)
नियडि (मोहणिज्जकम्म)
नियडि (माया)
नियडि (कक्क)
नियडिआयरण (कूड)
नियडिकम्म (अदिण्णादाण)
नियडिल्ल (वंक)
नियत (ध्रुव)
नियति (अलिय)
नियत्ति (पडिक्कमण)
नियम (पच्चक्खाण)
नियर (गण)
नियाग (पृ ८८)
नियाण (पृ ८८)
नियुक्त (वावड)
नियोग (अणुओग)
नियोग (पृ ८८)
नियोजना (योजना)
निरंतर (घण)
निरंतराय (अणंतराय)
निरंस (परमाणु)

निव्वाघाय (अणंत)
निव्वाण (अहिंसा)
निव्वाण (मोत्ति)
निव्वाण (संति)
निव्वाण (८९)
निव्वाणमग्ग (सिद्धिमग्ग)
निव्विण्ण (संत)
निव्विण्णाण (जड्ड)
निव्वुइ (अहिंसा)
निव्वुइकर (मणुण्ण)
निव्वुड (पृ ८९)
निव्वेयण (अवेयण)
निशाकर (चन्द्र)
निशान्त (शान्त)
निश्चय (पृ ८९)
निश्चय (अर्थाध्यवसाय)
निषण्ण (पृ ८९)
निष्कंटक (पृ ८९)
निष्कवच (निष्कंटक)
निष्कारण (अनर्थ)
निष्कारणप्रतिसेविन् (वक्र)
निष्ठित (पृ ८९)
निष्ठुर (ग्राम्यवचन)
निष्पक (पृ ८९)
निष्पाद्यते (साध्यते)
निष्प्रदेश (परमाणु)
निसृजति (पृ ८९)
निसग (साधु)
निसर्ग (८९)
निसीहिया (ठाण)
निस्संग (संवत)
निस्संस (पाव)
निस्सरण (निग्गमण)
निस्सा (पृ ९०)
निस्सील (पृ ९०)
निस्सेसिय (हियकामग)
निहतकंटय (ओहयकंटय)
निहाण (सण्णिहि)
निहाण (परिग्गह)
निहि (सण्णिहि)
नीय (पृ ९०)
नीय (चंडाल)
नीर (पयस्)
नीरय (निट्ठियट्ठ)
नील (पृ ९०)
नीसेस (हिय)
नूम (अलिय)
नैकृतिक (धूर्त)
नैत्यिक (ध्रुव)
नैषेधिकी (स्थान)
न्यास (निक्षेप)
न्यास (निधान)
पइट्ठा (धारणा)
पइट्ठा (अहिंसा)
पइट्ठाण (बीय)
पइभय (बोहणय)
पइभय (पाव)
पउंजेज्जा (पृ ९०)
पउम (उप्पल)
पउमकेसरवण्ण (पित्तवण्ण)
पएस (अंग)
पंक (कम्म)

पआसिय वीरिय)
पआसेइ (ओभासेइ)
पभु (पृ ९४)
पभु (इस्सर)
पमत्त (अलस)
पमदा (पत्ति)
पमाण (अग्ग)
पमाण (मेढि)
पमिलायति (पृ ९४)
पमुक्क (पम्हुट्ठ)
पमुच्छित (पम्हुट्ठ)
पमुदित (मुदित)
पमोद (णंदी)
पमोद (मुदिता)
पमोय (अहिंसा)
पम्हुठ (पृ ९४)
पम्हुट्ठ (पृ ९४)
पय (दुद्ध)
पयंड (उज्जल)
पयत्त (पृ ९५)
पयत्त (ओराल)
पयत्तकड (आरंभकड)
पयत्तवद् (पयत)
पयलाइत (वेवित)
पयस् (पृ ९५)
पयाति (पृ ९५)
पयावति (पितामह)
पर (मुख)
पर (पृ ९५)
पर (अज्ज)
परंपरगय (सिद्ध)
परक्कम (जोग)
परक्कम (वीरिय)
परक्कम (जोग)
परक्कम (उट्ठाण)
परक्कमण्णु (देसकालण्ण)
परक्कमितव्व (घडितव्व)
परग्घ (पृ ९५)
परग्घतरक (उज्जयरक)
परज्झ (पृ ९५)
परिघणम्मि गेहि (अविण्णादाण)
परनिमित्तनिप्फण्ण (लिंगिय)
परपरिवाय (अधम्मत्थिकाय)
परपरिवाय (माण)
परपरिवाय (मोहणिज्जकम्म)
परपरिवायविवेग (धम्मत्थिकाय)
परभव-सकामकारय (पाणवह)
परम (पृ ९५)
परमसुइभूय (आयंत)
परमसोमणस्सिय (हट्ठचित्त)
परमाणु (पृ ९५)
परमाणु (अणु)
परमाणुपोग्गल (पोग्गलत्थिकाय)
परमार्थ (तत्त्व)
परमासक (गंडूपक)
परम्मुह (अवकड्ढित)
परलाभ (अविण्णादाण)
परवस (परज्झ)
परहड (अविण्णादाण)
पराजय (अपमाण)
पराजय (विजय)
पराजित (अवकड्ढित)

पविद्धंसति (पमिलायति)
पवियक्खण (संपण्ण)
पवियक्खण (संबुद्ध)
पविसित (पम्हुट्ठ)
पवीलए (आवीलए)
पवेइय (पृ ९९)
पवेदेमि (आइक्खामि)
पव्व (संताण)
पव्व (अंग)
पव्वइज्जा (पृ ९९)
पव्वइय (पृ ९९)
पव्वइय (णिक्खंत)
पव्वइय (समण)
पव्वत (णग)
पव्वतक (पासाण)
पव्वतिंद (मंदर)
पव्वयराय (मंदर)
पव्वयिय (भिक्खु)
पव्वहिज्जमाणी (हीलिज्जमाणी)
पव्वहेति (तज्जेंति)
पव्वाविय (पृ ९९)
पसग (अबंभ)
पसंत (णिहय)
पसंत (संत)
पसतडमर (खेम)
पसतडिंब (खेम)
पसंसण (कित्तण)
पससा (उववूह)
पसण्णबुद्धि (सुबुद्धिक)
पसत्थ (वण्णित)
पसत्थ (सामायिक)
पसव (पुष्फ)
पसारित (वित्थारित)
पसिद्ध (पण्णविय)
पसुत्त (वेवित)
पसूइ (उग्गम)
पहट्ठ (मुदित)
पहर (पृ ९९)
पहाण (अग्ग)
पहाण (परम)
पहारेत्थ (पृ ९९)
पहिज्जते (अतिवत्त)
पहिट्ठ (हसित)
पहीण (अतिवत्त)
पहेण (पृ १००)
पहेण (पाहुड)
पहेणग (पाहुड)
पाअसूचिका (पामुद्दिका)
पाकसासण (सक्क)
पागइत (पज्जोसवणा)
पागडिय (उब्भिण्ण)
पागार (पृ १००)
पाघट्टिका (पामुद्दिका)
पाटयति (ओसारेति)
पाठीण (पृ १००)
पाडल (पउम)
पाढ (सुत्त)
पाण (पृ १००)
पाण (जीव)
पाण (असण)
पाण (जीवत्थिकाय)
पाण (पृ १००)

पाण (चंचल)
पाण (काय)
पाणवह (पृ १००)
पाणाइवाय (अधम्मत्थिकाय)
पाणाइवायवेरमण (धम्मत्थिकाय)
पाणातिपातविरइ (अहिंसा)
पाणिय (रस)
पात (वज्ज)
पात्र (पृ १००)
पात्र (पृ १००)
पात्र (भव्य)
पाद (पृ १००)
पादकलावग (गंडूपक)
पादखडुयक (गंडूपक)
पादफल (आसंवग)
पादव (पृ १०१)
पादोपका (खिखिणिका)
पाप (अवद्य)
पाप (किल्बिस)
पापढक (गंडूपक)
पामुद्दिका (खिखिणिका)
पामुद्दिका (पृ १०१)
पायच्छित्तकरण (उत्तरकरण)
पायव (दुम)
पार (पृ १०१)
पारगमण (पारण)
पारगय (सिद्ध)
पारण (पृ १०१)
पालण (पारण)
पालित (पृ १०१)
पालित्तु (वसित्तु)
पालिय (फासिय)
पाली (पृ १०१)
पालेइ (फासेइ)
पाव (पृ १०१)
पाव (पृ १०१)
पाव (कम्म)
पाव (धुण्ण)
पाव (मल)
पावइ (अभिगच्छति)
पावंति (निअच्छंति)
पावकम्मकरण (अदिण्णादाण)
पावकम्मनिसेहकिरिया (पृ १०२)
पावकम्ममाडेमित (दुक्कड)
पावकोव (पाणवह)
पावण (आय)
पावय (पृ १०२)
पावयण (पवयण)
पावलोभ (पाणवह)
पास (पृ १०२)
पासइ (जाणइ)
पासंडि (भिक्खु)
पासंडि (समण)
पासाण (पृ १०२)
पासादिय (पृ १०२)
पाहुड (पृ १०२)
पिअजंभण (जंभण)
पिंड (पृ १०२)
पिंड (ओह)
पिंड (गण)
पिंड (परिग्गह)
पिंडण (पिंड)

प्रस्ताव	(योग)	फंदणा	(एजणा)
प्राणधारण	(जीवन)	फंदेह	(उच्चलेह)
प्राणिन्	(जीव)	फरल	(काय)
प्रादुष्करण	(आलोचन)	फरुस	(पृ १०८)
प्राप्त	(गत)	फरुस	(निट्ठुर)
प्राप्तनिष्ठ	(सिद्ध)	फरुस	(सिणेहक)
प्राप्तवयस्	(जुवा)	फरुस	(कक्कस)
प्राप्ति	(आय)	फरुस	(उज्जल)
प्राप्ति	(स्पर्शना)	फरुस	(अक्कोस)
प्राप्ति	(पृ १०७)	फरुस	(खर)
प्राप्ति	(लाभ)	फरुसेज्ज	(पंतावेज्ज)
प्राप्यते	(धर्यते)	फल	(रयस्)
प्राभृत	(अधिकरण)	फलकी	(सेज्जा)
प्रायश्चित्त	(विशोधि)	फलगोच्छ	(फलपिंडी)
प्रारंभ	(पट्ठवण)	फलपिंडी	(पृ १०८)
प्रारब्ध	(संतत)	फलमाला	(फलपिंडी)
प्रार्थन	(पीहण)	फला	(फलपिंडी)
प्रार्थना	(छंद)	फलिका	(फलपिंडी)
प्रार्थना	(भाव)	फलिह	(पागार)
प्रार्थना	(अभिकंखा)	फलिह	(आगासत्थिकाय)
प्रार्थयेत्	(संधयेत्)	फाणित	(गुलोवलद्धीय)
प्रासुक	(पृ १०७)	फालिय	(कप्पिय)
प्रीति	(पृ १०७)	फालेंत	(छिदंत)
प्रेक्षण	(पृ १०८)	फासिय	(पृ १०८)
प्रेक्षा	(प्रेक्षण)	फासेह	(पृ १०८)
प्रेक्षित	(चहित)	फुंफक	(वीव)
प्रेम	(विब्ज)	फुट्ट	(सिणेहक)
प्रेरणा	(चोयणा)	फुड	(आइण्ण)
प्रेरयन्ति	(विणयन्ति)	फुडण	(पृ १०८)
प्लव	(नावा)	फुडित	(पृ १०८)
प्लावक	(कम्पिलावण)	फुडीकव्वंति	(सिकांतीयति)

बीहणग (उज्जल)
बीहणय (पृ ११०)
बीहणय (पाव)
बुइय (वण्णित)
बुंदि (काय)
बुज्झइ (जाणइ)
बुज्झइ (सिज्झइ)
बुज्झावेति (पणासेति)
बुज्झेज्ज (पृ ११०)
बुद्ध (नाय)
बुद्ध (सिद्ध)
बुद्ध (फुल्ल)
बुद्ध (पृ ११०)
बुद्ध (भिक्खु)
बुद्धि (अवाय)
बुद्धि (पृ ११०)
बुद्धि (अभिप्पाय)
बुद्धि (प्रणिधान)
बुद्धि (सण्णा)
बुद्धि (अहिंसा)
बुद्धि (धी)
बुद्धिअज्झवसाय (ववसाय)
बुद्धिमत (विसारत)
बेंति (पृ १११)
बोदि (पृ १११)
बोल (डिंब)
बोहि (अहिंसा)
ब्रुवंति (बेंति)
भंग (पृ १११)
भग (पडिसेवणा)
भंज (पहर)
भंजग (दुम)
भंजग (लूसग)
भंजण (फुडण)
भंजणा (विराहणा)
भंजित्तए (चालित्तए)
भंडग (उवहि)
भडण (आयास)
भंडण (कलह)
भंडण (कोह)
भडण (मोहणिज्जकम्म)
भंडण (वुग्गह)
भंत (पृ १११)
भमब्भूय (हाहाभूय)
भभाभूय (हाहाभूय)
भक्खति (चरति)
भक्खते (जेमेति)
भक्ति (पृ १११)
भग्ग (पृ १११)
भग्ग (पृ १११)
भग्ग (छिन्न)
भग्ग (फुडित)
भग्ग (फुलित)
भजना (पृ १११)
भजना (विकल्प)
भट्टित्त (आहेवच्च)
भट्ठ (णट्ठ)
भट्ठ (णिह्णय)
भट्ठतेय (हयतेय)
भणति (आचिक्खति)
भणित (वुत्त)
भणिय (पृ १११)

भेद (जात)
भेद (अंस)
भेद (ठाण)
भेदकर (अण्हयकर)
भेय (पृ ११४)
भेयणकरी (छेयणकरी)
भेसण (पृ ११४)
भोमपुरिस (वाल)
भोगासा (मोहणिज्जकम्म)
भोगासा (लोभ)
भोज्ज (पृ ११४)
भोयण (पृ ११४)
मइ (पृ ११४)
मइ (आभिणिबोहिय)
मइलणा (पडिसेवणा)
मइल्ल (कम्म)
मइल्लिय (जल्लिय)
मउड (तिरीड)
मउलि (गोणस)
मंगल (अहिंसा)
मंगलिज्ज (णिव्वाणिकर)
मंगल्ल (इट्ठ)
मंगल्ल (ओराल)
मंचक (डिप्फर)
मंड (मूल)
मंडलि (गोणस)
मंतुलित (खंडित)
मंतेहिति (चिंतेहिति)
मंथर (अलस)
मंद (पृ ११४)
मंद (बाल)

मंदर (पृ ११४)
मक्खण (उल्लिखण)
मगर (राहु)
मगरक (तिरीड)
मग्ग (अणुण्णा)
मग्ग (आगासत्थिकाय)
मग्ग (आवस्सय)
मग्ग (कप्प)
मग्ग (पवयण)
मग्ग (परूवण)
मग्ग (ववहार)
मग्ग (वीथि)
मग्गइ (अत्थयति)
मग्गण (पृ ११५)
मग्गण (पृ ११५)
मग्गण (आभोगण)
मग्गण (वियालण)
मग्गण (ईहा)
मग्गणा (आभिणिबोहिय)
मग्गणा (आभोग)
मग्गणा (विजय)
मग्गणा (एसणा)
मग्गण्ण (देसकालण्ण)
मग्गत (पृ ११५)
मग्गविदु (देसकालण्ण)
मग्गस्स गतिआगतिण्ण (देसकालण्ण)
मघव (सक्क)
मघा (कण्हराति)
मच्चु (मरण)
मच्चु (पाणवह)
मच्छ (राहु)

मग्गत्थि (बीय)
मधु (अरिट्ठ)
मधुकर (भमर)
मधुर (पृ ११६)
मनन (पृ ११६)
मनस् (चित्त)
मनोज्ञ (उदार)
मन्नति (पृ ११६)
ममत्व (राग)
मम्मण (अलिय)
मय (गय)
मय (चिट्ठ)
मयंग (चंडाल)
मयणिज्ज (पीणणिज्ज)
मयास (चंडाल)
मयूर (पृ ११६)
मरण (पृ ११६)
मरण (भय)
मरणविमुक्क (सिद्ध)
मरणवेमणंस (पाव)
मरणासा (लोभ)
मरणासा (मोहणिज्जकम्म)
मराल (खलुंक)
मराली (गंडि)
मराली (तंडी)
मरिसेसि (खमति)
मरुभूतिक (पासाय)
मर्यादा (अवधान)
मर्यादा (चरण)
मर्यादा (जीत)
मर्यादा (धर्म)
मर्यादा (वेला)
मर्यादा (मेरा)
मर्यादा (सीमा)
मर्यादाव्यवस्थित (वेलाविद्)
मल (पृ ११६)
मल (कम्म)
मलित (अतिवत्त)
मलित (णिम्मंसक)
मलित (महुव्वय)
मलियकंटय (ओहयकंटय)
मल्ल (अल्ल)
मल्लकमूलक (करोडक)
मल्लगभंड (अरंजर)
मसूरक (भिप्फर)
मसृण (श्लक्ष्ण)
महंत (कोह)
महंततर (विच्छिन्नतर)
महंती (अहिंसा)
महंधकार (तमुक्काय)
महग्घ (महत्थ)
महग्घ (परग्घ)
महत्तरक (वच्चयरक)
महस्सरगत (आहेवच्च)
महत्थ (पृ ११६)
महद्धि (परिग्गह)
महब्बल (अइबल)
महब्बल (ओहबल)
महब्भय (पृ ११६)
महब्भय (असात)
महब्भय (पाव)
महब्भय-पवड्ढय (पाव)

मेरा (पाली)
मेरा (ठिति)
मेरा (विहि)
मेरा (कप्प)
मेरा (मज्जाया)
मेरा (सीमा)
मेरु (मंदर)
मेरुक (पासाण)
मेरुवर (णग)
मेलना (पृ १२१)
मेस (दुमपुप्फिया)
मेहन (सागारिक)
मेहराति (कण्हराति)
मेहा (उग्गह)
मेहावि (साहसिक)
मेहावि (पंडिय)
मेहुण (अबंभ)
मेहुण (अधम्मत्थिकाय)
मेहुणवेरमण (धम्मत्थिकाय)
मैथुनाजीवा (मैथुनिकी)
मैथुनिकी (पृ १२१)
मोक्ख (संति)
मोक्ख (सिद्धउपपत्ति)
मोक्खदरिसि (णिकम्मदरिसि)
मोक्ष (धूत)
मोक्ष (नियाग)
मोक्षमार्गगामि (आप्त)
मोक्षमार्गाभिज्ञ (कुशल)
मोचन (निक्षेप)
मोत्ति (पृ १२२)
मोह (अबंभ)

मोहणिज्जकम्म (पृ १२२)
मोहपवड्ढय (पाव)
मोहेंति (रमंति)
मोणी (अणगार)
मौनीन्द्राभिप्राय (तत्त्व)
यजन (पृ १२२)
यत (पृ १२२)
यति (ऋषि)
यति (अनगार)
यथारुचि (छंद)
याग (यजन)
यान (प्रवहण)
याचित (अनविष्ट)
यातना (दण्ड)
युक्त (प्रतिबद्ध)
युज्यते (क्रमति)
युवा (पृ १२२)
यूथ (कुल)
योग (पृ १२२)
योग (पृ १२२)
योग्य (पात्र)
योग्य (भव्य)
योजना (मेलना)
यौवनस्थ (युवा)
रइ-अरइ (अधम्मत्थिकाय)
रइ-अरइविवेग (धम्मत्थिकाय)
रइय (बद्ध)
रइल्लिय (अल्लिय)
रंगण (ओवत्थिकाय)
रक्खा (अहिंसा)
रक्खित (पालित)

रुइल (कंत)
रुइल (सोभंत)
रुंटणा (खिज्जणिया)
रुभेज्ज (अक्कोसेज्ज)
रुक्ख (दुम)
रुक्ख (पायव)
रुचक (कडग)
रुट्ठ (पृ १२४)
रुट्ठ (आसुरत्त)
रुण्ण (विकूजित)
रुण्ण (पृ १२४)
रुदित (हक्कार)
रुद्द (पाव)
रुद्ध (रहस्स)
रुद्धापित (पृ १२४)
रुपाकड (भग्ग)
रुयकड (भग्ग)
रुसिय (पृ १२४)
रेणु (कयार)
रोएइ (सद्दहइ)
रोगिय (वाहिय)
रोयमाणी (पृ १२५)
रोवय (दुम)
रोवण (कंदण)
रोष (कोध)
रोस (कोह)
रोस (मोहणिज्जकम्म)
लंगल (नंगल)
लंखा (पृ १२५)
लंभ (उवलंभा)
लक्खण (वण्ण)

लउक (पृ १२५)
लज्जा (ह्री)
लज्जा (दया)
लज्जामो (पृ १२५)
लज्जिय (पृ १२५)
लण्ह (सण्ह)
लता (पृ १२५)
लद्ध (पृ १२५)
लद्धट्ठ (पृ १२५)
लद्धमईय (पृ १२५)
लद्धसण्ण (लद्धमईय)
लद्धसुईय (लद्धमईय)
लद्धि (अहिंसा)
लब्भति (पृ १२६)
लय (संघाड)
लय (पृ १२६)
लयण (पृ १२६)
ललंति (रमंति)
ललंति (हसंति)
लहुक (साहसिक)
लहुभूय (अप्पडिबद्ध)
लाघविय (पृ १२६)
लाढेत्तय (अवइत्तय)
लाभ (आय)
लाभ (णिप्फत्ति)
लाभ (पृ १२६)
लालप्पण (लोभ)
लालप्पणपत्थणा (अभिज्झावाय)
लिंग (पृ १२६)
लिंग (सागारिक)
लिंगिय (पृ १२६)

लीण (पविट्ठ)
लीनता (लय)
लुंपणा (पाणवह)
लुंपणा पाणाणं (अदिण्णादाण)
लुंरित्ता (हंता)
लुक्कई (आलुक्कई)
लुक्ख (सुक्क)
लुटण (पृ १२६)
लुठण (लोटन)
लुत्तेय (हयतेय)
लुद्धग (अत्थि)
लप्पमाण (नस्समाण)
लुब्ध (धूर्त)
लुब्भिय (सज्जिय)
लूसग (पृ १२६)
लूह (समण)
लूह (भिक्खु)
लूह (पव्वइय)
लूहाहार (अंताहार)
लेण (भवण)
लेसा (जुइ)
लेसा (कंति)
लेसा (जुइ)
लेसेज्ज (अभिहणेज्ज)
लोकपडिपूरण (ईसिपब्भारपुढवी)
लोगंधगार (तमुक्काय)
लोगग्गचूलिया (ईसिपब्भारपुढवी)
लोगतमस (तमुक्काय)
लोगतमिस (तमुक्काय)
लोगनाभि (मंदर)
लोगमज्झ (मंदर)
लोटन (पृ १२६)
लोट्टण (लुटण)
लोभ (छंद)
लोभ (तण्हा)
लोभ (अभिज्झा)
लोभ (मोहणिज्जकम्म)
लोभ (पृ १२७)
लोमसिका (पृ १२७)
लोमहरिसजणण (पृ १२७)
लोयग्ग (ईसिपब्भारपुढवी)
लोयग्गथूभिगा (ईसिपब्भारपुढवी)
लोयग्गपडिबुज्झणा (ईसिपब्भारपुढवी)
लोलिक्का (अदिण्णादाण)
लोलुग (पृ १२७)
लोलुय (पृ १२७)
लोह (अधम्मत्थिकाय)
लोहप्प (परिग्गह)
लोहविवेग (धम्मत्थिकाय)
लोहिल्ल (अविसुद्ध)
ल्हाय (सीईभूय)
वइअगुत्ति (अधम्मत्थिकाय)
वइगुत्ति (धम्मत्थिकाय)
वइजोग (वक्क)
वइर (पासाण)
वइर (पृ १२७)
वंक (पृ १२७)
वंकसमायार (वंक)
वंचण (उक्कंचण)
वंचण (मोहणिज्जकम्म)
वंचण (कूड)

वण	(कुमपुप्फिया)	वयर	(पाव)
वण्ण	(जस)	वर	(पृ १३०)
वण्ण	(कित्ति)	वर	(अग्ग)
वण्णित्त	(पृ १२६)	वरल	(थूल)
वण्णिय	(पृ १२६)	वर्ग	(समूह)
वण्णिस्सामि	(कित्तइस्सामि)	वर्जन	(परिहार)
वति	(भिक्खु)	वर्णयति	(वृणोते)
वति	(पागार)	वर्तन	(भवन)
वतिपरिक्खेव	(वगडा)	वर्द्धन	(पृ १३०)
वत्तिय	(अणुओग)	वर्य	(अग्र)
वत्तुस्सय	(महव्वय)	वर्षावास	(प्रथमसमवसरण)
वत्तेज्ज	(अभिहणेज्ज)	वलय	(कडपल्ल)
वत्थित	(विरियत्त)	वलय	(माया)
वध	((पृ १२६)	वलय	(मोहणिज्जकम्म)
वधु	(पत्ति)	वलय	(अलिय)
वधू	(पत्ति)	वलयग	(केऊर)
वन्दते	(पृ १२६)	वल्लभ	(इट्ठ)
वप्फति	(जेमेति)	वल्लभिका	(पत्ति)
वमण	(पृ १३०)	ववगत	(पृ १३०)
वमेंति	(पृ १३०)	ववगय	(पृ १३०)
वम्मिका	(पामुद्दिका)	ववण	(पृ १३०)
वय	(गाम)	ववत्था	(पतिट्ठा)
वयंति	(पृ १३०)	ववसाय	(पृ १३१)
वयंति	(उवेइ)	ववसाय	(अहिंसा)
वयस	(मित्त)	ववहार	(पृ १३१)
वयण	(आणा)	ववहार	(पृ १३१)
वयण	(मुख)	वसट्ट	(अट्ट)
वयण	(वक्क)	वसति	(वसुम)
वयण	(गिरा)	वसधि	(उवस्सय)
वयत्थ	(पृ १३०)	वसित्तु	(पृ १३१)
वयमंत	(सीलमंत)	वसिम	(वसुम)

वितिमिरतर (अब्भहियतर)
वितोसिय (खामिय)
वित्थत (वित्थिन्न)
वित्थिन्न (पृ १३४)
विदित (पृ १३४)
विदु (पृ १३४)
विदु (समण)
विदु (भिक्खु)
विदेहजंबू (जंबू)
विदेहदिण्णा (तिसला)
विद्देसगरहणिज्ज (अलिय)
विद्धसण (सडण)
विद्धसणधम्म (भेउरधम्म)
विद्धसणधम्म (सडण)
विद्धसति (पमिलायति)
विद्धत्थ (खीण)
विद्धि (अहिंसा)
विद्वस् (पृ १३४)
विघ्र (विहि)
विधान (विधि)
विधावति (पधावति)
विधि (पृ १३५)
विधि (भजना)
विधि (कल्प)
विनष्ट (ब्यापन्न)
विनष्ट (विगत)
विनाश (विवेक)
विनाश (वध)
विनाश (गलन)
विनाशित (खामित)
विनाशिन् (अशाश्वत)
विनीत (अविजात)
विनीत (कितकरण)
विन्नत्तिकारण (पृ १३५)
विन्नत्तिहेउभूय (विन्नत्तिकारण)
विन्नव (अत्तव)
विपण्ण (नट्ठ)
विपन्न (व्यापन्न)
विपन्न (गत)
विपरिणामइत्ता (पृ १३५)
विपरिणामधम्म (भेउरधम्म)
विपरिणामिसए (चालिसए)
विपरीतभाव (वैगुण्य)
विपर्यास (व्यत्यय)
विपाडित (भग्ग)
विपुल (ओराल)
विपुलतर (विच्छिण्णतर)
विप्प (बंभण)
विप्पइण्ण (उक्खिन्न)
विप्पकिण्ण (विक्खिण्ण)
विप्पकिण्ण (पकिण्ण)
विप्पगुणोवेय (बंभण)
विप्पजढ (ववगत)
विप्पपवर (बंभण)
विप्पमुंचण (उट्ठित)
विप्परिचेट्ठते (परिचेट्ठति)
विप्परिवत्तते (परिचेट्ठति)
विप्परिसि (बंभण)
विप्पलोट्टित (वेढित)
विप्पित (विच्छित)
विप्पिय (पिच्छिय)
विप्फालण (पृ १३५)

व्यवस्था	(जीत)	शांत	(पृ १४०)
व्यवस्था	(धर्म)	शापित	(पृ १४०)
व्यवहार	(पृ १३९)	शास्त्र	(नन्दि)
व्यवहार	(आदेश)	शिक्षित	(पृ १४०)
व्यवहार	(कल्प)	शिव	(कल्याण)
व्याकुल	(दुस्सह)	शीलहीन	(क्षुद्र)
व्याकोश	(फुल्ल)	शुक्ल	(लघुक)
व्याख्या	(वर्द्धन)	शुद्ध	(आदर्श)
व्याघात	(विक्षेप)	शुभ	(पुण्य)
व्यापन्न	(पृ ११९)	शुभवृद्धि	(पृ १४०)
व्यापार	(योग)	शृणोति	(पृ १४०)
व्यापृत	(वावड)	शेखरक	(आमेलक)
व्याप्त	(आस्पृष्ट)	शोधि	(पृ १४०)
व्याप्त	(आपूरित)	शोभते	(प्रभाति)
व्याप्त	(स्पृष्ट)	शोभन	(उदार)
व्याप्त	(संकीर्ण)	शोभन	(उदग्ग)
व्यावृत्त	(पृ १३९)	श्रद्धाति	(प्रत्येति)
व्याहृति	(विकल्प)	श्रमण	(अनगार)
व्युत्सर्ग	(पृ १३९)	श्रेणि	(लता)
व्यूत	(वेल्ल)	श्रेयस्	(कल्याण)
व्रतमोक्ष	(प्रतिगमन)	श्रेष्ठ	(वर)
व्रतिन्	(अनगार)	श्लक्ष्ण	(पृ १४०)
शंकित	(पृ १४०)	श्लाघा	(श्लोक)
शठ	(अलुंक)	श्लोक	(पृ १४०)
शठ	(धूर्त)	श्वपच	(सौकरिक)
शबल	(बकुश)	सअट्ठ	(पृ १४०)
शब्दित	(शापित)	सइ	(आभिनिबोहिय)
शयन	(स्वप्नवर्तन)	सइ	(मइ)
शरीर	(बोंदि)	सउक्कोस	(पायय)
शरीरभृत्	(जीव)	सउज्जाय	(सज्झय)
शशिन्	(चन्द्र)	सउज्जोव	(सज्झय)

संकम	(पृ १४०)
संकप्प	(अंश)
संकर	(परिग्गह)
संकर	(नपुंसक)
संका	(संकम)
संकित	(पृ १४१)
संकीर्ण	(पृ १४१)
संकुयंति	(तसंति)
संकेत	(केतन)
संकेत	(समय)
संकेतन	(केतन)
संक्षेप	(ओघ)
संक्षेप	(ओह)
संक्षेप	(ऊह)
संख	(पृ १४१)
संखडि	(भोज्ज)
संखित्त	(रहस्स)
संखेव	(पृ १४१)
संखेव	(समास)
संखेव	(ओह)
संखोभिज्जमाणी	(आहुणिज्जमाणी)
संग	(राग)
संग	(पाव)
संग	(पृ १४१)
संग	(पृ १४१)
संग	(पृ १४१)
संग	(कम्म)
संग	(लोभ)
संगह्य	(मित्त)
संगलपास	(सम्मतपास)
संगलिका	(लोमसिका)
संगह	(आनुपुव्वी)
संगह	(उवग्गह)
संगाम	(पृ १४१)
संगाम	(जुद्ध)
संगाम	(समर)
संगोवेमाण	(सारक्खेमाण)
संघ	(गण)
संघ	(पृ १४१)
संघ	(कुल)
संघट्टेज्ज	(अभिहणेज्ज)
संघाट	(घाट)
संघाड	(गाथा)
संघाड	(पृ १४१)
संघात	(समूह)
संघात	(पृ १४२)
संघाय	(गण)
संघाय	(काय)
संचय	(परिग्गह)
संचारयंति	(संचालयंति)
संचालयति	(पृ १४२)
संचालिज्जमाणी	(आहुणिज्जमाणी)
संचिट्ठते	(संजायते)
संजत	(पृ १४२)
संजत	(साधु)
संजत	(भिक्खु)
संजम	(अहिंसा)
संजम	(दया)
संजम	(तप)
संजम	(आचार)
संजम	(पृ १४२)
संजमठाण	(पृ १४२)

सुयक्खाय	(पवेइय)	सुहमण	(सम्ममण)
सुयधम्म	(पवयण)	सुय	(विहु)
सुर	(देव)	सुय	(सुत)
सुरगिरि	(मंदर)	सुहि	(णायय)
सुरसद्म	(स्वर्)	सुहित	(णिव्वुत)
सुरा	(पृ १५४)	सुहिय	(मित्त)
सुरिंद	(सक्क)	सुहुम	(खुड्डलक)
सुरूव	(कंत)	सुहुम	(पुष्क)
सुरूव	(सोम)	सूइभूय	(अप्पडिबद्ध)
सुविवेग	(पृ १५४)	सूचीका	(कडग)
सुविहिय	(सामायिक)	सूयते	(उप्पज्जते)
सुव्वत्त	(उब्भिण्ण)	सूर	(वीर)
सुव्वय	(सुभासिय)	सूर	(पृ १५५)
सुव्वय	(सुसील)	सूर	(साहसिक)
सुश्लिष्ट	(आलीन)	सूर	(धीर)
सुश्लिष्ट	(सुसंहत)	सूरलेस्सा	(पृ १५५)
सुसंहत	(पृ १५५)	सूरियावत्त	(मंदर)
सुसमाहित	(संयत)	सूरियावरण	(मंदर)
सुसागय	(सागय)	सेज्जंस	(सिद्धत्थ)
सुसाणवित्ति	(चंडाल)	सेज्जा	(पृ १५५)
सुसील	(पृ १५५)	सेज्जा	(उवसग)
सुसुइभूय	(ण्हाय)	सेज्जातर	(सागारिय)
सुसुणाग	(अलस)	सेज्जादाता	(सागारिय)
सुह	(सामायिक)	सेज्जाधर	(सागारिय)
सुह	(हिय)	सेज्जायर	(सागारिय)
सुह	(णिव्वाण)	सेत	(पृ १५५)
सुह	(सात)	सेतु	(वेला)
सुहकामग	(हियकामग)	सेय	(पंडुर)
सुहत	(धुवक)	सेय	(सहय)
सुहजाणि	(भद्द)	सेल	(वज्ज)
सुहमासि	(सिद्धत्थ)	सेल	(पव्वय)

स्नेह (लोभ)
स्पृशति (प्रत्येति)
स्पृष्ट (पृ १५६)
स्पर्शना (पृ १५६)
स्फटिक (आदर्श)
स्फटित (धुत)
स्फाटयति (ओसारेति)
स्मय (माण)
स्वप्रवचनप्रतिपन्न (समाणवयभिमय)
स्वभाव (धर्म)
स्वभाव (निसर्ग)
स्वभाव (रीत)
स्वर् (पृ १५६)
स्वरूप (णिच्छय)
स्वर्ग (स्वर्)
स्वामिन् (पति)
स्वेच्छाकल्पित (विकल्पित)
हंतव्व (पृ १५६)
हंता (पृ १५७)
हंदोलक (अंदोलति)
हक्कार (पृ १५७)
हट्ठ (पृ १५७)
हट्ठ (मुदित)
हट्ठचित्त (पृ १५७)
हण (पहर)
हणंति (झिम्मंति)
हणण (वध)
हणेज्ज (आओसेज्ज)
हत्थकलावय (केऊर)
हत्थलहुत्त (पृ १५७)
हत्थसंडक (पृ १५७)
हत्थलहुत्तण (अदिण्णादाण)
हत्थिक (पृ १५७)
हत्या (पृ १५७)
हनन (हत्या)
हम्ममाण (आउक्किज्जमाण)
हय (पृ १५७)
हयतेय (पृ १५७)
हरंति (पृ १५८)
हरण (हार)
हरण-विप्पणास (अदिण्णादाण)
हरिएस (चंडाल)
हरित (कण्ह)
हरिस (अंधो)
हरिस (तुट्ठि)
हरिसवसविसप्पमाणहियय (हट्ठचित्त)
हर्ष (पृ १५८)
हल (लंगल)
हवइ (भवति)
हसंति (पृ १५८)
हसित (फुल्ल)
हस्सतराय (लहुतराय)
हापयति (पृ १५८)
हायति (उज्झीयति)
हार (पृ १५८)
हास (मुदित)
हाहाभूय (पृ १५८)
हिंदुय (जीवत्थिकाय)
हिंसति (आहणइ)
हिंसविहिंसा (पाणवह)
हिंसा (आकुट्टि)
हिंसा (वध)

परिशिष्ट २

विशेष शब्द-विवरण

(प्रस्तुत परिशिष्ट में जिन शब्दों के एकार्थक दिए गए हैं, उनको अनुक्रम से गहरे अक्षरों में, तथा ब्रेकेट में उन शब्दों का संस्कृत रूप दिया गया है, फिर एकार्थक अभिवचनों की व्याख्या दी गई है।)

अंग (अङ्ग)

'अंग' शब्द के १५ पर्याय शब्दों का उल्लेख यहां हुआ है[1]। ये सभी पर्याय समग्र वस्तु के छोटे-बड़े अवयव हैं। कुछ शब्दों का विश्लेषण इस प्रकार है—

दसा—वस्त्र का किनारा।

प्रदेश—स्कन्ध का एक भाग।

शाखा—वृक्ष का अवयव।

पर्व—इक्षु का खण्ड।

पटल—कमल की पांखुड़ी।

अंताहार (अन्ताहार)

जैन परम्परा में भोजन-ग्रहण के आधार पर भिक्षुओं के अनेक प्रकार किये गये हैं। इनमें अर्थगत भेद होते हुए भी भोजन की सामान्य विवक्षा के आधार पर इनको एकार्थक माना गया है[2]—

अंताहार—वल्ल, चने आदि सामान्य धान खाने वाला।

पंताहार—बचा-खुचा अथवा बासी भोजन करने वाला।

रूक्षाहार—रूक्षभोजी।

---

१. उशाटी प १४४ : पर्यायाभिधानं च नानादेशविनेयानुग्रहार्थम्।

२. औपटी पृ ७५।

तुच्छाहार—तुच्छ, अल्प या असारभोजी।

अरसाहार—रसविहीन भोजन करने वाला।

विरसाहार—विरस आहार करने वाला।

अकम्मवीरिय (अकर्मवीर्य)

जैन दर्शन में वीर्य/शक्ति के तीन प्रकार माने हैं—बालवीर्य, पंडितवीर्य, बालपंडितवीर्य। सूत्रकृतांग चूर्णि में अकर्मवीर्य और पंडितवीर्य को एकार्थक माना है। जो शक्ति कषाय और प्रमाद से संवलित नहीं होती, उससे कर्मबन्ध नहीं होता। वह अकर्मवीर्य/पंडितवीर्य कहलाती है।

अकुसल (अकुशल)

प्रश्न व्याकरण सूत्र मे 'अकुसल' शब्द के पर्याय में चार शब्दों का उल्लेख है। यहां ये शब्द भाषा-विवेक से विकल व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हैं[1]—

अकुशल—कथ्य और अकथ्य का विवेक न करने वाला।

अनार्य—पापकारी भाषा बोलने वाला।

अलीकाज्ञा—पापकारी प्रवृत्तियों की आज्ञा देने वाला।

अलीकधर्मनिरत—असत्य कथन में संलग्न रहने वाला।

अक्कोस (आक्रोश)

आक्रोश आदि शब्द क्रोध की विभिन्न अवस्थाओं के अर्थ में समानार्थक हैं। इनका अर्थभेद इस प्रकार है[2]—

आक्रोश—कुपित होकर 'तू मर जा' ऐसे वचन बोलना।

परुष—कठोर वचन कहना।

खिसन—'तू चरित्रहीन है' ऐसे निंदावचन कहना।

अपमान—नीच सम्बोधन से पुकारना।

तर्जन—तर्जनी अंगुली दिखाते हुए फटकारना।

---

१. प्रटी प ४० ।

२. प्रटी प १६० ।

निर्भर्त्सन—'मेरी दृष्टि से दूर हो जा' इस प्रकार कहकर अपमान करना।

त्रासन—पीड़ादायक और भयोत्पादक शब्दोच्चारण करना।

उत्कूजित—अव्यक्त ध्वनि करना, क्रोध में बड़बड़ाना।

अक्कोह (अक्रोध)

ये तीनों शब्द क्रोध के अभाव के द्योतक हैं—

१. अक्रोध—प्रतिकूल परिस्थिति में क्रोध आ जाने पर भी सन्तुलन न खोना।

२. निक्रोध—किसी भी स्थिति मे क्रोध न करना।

३. क्षीणक्रोध—क्रोध मोहनीय कर्म का क्षय हो जाना।

वृत्तिकार ने इनको एकार्थक माना है।[1]

अग्गि (अग्नि)

'अग्गि' शब्द के सभी पर्याय अग्नि के स्पष्ट वाचक हैं। सभी नाम उसकी भिन्न-भिन्न विशेषता के द्योतक हैं। कुछ शब्दों का वाच्यार्थ इस प्रकार है—

१. अग्नि—जो ऊर्ध्व गति करती है।[2]

२. जाततेज—जो प्रारम्भ से ही तेजस्वी हो।

३. हुतवह—हुत/हवन द्रव्य को वहन करने वाली।

४. ज्वलन—सबको जलाने वाली, ज्वलनशील।

५. पवन—पवित्र करने वाली।

अच्चिय (अर्चित)

'अच्चिय' आदि शब्द सम्मान व्यक्त करने के अर्थ में समानार्थक हैं। उनका अर्थबोध इस प्रकार है—

१. अर्चना—चंदन, गंध आदि द्रव्यों का लेप करना।

२. वंदना—स्तुति करना।

३. पूजा—अक्षत आदि से पूजा करना।

---

१. औपटी पृ २०२ : एकार्था एते शब्दाः।

२. अचि पृ २४५ : अगत्यूर्ध्वं याति अग्निः।

४. मान—उचित सम्मान देना।

५. सत्कार—वस्त्र आदि देकर आदर करना।

६. सम्मान—बहुमान देना, हार्दिक अनुराग व्यक्त करना।

अज्झत्थिय (आध्यात्मिक)

ये सभी शब्द चिन्तन की क्रमिक अवस्थाओं के द्योतक हैं—

आध्यात्मिक—अध्यवसायगत चिंतन।

चिंतित—विकल्पात्मक चिंतन।

कल्पित—उभयरूप चिन्तन।

प्रार्थित—अभिलाषात्मक चिन्तन।

मनोगतसंकल्प—वस्तु को प्राप्त करने का मानसिक संकल्प।

इनमें अर्थभेद होते हुए भी टीकाकार ने इनको एकार्थक माना है।[1]

अणासव (अनास्रव)

'अणासव' आदि शब्द मुनि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। इनकी अर्थपरम्परा इस प्रकार है[2]—

अनाश्रव—नवीन कर्मों के आस्रव से रहित।

अकलुष—पाप रहित।

अच्छिद्र
अपरिस्रावी } —कर्म जल आने वाले छिद्रों को रोकने वाला।

असंक्लिष्ट—चैतसिक क्लेश से मुक्त

शुद्ध—निर्दोष।

इस प्रकार ये सभी शब्द विशुद्ध चेतना की क्रमिक अवस्थाओं के वाचक हैं।

देखें—'संत'।

अणुओग (अनुयोग)

अनुयोग का अर्थ है—व्याख्या पद्धति। किसी भी पदार्थ के सभी

---

१. विपाटी प ३८ : एतान्यप्येकार्थानि।

२. प्रटी प १११।

धर्मों पर विचार व व्याख्या करना अनुयोग है। इनके एकार्थक शब्दों का आशय इस प्रकार है—

१. नियोग—सूत्र के साथ अर्थ का निश्चित व अनुकूल योग करना।
२. भाषा—शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थमात्र कहना।
३. विभाषा—शब्द की विभिन्न पर्यायों के आधार पर अनेक अर्थ निरूपित करना।
४. वार्तिक—शब्द की समस्त पर्यायों के आधार पर अर्थ निरूपित करना।[1]

विशेषावश्यक भाष्य में भाषा, विभाषा और वार्तिक को एक उदाहरण द्वारा समझाया गया है। वस्तुतः ये सभी शब्द व्याख्या की उत्तरोत्तर अवस्था के द्योतक हैं। जैसे—एक व्यक्ति है। वह इतना मात्र जानता है कि रत्न हैं। दूसरा व्यक्ति उन रत्नों की जाति व मूल्य का ज्ञाता है और तीसरा व्यक्ति इसके साथ-साथ उन रत्नों के गुण-दोष भी जानता है। इस प्रकार भाषक प्रारम्भिक अवबोध देता है, विभाषक उसकी विशेष व्याख्या करता है और वार्तिककर उसकी सर्वांग व्याख्या प्रस्तुत करता है।[2]

अणुण्णा (अनुज्ञा)

अनुज्ञा का अर्थ है—आचार्य द्वारा अपने उत्तराधिकारी को गण का उत्तरदायित्व सौंपना। आचार्य कहते हैं—वत्स! मैं आज तुम्हें यह गण, शिष्य, वस्त्र, पात्र आदि सारी वस्तुएं समर्पित करता हूं। आज से तुम इनके स्वामी हो। गुरु का यह वचन-विशेष अनुज्ञा कहलाता है। अनुज्ञा के छह प्रकार निर्दिष्ट हैं—नाम अनुज्ञा, स्थापना अनुज्ञा, द्रव्य अनुज्ञा, क्षेत्र अनुज्ञा, काल अनुज्ञा और भाव अनुज्ञा।

अनुज्ञा के बीस एकार्थक/अभिवचन यहां संगृहीत हैं। व्याख्याकार स्वयं इनके स्पष्टीकरण में संदिग्ध हैं। उनका कहना है कि परम्परा के अभाव में इन एकार्थ अभिवचनों का स्पष्ट अर्थ नहीं बताया जा सकता।[3]

---

१. नंदीटी पृ १०२।
२. विभा १४२५।
३. अनुनंदीटी पृ १७९ : एतेषां च पदानामर्थः सम्प्रदायाभावान्नोच्यते।

अणुत्तर (अनुत्तर)

अणुत्तर से विसुद्ध तक के शब्द केवलज्ञान के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। केवलज्ञान संपूर्ण ज्ञान है। वह विशुद्ध और अनन्त है। ये सभी शब्द उसकी विशेषताओं के द्योतक हैं।

अनुत्तर—सर्वोत्तम।

निर्व्याघात—बाधाओं से अप्रतिहत।

निरावरण—क्षायिक होने से आवरण रहित।

कृत्स्न—सकल ज्ञेय पदार्थों को जानने वाला।

प्रतिपूर्ण—जो अपने आप मे पूर्ण है।

वितिमिर—प्रकाश से युक्त।

विशुद्ध—निर्मल।[1]

इस प्रकार भावार्थ में सभी शब्द उत्कृष्ट अर्थ को व्यक्त करते हैं।

अणुपविट्ठ (अनुप्रविष्ट)

अणुपविट्ठ के अन्तर्गत ६ पर्याय शब्दों का उल्लेख हुआ है। लगभग सभी शब्द आत्मलीन व्यक्ति के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। कुछ विशिष्ट शब्दो का अर्थबोध इस प्रकार है—

१. आलीन—कछुए की भांति सब ओर से संवृत, काय चेष्टा का निरोध करने वाला।

२. प्रलीन—विशेष रूप से संवृत अथवा आवश्यकता उपस्थित होने पर यतनापूर्वक शारीरिक प्रवृत्ति करने वाला।

३. आभ्यन्तरक—भीतर झांकने वाला।

अतिवत्त (अतिवर्त)

'अतिवत्त' शब्द के पर्याय में २७ शब्द और १ धातु का उल्लेख है। अतिवत्त शब्द का अर्थ है—बीत जाना, पुराना होना और व्यर्थ होना। इसमें कुछ शब्द पुरानेपन के वाचक हैं जैसे—पुराण, मलित, जीर्ण इत्यादि। निष्फल, ओपुप्फ आदि शब्द व्यर्थता के बोधक हैं। कुछ शब्द समाप्ति के वाचक हैं, जैसे—निष्ठित, कृत, क्षीण, प्रहीण, अतीत

---

१. औपपाती पृ १९५।

इत्यादि। इस प्रकार ये सारे शब्द क्षीणता की विभिन्न पर्यायों के वाचक हैं।

अदिण्णादाण (अदत्तादान)

प्रश्नव्याकरण सूत्र में अदत्तादान के तीस पर्याय शब्दों का उल्लेख हुआ है। अदत्त का अर्थ है—चोरी। प्रस्तुत नामों की सूची में चौरिक्य, परहृत, अदत्त, तस्करत्व, अपहार आदि शब्द इसके स्पष्ट वाचक हैं।

अदत्त ग्रहण में मानव की आकांक्षा, गृद्धि आदि वृत्तियां कार्य करती हैं, अतः कारण में कार्य का उपचार कर अदत्तादान की प्रेरक वृत्तियों को भी अदत्तादान मान लिया गया है। जैसे—परलाभ, लौल्य, कांक्षा, लालपन, प्रार्थना, इच्छा, मूर्च्छा, तृष्णा, गृद्धि, आदियणा आदि।

असंयम, अप्रत्यय व अवपीड भी चोरी की ही फलश्रुति है, क्योंकि असंयमी व्यक्ति पदार्थ-प्रतिबद्धता के कारण चोरी करता है। जो चोरी करता है, वह अप्रत्यय—अविश्वास का कारण बनता है तथा जिसका धन चुराया जाता है, उसको पीड़ा होती है। इसलिए अप्रत्यय व अवपीड शब्द भी सार्थक हैं। आक्षेप, क्षेप और विक्षेप भी चोरी के ही वाचक हैं, क्योंकि इनमे दूसरों के धन का प्रक्षेप होता है।

चोरी माया के बिना नहीं हो सकती, अतः कूट, हस्तलघुत्व, निकृतिकर्म आदि शब्द भी इसके पर्याय हैं।

अधम्मत्थिकाय (अधर्मास्तिकाय)

यह लोकव्यापी अजीव द्रव्य है। अधर्म द्रव्य स्थिति/अवस्थिति का माध्यम है। यहां उल्लिखित दो अभिवचनों (अधर्म और अधर्मास्तिकाय) के अतिरिक्त शेष—प्राणातिपात अविरमण से काय-अगुप्ति तक के सारे शब्द अधर्म के द्योतक हैं। अधर्मास्तिकाय के अधर्म शब्द की समता के कारण यहां उनको पर्यायवाची मान लिया गया है।

अबंभ (अब्रह्म)

प्रश्नव्याकरण सूत्र में अब्रह्मचर्य के तीस एकार्थक बताए हैं। इनमें कुछ शब्द अब्रह्म की उत्पत्ति के साधन तथा कुछ शब्द उसकी परिणति के द्योतक हैं। मैथुन, संसर्ग, रति, कामगुण आदि शब्द उसके स्वरूप के वाचक हैं। इन शब्दों का अर्थबोध इस प्रकार है—

१. अब्रह्म—असत् प्रवृत्ति।

२. मैथुन—स्त्री पुरुष का संयोग।

३. चरंत—सभी प्राणियों द्वारा अनुसृत।

४. संसर्गि—स्त्री-पुरुष के संसर्ग से होने वाली प्रवृत्ति।

५. सेवनाधिकार—अनेक अनर्थों में प्रवृत्त करने वाला।

६. संकल्प—विकल्प से उत्पन्न होने वाला।

७. बाधन—संयम में अवरोध उत्पन्न करने वाला।

८. दर्प—शरीर की दृप्तता से उत्पन्न होने वाला।

९. मोह—मूढ़ता उत्पन्न करने वाला। वेदमोहनीय के उदय से होने वाला।

१०. मनः संक्षोभ—मानसिक क्षुब्धता पैदा करने वाला।

११. अनिग्रह—मन को उच्छृंखल करने वाला।

१२. व्युद्ग्रह—दृष्टिकोण का विपर्यास करने वाला।

१३. विघात—गुणों का घातक।

१४. विभंग—व्रतों को भंग करने वाला।

१५. विभ्रम—भ्रान्ति पैदा करने वाला।

१६. १७. अधर्म, अशीलता—चरित्र के विपरीत प्रस्थान कराने वाला।

१८. ग्राम्यधर्मतप्ति—इन्द्रिय विषयों के उपभोग तथा रक्षण में सदा आकुल व्याकुल रहने के लिए बाध्य करने वाला।

१९. रति—कामक्रीड़ा का प्रेरक।

२०. राग—अनुरक्ति बढ़ाने वाला।

२१. कामभोगमार—कामभोगों के आसेवन से मृत्यु तक पहुंचाने वाला।

२२. वैर—शत्रुता का हेतु।

२३. रहस्य—एकान्त में आचरणीय।

२४. गुह्य—गोपनीय।

२५. बहुमान—अधिक व्यक्तियों द्वारा अनुमत।

२६. ब्रह्मचर्यविघ्न—अब्रह्म-विरति में बाधा उपस्थित करने वाला।

२७. आस्फालित—गुणों का नाशक।

२८. विराधना—सद्गुणों का नाशक।

२९. प्रसंग—आसक्ति का उत्पादक।

३०. कामगुण—कामदेव की प्रवृत्ति का बोधक।[1]

अब्भहियतर (अभ्यधिकतर)

इनमें प्रथम दो 'अभ्यधिकतर' और 'विपुलतर' ये वस्तु की लंबाई और गहराई की दृष्टि से पूरिपूर्णता/अत्यधिकता के द्योतक हैं। शेष दो शब्द 'विशुद्धतर' और 'वितिमिरतर' ये भाव विशुद्धि की दृष्टि से परिपूर्णता के द्योतक हैं। भिन्न-भिन्न अर्थ के वाचक होने पर भी ये एकार्थक हैं।[2]

अरंजर (अलंजर)

अरजर शब्द के पर्याय में १२ शब्दों का उल्लेख है। ये सभी विभिन्न आकृति वाले घड़ों की भिन्न-भिन्न जातियों के वाचक हैं। ये सभी मिट्टी से निर्मित होने के कारण, उपादान की समानता से एकार्थक माने गए हैं। कुछेक शब्दों की पहचान इस प्रकार है—

कुंडग—कुंड के आधार का घड़ा।

घटक—छोटा घड़ा।

कलश—बड़ा घड़ा।

वारक—लघु कलश, सुराही।

अरंजर—पानी भरने का बड़ा बर्तन।

उपासक दशा ७/७ में करक, वारक, घट, अलिंजर आदि अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का उल्लेख मिलता है।

अरह (अर्हत्)

आगमों में अनेक स्थलों पर 'अरह' शब्द के साथ प्रसंगोपात्त उसके पर्याय शब्दों का उल्लेख मिलता है। पंच परमेष्ठी में अरिहन्तों का

---

१. प्रटी प ४३-४४।

२. नंदीटी पृ ३६ : अथवैकार्थिका एवैते शब्दाः नानादेशजविनेयानां कस्यचित् कश्चित् प्रसिद्धो भवतीत्युपन्यस्ताः।

प्रथम स्थान है। यद्यपि ये सभी शब्द अर्हत्/केवली के द्योतक हैं, लेकिन समभिरूढ नय की दृष्टि से इनकी व्याख्या अलग-अलग की जा सकती है।

१. अर्हत्—अध्यात्म की उच्च भूमिका को प्राप्त।

२. जिन—कर्म शत्रु को जीतने वाले।

३. केवली—केवल/सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले।

४. सर्वज्ञ—भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी विषयों के ज्ञाता, त्रिकालज्ञ।

५. सर्वदर्शी—त्रिकालदर्शी, अथवा सब प्राणियों को आत्मवत् देखने वाले।

६. जात—निसर्गत: शुद्ध।[1]

अरि (अरिन्)

अरि का अर्थ है—शत्रु। कार्यभेद से इन सभी शब्दों का अर्थ-भेद इस प्रकार है[2]—

१. अरि—शत्रु।

२. वैरी—जातिगत वैरी, जैसे—सर्प और नकुल।

३. घातक—किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा अपने शत्रु को मरवाने वाला।

४. वधक—स्वयं मारने वाला।

५. प्रत्यमित्र—जो पहले मित्र होकर कारणवश फिर अमित्र/शत्रु बन जाये।

इस प्रकार ये सभी शब्द शत्रुता की उत्पत्ति में साधक अथवा शत्रु के प्रकारों के द्योतक हैं।

अलिय (अलीक)

अलीक का अर्थ है—असत्य। यहां इसके तीस अभिवचन दिये गये हैं। वे असत्य की विभिन्न अवस्थाओं और फलश्रुतियों के द्योतक हैं। अनेक शब्द असत्य के हेतु बनते हैं जैसे नूम (माया) आदि। वहां

---

१. अनुद्वामटी प १०७।

२. जंबूटी प १२१।

कारण में कार्य का उपचार कर उन्हें भी अलीकवाची शब्द मान लिया गया है। उनके अर्थबोध से यह सब स्पष्ट हो जाता है—

१. शठ—मायावी व्यक्ति का कार्य।

२. अनार्य—अनार्य वचन।

३. मायामृषा—माया और मृषा से अनुगत असत्य वचन।

४. असत्क—अयथार्थ का वाचक।

५. कूट-कपट-अवस्तु—असत्य वचन में सत्य का अपलाप, भाषा का विपर्यय और अभिधेय का अप्रतिपादन।

६. निरर्थक-अपार्थ—अर्थहीन वचन।

७. विद्वेषगर्हणीय—सज्जन व्यक्तियों द्वारा गर्हणीय।

८. अनृजुक—वक्र वचन।

९-१०. कल्कना, वञ्चना—माया युक्त व पापकारी वचन।

११. मिथ्यापश्चात् कृत—मिथ्या होने के कारण अनाश्रयणीय।

१२. साति—असत्य वचन अविश्वास का कारण बनता है।

१३. अपछन्न—अपने दोषों तथा दूसरों के गुणों को ढंकना।

१४. उत्कूल—सन्मार्ग से च्युत करनेवाला (उन्मार्ग की ओर ले जाने वाला)।

१५. आर्त्त—पीड़ित व्यक्ति द्वारा आश्रित।

१६. अभ्याख्यान—झूठा आरोप।

१७. किल्विष—पाप का हेतु।

१८. वलय—वक्रता का उत्पादक।

१९. गहन—सघन वचन जाल।

२०. मन्मन—मेंमने की भांति अस्पष्ट भाषण।

२१. नूम—माया युक्त वचन।

२२. निकृति—माया को छिपाना।

२३. अप्रत्यय—अविश्वसनीय भाषण।

२४. असमय—असम्यक् आचरण ।

२५. असत्यसंधान—असत्य की परम्परा को चलाना ।

२७. विपक्ष—सत्य और सुकृत का विपक्षी ।

२७. अपधीक—निंद्य बुद्धि से उत्पन्न ।

२८. उपधि-अशुद्ध—माया से सावद्य भाषण ।

२९. अपलोप—यथार्थ को छिपाने वाली वाणी ।

इस प्रकार ये सारे अभिवचन असत्य के उत्पादक, पोषक और असद् मार्ग के प्रतिष्ठापक हैं ।

अवाय (अवाय)

'अवाय' जैन ज्ञानमीमांसा का पारिभाषिक शब्द है । मतिज्ञान के चार भेदो मे इसका तीसरा स्थान है । किसी भी पदार्थ के बारे में निश्चयात्मक ज्ञान अवाय है ।

नंदीसूत्र में प्रयुक्त 'आवट्टण' आदि शब्द अवाय के एकार्थक माने गए हैं । अभिधान की भिन्नता से वे भिन्न-भिन्न अर्थ के वाचक हैं ।[1] जैसे—

१. आवर्तन—निश्चित किये हुए अर्थ का आवर्तन करना ।

२. प्रत्यावर्तन—उसका बार बार प्रत्यावर्तन करना, पुनरावृत्ति करना ।

३. अवाय—उस अर्थ को भली भाति जानना ।

४. बुद्धि—उसी अर्थ को और अधिक स्पष्टता से जानना ।

५. विज्ञान—उस अर्थ को दृढता से जानना ।

उमास्वाति ने इसके निम्न पर्याय शब्दों का उल्लेख किया है—अपगम, अपनोद, अपव्याध, अपेत, अपगत, अपविद्ध, अपनुत इत्यादि ।[2] ये शब्द निषेधात्मक हैं ।

अविराय (अविलीन)

'अविराय' का संस्कृत रूप अविलीन होता है । वि पूर्वक लीङ्—

---

१. नंदीचू पृ ११ : अवायसामण्णतो नियमा एगट्ठिता चेव, अभिधाण-भिण्णत्तणतो पुण भिण्णत्था ।

२. त० भा० १।१५ ।

विलीयने धातु को विरा आदेश होता है। हेमचन्द्र का प्राकृत व्याकरण (४।५६) में पविराय और पविलीन इन दोनों को एकार्थक माना है। अविध्वस्त इस अर्थ में स्पष्ट ही है।

असण (अशन)

अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि शब्द स्पष्ट रूप से अलग अलग अर्थ के वाचक हैं, किन्तु आहार से सम्बन्धित होने से टीकाकार ने इनको एकार्थक माना है।[1]

अहासुत्त (यथासूत्र)

यथासूत्र आदि सभी शब्द व्रत-पालन की विशिष्ट अवस्था के द्योतक हैं। व्रत-पालन में भावों की निर्मलता, विधि का अनुसरण तथा काल-मर्यादा का परिपालन आवश्यक होता है। ये शब्द इसीकी ओर संकेत करते हैं। इनका अर्थबोध इस प्रकार है—

१. यथासूत्र —सूत्र के अनुसार।

२. यथाकल्प—प्रतिमा आदि व्रत की आचार संहिता के अनुसार।

३. यथामार्ग—ज्ञानादि मोक्ष मार्ग का अतिक्रमण न करना अथवा क्षायोपशमिक आदि भावों का अतिक्रमण न करना।

४. यथातथ्य—स्वीकृत व्रत का व्रत-भावना के अनुसार पालन।

५. यथासम्यक्—अतिचार रहित समभावना से पालन।[2]

अहिंसा (अहिंसा)

अहिंसा के साठ नामों का उल्लेख प्रश्न व्याकरण सूत्र में मिलता है। अहिंसा मूल धर्म है। उसके अंगभूत अनेक गुण हैं जैसे—विरति, दया, विमुक्ति, क्षान्ति, समता, धृति, स्थिति, नन्दा, भद्रा, कल्याण, मंगल, रक्षा, अनाश्रव, समिति, शील, संयम, संवर, गुप्ति, यतना, विश्वास अभय आदि। ये सारे अहिंसा के वाचक हैं। अहिंसा के अभाव में इनका कोई मूल्य नहीं है। अहिंसा है तो ये हैं, अहिंसा नहीं हैं तो

---

१. प्रसाटी प ५१ : परमार्थत एकार्थिका एवैते शब्दा इति भेदकल्पनमयुक्तं, एवं समयभणितनिरुक्तविधिनाऽप्येकार्थत्वमेवैषामिति।

२. दशाटी पृ ७१।

इनके अस्तित्व का आभास मात्र है। इसी प्रकार अन्यान्य पर्याय भी अहिंसा के ही संपोषक या संरक्षक तत्त्व हैं। कुछेक शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है—

१. गति—अहिंसा सम्पदाओ की जननी है। कल्याण के इच्छुक व्यक्ति इसका आश्रय लेते हैं, इसलिए यह गति है।

२. प्रतिष्ठा—यह समस्त गुणो की प्रतिष्ठा—आधारभूमि है।

३. निर्वाण—यह मोक्ष की हेतु है।

४. निर्वृति—यह स्वास्थ्य की हेतुभूत है।

५. शक्ति—यह अन्यान्य शक्तियो की प्राण-प्रतिष्ठा करती है।

६. श्रुतांग—श्रुतज्ञान से निष्पन्न होने से श्रुतांग है।

७. क्षान्ति—क्षान्ति की उत्पत्ति मे हेतुभूत।

८. सम्यक्त्वाराधना—जो सम्यक्त्व मे प्रतिष्ठित है।

९. बृहती – सभी धर्मानुष्ठानो मे प्रधान।

१०. बोधि—बोधि का अर्थ है—सर्वज्ञ धर्म की प्राप्ति। सर्वज्ञ धर्म अहिंसा प्रधान होता है।

११. बुद्धि—अहिंसा बुद्धि को निर्मल बनाती है, सफल बनाती है, इसलिए अहिंसा बुद्धि है।

१२. धृति—अहिंसा धृति—चित्त की स्थिरता पैदा करती है।

१३. स्थिति—मुक्त स्थिति की प्रापक होने से स्थिति।

१४. पुष्टि—पुण्य का उपचय करने वाली।

१५. नन्दा—समृद्धि की ओर ले जाने वाली।

१६. भद्रा—कल्याणकारी।

१७. विशिष्टदृष्टि—जैनधर्म के विशिष्ट दर्शन की जननी।

१८. प्रमोद—प्रमोद भावना को बढ़ाने वाली।

१९. समिति—सम्यक् प्रवृत्ति होने से समिति।

२०. शीलपरिग्रह—चरित्र का स्थान।

२१. व्यवसाय—विशिष्ट अध्यवसाय की कारण भूत।

२२. यज्ञ—अहिंसा भावदेवपूजा है।

२३. यजन—अभयदान की प्रेरक।

२४. आश्वास—प्राणियों में विश्वास उत्पन्न करने वाली।

२५. अनाघात—किसी भी प्राणी को न मारने का संकल्प।

२६. विमल—पवित्रता की प्रेरक।

२७. प्रभासा—दीप्ति की जननी।

२८. निर्मलतर—प्राणी को विशेष निर्मल बनाने वाली, स्वयं अत्यन्त निर्मल।

आइण्ण (आकीर्ण)

'आइण्ण' आदि शब्द जन-समवसरण के बोधक हैं। ये शब्द एकत्रित होने वाले देव या मनुष्यों की विभिन्न अवस्थाओं के वाचक हैं—

१. आकीर्ण—एकत्रित होकर फैल जाना।

२. विकीर्ण—अपनी सीमा से बाहर जाकर एकत्रित होना।

३. उपस्तीर्ण—क्रीडा करते हुए एक दूसरे को आच्छादित कर रहना।

४. संस्तीर्ण—परस्पर संश्लेष करना।

५. स्पृष्ट—आसन, शयन, रमण, परिभोग के द्वारा संश्लिष्ट होना।

यद्यपि ये शब्द देवक्रीडा के प्रसंग में आये हैं और देव समूह के विभिन्न अंगों के अभिवाचक हैं, फिर भी समूहगत मन: स्थिति के द्योतक हैं।[1]

आउडिज्जमाण (आकुट्यमान)

'आउडिज्जमाण' आदि सभी शब्द पीड़ा देने की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। कुछ शब्द वाचिक रूप से पीड़ा देने [का बोध कराते हैं, जैसे—तर्जना, ताड़ना आदि। कुछ शब्द शारीरिक रूप से दुःख देने के वाचक हैं, जैसे—परितापन, उपद्रवण इत्यादि।

---

१. भगवती ३।१५५ : आइण्णेत्यादयः एकार्था अत्यन्तव्याप्तिप्रदर्शनाय।

आओसणा (आक्रोशना)

'आओसण' आदि शब्द आक्रोश व्यक्त करने की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं[1]—

१. आक्रोश—क्रोध करना।

२. निर्भर्त्सन—भर्त्सना करना।

३. उद्धंसण—अपमानित करना।

आगासत्थिकाय (आकाशास्तिकाय)

आकाश के अभिवचन/पर्यायवाची नाम २७ हैं। व्युत्पत्तिगत भिन्नता भगवती टीका मे उल्लिखित है।

१. आकाश—जिसमे सभी पदार्थ अपने अपने स्वरूप में प्रकाशित होते हैं।

२. गगन—अबाधित गमन का कारण।

३. नभ—शून्य होने से जो दीप्त नहीं होता।

४. सम—जो एकाकार है, विषम नहीं है।

५ विषम—जिसका पार पाना दुष्कर है।

६. खह—भूमि को खोदने से अस्तित्व में आने वाला।

७. विद्य—जिसमे क्रियाएं की जाती हैं।

८. वीचि—विविक्त स्वभाव वाला।

९. विवर—आवरण न होने के कारण विवर।

१०. अम्बर—माता की भांति जनन सामर्थ्य से युक्त पानी का दान करने वाला।

११. अंबरस—जल को धारण करने वाला।

१२. छिद्र—छेदन से उत्पन्न होने वाला।

१३. झुषिर—पोलाल—रिक्तता को प्रस्तुत करने वाला।

१४. मार्ग—गमन करने का मार्ग।

१५. विमुख—प्रारम्भिक बिन्दु के अभाव के कारण विमुख।

---

१. निरुक्त पृ १९ : एते समानार्थाः।

१६. अर्द्द—जिससे गति की जाती है ।

१७. आधार—आधार देने वाला ।

१८. व्योम—जिसमें विशेष रूप से गमन किया जाता है ।

१९. भाजन—समस्त विश्व का आश्रयभूत ।

२०. अंतरिक्ष—जिसके बीच (नक्षत्र आदि) देखे जाते हैं ।

२१. श्याम—नीला होने के कारण श्याम ।

२२. अवकाशान्तर—दो अवकाशो के बीच होने वाला ।

२३. अगम—जो स्थिर है, गमन क्रिया से रहित है ।

२४. स्फटिक—स्फटिक की भांति स्वच्छ ।

२५. अनन्त—अन्त रहित ।[1]

आघविय (आख्यापित)

'आघविय' आदि शब्द कथन की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं । इनका विशेष अर्थ इस प्रकार है—

१. आख्यापित—सामान्य कथन ।

२. प्रज्ञापित—भेदप्रभेद सहित कथन ।

३. प्ररूपित—संदर्भ सहित कथन ।

४. दर्शित—उपमा सहित व्याख्यान ।

५. निदर्शित—हेतु, दृष्टान्त आदि के माध्यम से कथन ।

६. उपदर्शित—उपनय, निगमन पूर्वक कथन, मतान्तर का कथन ।

आणा (आज्ञा)

आज्ञा शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है । जैसे—आदेश देना, उपदेश देना इत्यादि । इसके अतिरिक्त जैन आगमों में वीतराग व्यक्ति के उपदेश के अर्थ मे भी आज्ञा शब्द का प्रयोग हुआ है । इसी दृष्टि से आज्ञा को ज्ञान और श्रुत भी कहा जा सकता है । जिसके द्वारा जाना जाता है, वह आगम भी आज्ञा का पर्याय है ।

---

१. वही पृ १४११ ।

आभिणिबोहिय (आभिनिबोधिक)

आभिनिबोधिक शब्द मतिज्ञान का पर्याय है। इसके पर्याय शब्दों में कुछ-कुछ भेद है, लेकिन समष्टि रूप में सभी मतिज्ञान के वाचक हैं।[1]

१. ईहा—वस्तु को जानने की चेष्टा।

२. अपोह—ज्ञान का निश्चय।

३. विमर्श—चिन्तन करना। यह ईहा और अवाय की मध्यवर्ती अवस्था है।

४. मार्गणा—अन्वय धर्म की खोज करना।

५. गवेषणा—व्यतिरेक धर्म की आलोचना।

६. संज्ञा—व्यञ्जनावग्रह के पश्चात् होने वाली बुद्धि।

७. स्मृति—पूर्वानुभूत पदार्थों के आलम्बन से होने वाला ज्ञान।

८. मति—सूक्ष्म धर्मों को जानने वाली बुद्धि।

९. प्रज्ञा—विशिष्ट क्षयोपशम जन्य वस्तु को यथार्थ रूप में जानने वाला ज्ञान।

इस प्रकार ये सभी शब्द मतिज्ञान की विविध अवस्थाओं के वाचक हैं।

आभोग (आभोग)

प्रतिलेखना का अर्थ है—निरीक्षण। जैन पारिभाषिक शब्दावलि में 'प्रतिलेखना' मुनि की एक चर्या है, जिसमे मुनि अपने उपयोग में आने वाली समस्त वस्तुओं का निरीक्षण करता है। यह शब्द उसी अर्थ मे रूढ है। यहां उसकी विभिन्न अवस्थाओ के द्योतक दस पर्याय शब्दों का उल्लेख है—

१. आभोग—विधिपूर्वक निरीक्षण।

२. मार्गणा—किसी को पीड़ा पहुंचाए बिना निरीक्षण।

३. गवेषणा—दोष रहित शुद्ध वस्तु की याचना।

---

१. नंदीटी पृ ५८ : किञ्चिद्भेदाद् भेदः प्रदर्शितः, तत्त्वतस्तु मतिवाचकाः सर्वे एते पर्यायशब्दाः।

४. ईहा—शुद्ध वस्तु की अन्वेषणा ।

५. अपोह—मुनि द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले पदार्थों में संसक्त जीव आदि को यतनापूर्वक अलग करना ।

६. प्रतिलेखना—आगमानुसार उसका निरूपण करना, आचरण करना ।

७. प्रेक्षण—सावधानी पूर्वक निरीक्षण करना ।

८. निरीक्षण—सूक्ष्मता से देखना ।

९. आलोचन—मर्यादा पूर्वक निरीक्षण करना ।

१०. प्रलोकन—सघनता से निरीक्षण करना ।[1]

आयट्ठि (आत्मार्थिन्)

'आयट्ठि' शब्द के पर्याय में ८ शब्दों का उल्लेख है । आत्मार्थी का तात्पर्य है मोक्षार्थी । आत्मा की रक्षा करने वाला ही मोक्षार्थी हो सकता है । इस प्रकार सभी शब्द आत्मार्थी शब्द के स्पष्ट वाचक हैं ।

आयाम (आयाम)

यद्यपि आयाम और विष्कम्भ ये दोनों शब्द अलग-अलग अर्थ के द्योतक हैं । आयाम का अर्थ है लम्बाई और विष्कम्भ का अर्थ है चौड़ाई, लेकिन ये दोनो माप के प्रकार हैं । अतः नंदी चूर्णिकार ने इनको एकार्थक माना है ।[2]

आयार (आचार)

'आयार' शब्द के दस पर्याय यहां संगृहीत हैं । यद्यपि सभी शब्द भिन्न भिन्न अर्थ के वाचक हैं, लेकिन तात्पर्य में सभी आचार अर्थ के वाचक हैं । अतः टीकाकार ने इनको एकार्थक माना है । इनका वाच्यार्थ इस प्रकार है[3]—

१. आयार—जिसका आचरण किया जाता है ।

२. आचाल—जिससे सघन कर्मों को प्रकम्पित किया जाता है ।

---

१. ओनिटी प १२, १३ ।

२. नंदी चू पृ २५ ।

३. आटी प ५ : एते किञ्चिद् विशेषादेकमेवार्थं विविधमत्वा प्रवर्तन्ते इत्येकार्थिकानि, शक्रपुरन्दरादिवत् ।

३. आगाल—आत्म प्रदेशों को समस्थिति में स्थित करने वाला।

४. आगर—जो ज्ञान आदि का आकर/खजाना है।

५. आश्वास—जहां व्यक्ति आश्वस्त होता है अथवा सुख की सांस लेता है।

६. आदर्श—जिसमें व्यक्ति स्वयं को देखता है।

७. अंग—जिसमें भाव आचार की अभिव्यक्ति की जाती है।

८. आचीर्ण—जो आचरित होता है।

९. आजाति—जिसमे ज्ञान आदि उत्पन्न होते हैं।

१०. आमोक्ष—कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त करने वाला।

आलोयणा (आलोचना)

आलोचना का शाब्दिक अर्थ है—चारों ओर से देखना। साधक अपनी भूलो को विशेष रूप से देखता है, वह आलोचना है। आलोचना के विविध रूप प्रस्तुत पर्याय-शब्दों में उल्लिखित हैं। उनका आशय इस प्रकार है—

१. आलोचना—विधिपूर्वक अपनी भूल का गुरु के सामने निवेदन करना।

२. विकटना—अपनी भूल को स्पष्टता व सरलता से स्वीकारना।

३. शोधि—अतिचार मल को धोना।

४. सद्भावदायना—यथार्थ का अभिव्यक्तीकरण।

५. निंदा—आत्मसाक्षी से अपने दोषों की आलोचना करना।

६. गर्हा—गुरुसाक्षी से अपने दोषों की निंदा करना।

७. विकुट्टन—अतिचार/गल्ती के अनुबंध का छेद करना।

८. शल्योद्धार—मिथ्यादर्शन आदि शल्यों का निवारण करना।

आवस्सग (आवश्यक)

देखें—'आवस्सय'।

आवस्सय (आवश्यक)

जो साधु एव श्रावको द्वारा अवश्यकरणीय है, वह आवश्यक है। इसका अपर नाम प्रतिक्रमण है। इसके लगभग सभी पर्याय गुणनिष्पन्न हैं।

१. आवश्यक—ज्ञानादि गुणों को अथवा मोक्ष को चारों ओर से वश में

करने वाला अथवा इन्द्रिय, कषाय आदि शत्रुओं को वश में करने वाला ।

२. आवासक—गुणों से आत्मा को वासित करने वाला ।

३. ध्रुवनिग्रह—अनादि संसार का निग्रह करने वाला ।

४. विशोधि—कर्म-मलिन आत्मा को विशुद्ध करने वाला ।

५. अध्ययनषट्वर्ग—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान—इन छह अध्ययनों से युक्त ।

६. न्याय—अभीष्टार्थ की सिद्धि में सहायक ।

७. आराधना—मोक्ष की आराधना का हेतु ।

८. मार्ग—मोक्ष तक पहुंचाने का मार्ग ।

आसंदग (आसंदक)

पादपीठ के अर्थ मे 'आसंदग' शब्द के पर्याय में चार शब्दो का उल्लेख है । यद्यपि इन चारों में आकार-प्रत्याकार कृत भिन्नता है लेकिन सभी आसन विशेष का अर्थ व्यक्त करते हैं, अतः ये एकार्थक हैं। निशीथ-चूर्णि मे काष्ठमय आसन्दक का उल्लेख मिलता है ।

आसुरत्त (आसुरत्व)

कोपातिशय को प्रकट करने के लिए 'आसुरत्त' आदि शब्द एकार्थक हैं ।[1] लेकिन इनका अवस्था कृत भेद इस प्रकार है—

आसुरत्व—शीघ्र कुपित होना, असुर की भांति कोप करना ।

रुष्ट—रोष युक्त रहना ।

कुपित—मानसिक क्रोध ।

चाण्डिक्य—चेहरे पर कठोरता के भाव प्रकट होना ।

मिसिमिसेमाण—क्रोधाग्नि से जलना । इस अवस्था में व्यक्ति की आंखें व मुंह लाल हो जाता है ।

आहाकम्म (आधाकर्मन्)

साधुओं को लक्ष्य कर की जाने वाली पचन-पाचन की प्रवृत्ति

---

१. उपासी पृ १०५ : एकार्थाः शब्दाः कोपातिशयप्रदर्शनार्थाः ।

आधाकर्म कहलाती है। यह भिक्षा के ४२ दोषों में प्रथम दोष है। आत्मा का हनन करने से आयाहम्म (आत्मघ्न), साधुओं के लिए दोष पूर्ण होने से अधःकर्म तथा संयमी के निमित्त से बनाये जाने के कारण आत्मकर्म आदि इसके पर्यायनाम हैं।

आहेवच्च (आधिपत्य)

नेतृत्व के द्योतक 'आहेवच्च' शब्द के पर्याय में ५ शब्द प्रयुक्त हैं। इनका अर्थ-भेद इस प्रकार है—

१. आधिपत्य—अनुशासन।

२. पौरपत्य—अग्रगामिता।

३. भर्तृत्व—संरक्षण व पोषण।

४. स्वामित्व—स्वामिभाव।

५. महत्तरकत्व—श्रेष्ठीभाव।

इंद (इन्द्र)

देखें—'सक्क'।

इज्जा (दे)

माता के अर्थ मे 'इज्जा' शब्द देशी है। उस समय वच्चा आदि विविध प्रकार की देवियां माता के रूप में प्रसिद्ध थीं। चूर्णिकार ने इसका एक अर्थ यज्ञ भी किया है।[1]

गर्भ निर्गमन के समय बच्चे का जो आकार होता है वह आकार देवपूजा में होना चाहिए। अनुयोग द्वार सूत्र में इज्याञ्जलि शब्द का प्रयोग उसी रूप मे हुआ है। प्राचीन काल में हर पूजा के साथ विशेष प्रकार की देवियां सम्बन्धित रहती थीं, इसलिए संभव है ये चारों शब्द किसी एक देवी विशेष के लिए प्रयुक्त हों।

इट्ठ (इष्ट)

इट्ठ के पर्यायवाची शब्दों का अनेक स्थलों से संग्रहण है। ये पर्यायवाची शब्द भिन्न-२ स्थलों पर भिन्न-२ वस्तु के विशेषण के रूप

१. अनुद्वाचू पृ १२।

में प्रयुक्त हैं। औपपातिक सूत्र में 'इट्ठ' से लेकर हियपल्हायणिज्ज तक के शब्द वाणी के विशेषण के रूप में एकार्थक हैं।[1] इनका अर्थ-बोध इस प्रकार है—

१. इष्ट—मन को प्रीतिकर।

२. कान्त—कमनीय, सहज सुन्दर।

३. प्रिय—प्रियता पैदा करने वाली।

४. मनोज्ञ—मनोहर, भावों से सुन्दर।

५. मणाम—मन को भाने वाली।

६. मनोभिराम—चिरकाल तक मन को प्रसन्न करने वाली।

७. उदार—महान् शब्द और अर्थ वाली।

८. कल्याण—शुभप्राप्ति की सूचना देने वाली।

९. शिव—उपद्रव रहित, शब्द और अर्थ के दोषों से रहित।

१०. धन्य—धन्यता प्राप्त कराने वाली।

११. मंगल—अनर्थ का प्रतिघात करने वाली।

१२. हृदयगमनीय—सुबोध, शीघ्र समझ में आने वाली।

१३. हृदयप्रल्हादनीय—हृदय गत क्रोध, शोक आदि की ग्रंथि को नष्ट करने वाली।

ईसिपब्भारपुढवी (ईषत्प्राग्भारापृथ्वी)

ईषत्प्राग्भारापृथ्वी समय क्षेत्र के बराबर लम्बी चौड़ी है। उसके मध्य भाग की लम्बाई आठ योजन की है और उसका अन्तिम भाग मक्खी के पंख से भी अधिक पतला है। इसका आकार सीधे छत्ते जैसा है तथा यह श्वेत स्वर्णमयी है। वहां सिद्ध/मुक्त जीव निवास करते हैं अतः सिद्धालय, सिद्धि, मुक्तालय, मुक्ति आदि इसके पर्याय हैं। यह अन्य पृथ्वियों से छोटी है अतः तनु, तनुतरी, आदि नाम हैं। लोकाग्र में स्थित होने से लोकाग्र, लोकाग्र चूलिका भी इसके पर्याय हैं। यह समस्त देवलोकों से ऊपर है इसलिए इसका एक नाम ब्रह्मा-

---

१. औपटी व १३८-३९ : एकार्थिकानि वा प्रायः इष्टादीनि वाग्विशेषणा-नीति।

वर्तमान भी है। यह ईषत्/कुछ झुकी हुई है अतः ईषत् प्राग्भारा कहलाती है।[1]

ईहा (ईहा)

'अमुकेन भाव्यमिति प्रत्यय ईहा' 'यह ही होना चाहिए' इस प्रकार निश्चयात्मक ज्ञान ईहा है। तत्त्वार्थसूत्र में ऊह, तर्क, परीक्षा, विचारणा, जिज्ञासा ईहा के पर्यायवाची हैं।[2] प्रस्तुत एकार्थक सामान्य रूप से ईहा के पर्याय हैं, लेकिन अर्थ के विकल्प से इनमें भिन्नता भी है[3]—

१. आभोगण—अर्थाभिमुख आलोचना।

२. मार्गणा—अन्वय-व्यतिरेक पूर्वक समालोचन।

३. गवेषणा—व्यतिरेक धर्म को छोड़कर अन्वय धर्म के आधार पर समालोचन।

४ चिंता – पुनः पुनः समालोचन।

५. विमर्श—पदार्थ के अनित्य आदि धर्मों का विमर्श।

इस प्रकार सभी शब्द ईहा के अन्तर्गत क्रमिक भूमिकाओं के द्योतक हैं। इन भूमिकाओं को पार करने में अन्तर्मुहूर्त का समय लगता है।

उउमास (ऋतुमास)

प्रत्येक ऋतुमास ३० दिन का होता है। अतः एक युग के (१८३० ÷ ३०) इकसठ ऋतुमास होते हैं। इसके दो नाम हैं—सावन-संवत्सर और कर्मसंवत्सर। स्थानांग सूत्र में कर्म-संवत्सर की व्याख्या इस प्रकार है—

जिस संवत्सर में वृक्ष असमय में अंकुरित हो जाते हैं, असमय में फूल तथा फल आ जाते हैं, वर्षा उचित मात्रा में नहीं होती, उसे कर्म-संवत्सर कहते हैं।

---

१. निचीचू पृ ३२।

२. त० भा० १।१५।

३. नंदीचू पृ ३६ : ईहा सामण्णतो एगट्ठिता चेव, अत्थविकप्पणातो पुण भिण्णत्था।

उक्कंचण (उत्कञ्चन)

'उक्कंचण' से 'साइसंपयोग' तक के शब्द माया के एकार्थवाची हैं। टीकाकार ने इन शब्दों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है।[1]

१. उत्कञ्चन—गुणहीन पदार्थों के गुणों का उत्कर्ष प्रतिपादन करना जिससे ज्यादा मूल्य प्राप्त किया जा सके।

२. वञ्चन—दूसरों को ठगना।

३. माया—छलने की बुद्धि।

४. निकृति—बकवृत्ति से जेबकतरे की तरह व्यवहार करना।

५. कूट—तोल-माप सम्बन्धी न्यूनाधिकता।

६. कपट—वेश बदलकर अथवा भाषाविपर्यय से किसी को ठगना।

७. सातिसंप्रयोग—बहुलता से वक्रता का प्रयोग अथवा सातिशय द्रव्य कस्तूरी आदि में अन्य द्रव्यों की मिलावट।

'सो होइ साइजोगो, दव्वं जं छुहिय अन्नदव्वेसु।
दोसगुणा वयणेसु य, अत्थविसंवायणं कुणइ॥'

उक्किट्ठ (उत्कृष्ट)

उक्किट्ठ आदि शब्द गति के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। ये सभी शब्द गति-त्वरा के अर्थ में एकार्थक हैं।[2]

कुछ शब्दों की अर्थवत्ता इस प्रकार है—

१. उत्कृष्ट—उत्कृष्ट गति से चलना।

२. त्वरित शरीर को हिलाते हुए चलना।

३. चंड—आकुल-व्याकुल होकर गति करना।

४ छेक—कुशलता पूर्वक चलना।

५. सिंह—सिंह के समान बिना आयास के चलना।

उक्कडुमड्ड (दे)

कुछ शब्द ध्वनि से अपना अर्थ अभिव्यक्त करते हैं। इसे अंग्रेजी

---

१. ज्ञाटी प ८६।

२. भटी प १७८ : एकार्था चैते शब्दाः प्रकर्षवृत्तिप्रतिपादनाय।

में 'ओनोमोटोपिया' कहते हैं, जैसे—चमचमाना इत्यादि । [illegible] शब्द बार बार के अर्थ में देशी है। उच्चारणमात्र से यह शब्द अपना अर्थ अभिव्यक्त करता है।

उग्गविस (उग्रविष)

'उग्गविस' आदि चारों शब्द विष की उत्तरोत्तर भयंकरता को द्योतित करते हैं—

१. उग्रविष—दुर्जर विष ।

२. चण्डविष—शरीर मे शीघ्र ही व्याप्त होने वाला विष ।

३. घोरविष—आगे से आगे हजारों पुरुषो तक फैलने वाला विष ।

४. महाविष—शीघ्र मारने वाला विष ।[1]

उग्गह (अवग्रह)

इन्द्रियार्थयोगे दर्शनान्तरं सामान्यग्रहणमवग्रहः—इन्द्रिय और अर्थ का सम्बन्ध होने पर नाम आदि की विशेष कल्पना से रहित सामान्य ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। यह मतिज्ञान का भेद है तथा इस अवस्था में निश्चयात्मक ज्ञान नही होता। तत्वार्थ भाष्य मे अवग्रह, ग्रह, ग्रहण, आलोचन, और अवधारण को एकार्थक माना है।[2]

'उग्गह' के सभी शब्द सामान्य रूप से एकार्थक होने पर भी अवग्रह के विभाग करने पर भिन्न-२ अर्थों के वाचक बनते हैं।[3]

अवग्रह के दो भेद है—व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह । प्रस्तुत एकार्थको मे प्रथम दो व्यञ्जनावग्रह से और तीसरा, चौथा भेद अर्थावग्रह से सम्बन्धित हैं। पाचवा भेद 'मेधा' उत्तरोत्तर विशेष-सामान्य अर्थावग्रह से सम्बन्धित है। विशेष व्याख्या के लिए देखें—नंदीचू. पृ ३५ ।

---

१. भटी पृ १२३५ ।

२. तत्त्वार्थ भाष्य १।१५ ।

३. नंदीचू पृ ३५ : ओग्गहसामण्णतो पच वि णियमा एगट्ठिता । उग्गह-विभागे पुण कज्जमाणे उग्गहविभागंसेण भिण्णत्था भवंति ।

उच्चच्छंद (उच्चच्छंद)

यहां संगृहीत तीनों शब्द स्वच्छंद व्यक्ति के अर्थ में एकार्थक हैं। जैसे—

१. उच्चच्छंद - आत्म-श्लाघा में प्रवण।

२. अनिग्रह—स्वच्छन्दचारी।

३. अनियत—अव्यवस्थित।[1]

उज्जल (उज्ज्वल)

'उज्जल' आदि शब्द वेदना के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। समवेत रूप में एकार्थक होते हुए भी इन शब्दों में अवस्थाकृत भेद है।[2] कुछ शब्दों की अर्थवत्ता इस प्रकार है—

उज्ज्वल—वह वेदना जिसमें सुख का अंश भी नहीं हो।

विपुल—सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त।

त्रितुल—मन, वचन और काया तीनों की कसौटी करने वाली।

प्रगाढ—मर्म प्रदेशों में व्याप्त होने वाली।

कर्कश—कर्कश पत्थर के स्पर्श की तरह आत्मप्रदेशों को प्रभावित करने वाली।

कटुक—कटुक द्रव्य की भांति व्याकुल करने वाली।

निष्ठुर—प्रतीकार करने में अशक्य।

चण्ड, प्रचण्ड—रौद्र, शीघ्र ही सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होने वाली।

तीव्र—अतिशय वेदना।

दुःख—दुःख देने वाली।

बीहणग—भयोत्पादक।

दुरहियास—असह्य वेदना।

उज्जुय (ऋजुक)

ऋजु, अकुटिल और भूतार्थ ये तीनों एकार्थक हैं। भूतार्थ का अर्थ

---

१. अनी प ३१।

२. विपाटी प ४१ : उज्जला ·····दुरहियास त्ति एकार्था एव।

है—यथार्थ। यथार्थ ऋजु ही होता है। बौद्धसूत्रों में ऋजुता के पर्याय में उजुता, उजुकता, अजिम्हता, अवक्रता अकुटिलता आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है।[1]

उट्ठाण (उत्थान)

'उट्ठाण' आदि पांचों शब्द विभिन्न प्रकार के पुरुषार्थ के द्योतक हैं, जैसे—

१. उत्थान—उठना, चेष्टा करना आदि।

२. कर्म—प्रवृत्ति।

३. बल—शारीरिक-सामर्थ्य।

४. वीर्य—जीवनी-शक्ति, आन्तरिक सामर्थ्य।

५. पराक्रम—कार्य-निष्पत्ति में प्रबल प्रयत्न।

६. पुरुषकार—अभिमान से उत्पन्न पुरुषार्थ।

उत्तरकरण (उत्तरकरण)

'उत्तरकरण' आदि चारों शब्द भिन्न भिन्न अर्थ के द्योतक होते हुए भी समवेत रूप से सभी विशुद्धीकरण के अर्थ को व्यक्त करते हैं। अतः चूर्णिकार ने इनको एकार्थक माना है।[2] इनका अर्थ-बोध इस प्रकार है—

१. उत्तरकरण—व्रत आदि को और अधिक उत्कृष्ट बनाना।

२. प्रायश्चित्तकरण—अतिचार लगने पर उसकी आलोचना करना।

३. विशोधीकरण—अतिचार आदि दोषों को विशुद्ध करना।

४. विशल्यीकरण—तीनों शल्यों से आत्मा को मुक्त करना।

उद्दिट्ठ (उद्दिष्ट)

'उद्दिट्ठ' आदि शब्द वर्णन की विविध पद्धतियों के वाचक हैं—

१. उद्दिष्ट—सामान्य रूप से कथन करना।

२. गणित—संख्या द्वारा वर्ण्य विषय को निर्दिष्ट करना।

३. व्यञ्जित—नामोल्लेखपूर्वक कथन करना।

---

१. अस्तं पृ ७८।

२. आवचू २ पृ २४१।

उप्पल (उत्पल)

'उत्पल' शब्द के पर्याय में जिन शब्दों का उल्लेख हुआ है वे द्रव्यास्तिक नय से सभी पर्यायवाची हैं, लेकिन पर्यायास्तिक नय की अपेक्षा से सभी शब्द कमल की भिन्न-भिन्न जाति और वर्ण के आधार पर व्यवहृत हैं।[1] जैसे—

१. उत्पल—नीलकमल।

२. पद्म—सूर्यविकासी रक्त कमल।

३. कुमुद—चन्द्रविकासी कमल।

४. नलिन—कुछ लाल कमल।

५. सुभग—कमल का प्रकार।

६. सौगंधिक—शरद् ऋतु में होने वाला सुगन्धि कमल।

७. पुण्डरीक—श्वेत कमल।

८. महापुण्डरीक—बड़ा श्वेत कमल।

९. शतपत्र—सौ पत्तों वाला कमल।

१०. सहस्रपत्र—हजार पत्तों वाला कमल।

११. कोकनद—रक्त कमल।

१२. अरविंद—पंखुडियों के द्वारा जाना जाने वाला।

१३. तामरस—पानी में उत्पन्न होने वाला कोई फूल,[2] कमल।

१४. भिस—कमलनाल।

१५. पुष्कल—श्रेष्ठ कमल।

उप्पायण (उत्पादन)

भोजन के ४२ दोषों में उत्पादन के दस दोष हैं। भोजन की उत्पत्ति में जो दूषण होते हैं वे उत्पादन दोष कहलाते हैं। ये तीनों शब्द इसी अर्थ के वाचक हैं।

---

१. औपटी पृ १६४ : उत्पलादीनां जातिभेदो वर्णविशेषः।

२. देशी पृ ३५७ : 'तामरसं' जलोद्भवं पुष्पम्। टिप्पण १ 'तामरस' शब्दः म्लेच्छभाषासंबन्धी, न तु आर्यभाषासंबन्धी—इत्येवं मीमांसासूत्रभाष्यकारो जैमिनिमुनिः प्राह स्वभाष्ये (अ १ पा ३ सू १० अधि ५)।

उवस्सय (उपाश्रय)

'उवस्सय' आदि सभी शब्द स्थानवाचक हैं। इनकी अभिव्यञ्जना भिन्न भिन्न होने पर भी आश्रय देने के आधार पर ये सभी एकार्थक हैं।[1]

उवहि (उपधि)

उपधि शब्द के पर्याय में आठ शब्दों का उल्लेख है। सभी शब्द उपधि के विशेष गुणों को व्यक्त करते हैं—[2]

१. उपधि—जो धारण करता है, पुष्ट करता है।

२. उपग्रह—जो समीप से धारण किया जाता है।

३. संग्रह—जिसका संग्रह किया जाता है।

४. प्रग्रह—जिसका विशेष रूप से संग्रह किया जाता है।

५. अवग्रह—जिसको बार-बार ग्रहण किया जाता है।

६. भण्डक—पात्र विशेष, यह भी उपधि है।

७. उपकरण—जो उपकार करता है।

८. करण—जो संयम-यात्रा में सहायक बनता है।

एजण (एजन)

कंपन के अर्थ मे 'एजण' आदि सात शब्दो का उल्लेख है। ये सभी शब्द हलन-चलन की उत्तरोत्तर अवस्थाओं के द्योतक हैं—

१. एजन—सामान्य कंपन।

२. व्येजन—विशेष कंपन।

३. चालन—इधर-उधर थोड़ा हिलाना।

४. घट्टन—दो वस्तुओं का आपस में संघर्षण।

५. क्षोभण—तीव्रता से क्षुब्ध करना, मथना।

६. उदीरण—प्रबलता से इधर-उधर करना या गति कराना।

---

१. बृकटी पृ ६२५ : एतान्येकार्थानि नानाव्यञ्जनानि पृथगक्षराभ्युपाश्रयस्य नामानि।

२. ओनिटी प २०७ : 'तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्या' इति न्यायात् ....।

ओयंसि (ओजस्विन्)

महानता एक और अखण्ड होती है। उसके अनेक कोण हैं। वे कोण अखण्ड महानता को ही परिपुष्ट करने वाले होते हैं। यहां चार कोण ये हैं—

१. ओजस्वी—मानसिक अवष्टम्भ वाला।

२. तेजस्वी—शारीरिक कांति से युक्त।

३. वर्चस्वी
वचस्वी —प्रभावशाली अथवा वचनातिशय से युक्त।

४. यशस्वी—ख्याति वाला।

ओराल (उदार)

'ओराल' शब्द के पर्याय में तेरह शब्दों का उल्लेख है। ये सभी शब्द विपुलता और प्रशस्तता का बोध कराते हैं। अन्तकृतदशा की टीका में ये सभी शब्द तप के विशेषण के रूप में एकार्थक माने गए हैं।[1] इनकी अर्थपरम्परा इस प्रकार है—

१. उदार—आकांक्षा/आशंसा रहित तप।

२. विपुल—दीर्घकालीन तप।

३. प्रयत—प्रमाद रहित होकर किया जाने वाला।

४. प्रगृहीत—विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा आचीर्ण।

५. कल्याण—नीरोगकर।

६. शिव—कल्याणकारी।

७. धन्य—धार्मिक अनुष्ठान के कारण धन्यता से युक्त।

८. मंगल—पाप को शमित करने वाला।

९. सश्रीक—सद् परिणाम देने वाला।

१०. उदग्र—उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त।

११. उदात्त—निस्पृह तप।

---

१. अंतटी प २६ : एते तपोविशेषणशब्दा एकार्थाः। अर्थभेदविवक्षायां तु व्यवच्छेदकविवरणानुसारेण ज्ञेयाः।

१२. उत्तम—सर्वश्रेष्ठ ।

१३. महानुभाव—महाप्रभावशाली ।

ओवीलेमाण (अवपीडयत्)

'ओवीलेमाण' आदि शब्द पीड़ा देने की विभिन्न अवस्थाओं के वाचक हैं । देखें—'आउडिज्जमाण' ।

ऋतुसंवत्सर (ऋतुसंवत्सर)

देखें—'उडमास' ।

कंची (काञ्ची)

ये सभी शब्द विभिन्न प्रकार की करधनी (कटि के आभूषण) के वाचक हैं । प्राचीन काल में करधनी पहनने की परम्परा अनेक जातियों में थी और आज भी यह परम्परा प्रचलित है ।

देखें—'कडीय' ।

कंति (कान्ति)

कान्ति, दीप्ति आदि शब्द अवस्था भेद से प्रकाश के वाचक हैं ।

देखें—'जुइ' ।

कंदण (क्रन्दन)

देखें—'रोयमाणी' ।

कक्क (कर्क)

कक्क (वक्क ?) और रत्न—ये दोनों शब्द इन्द्रनील आदि सर्वोत्तम रत्न के लिए प्रयुक्त होते हैं ।

कक्क (कल्क)

देखें—'माया' ।

कण्हराति (कृष्णराजि)

कृष्ण का अर्थ है—काली और राजि का अर्थ है—रेखा । काले रंग की पुद्गल रेखा को कृष्णराजि कहते हैं । भिन्न-भिन्न स्थितियों के

आधार पर इसके आठ नाम हैं। इन नामों की सार्थकता इस प्रकार है[1]—

मेघराजि—यह काले मेघ के समान कृष्ण वर्ण वाली।

मघा
माघवती } —छठी और सातवीं नरक की भांति सघन अंधकारमय।

वातपरिघ—वायु के लिए अर्गला के समान। इसमें से वायु भी प्रवेश नहीं कर सकती।

वातपरिक्षोभ—प्रवेश न देने के कारण वायु को क्षुब्ध करने वाली।

देवपरिघ—देवताओं के लिए अर्गला के समान।

देवपरिक्षोभ—देवताओं के क्षोभ का हेतु।

कमल (कमल)

देखें—'उप्पल'।

कम्म (कर्मन्)

कर्म आत्मा को मलिन करते हैं। इस आधार पर कर्म के कुछ नाम मलिनता के वाचक हैं जैसे—पणग, पंक, मइल्ल, कलुष, मल इत्यादि। कर्म दुःख परम्परा का मूल है अतः कारण में कार्य का उपचार कर दुह, असात, क्लेश, दुप्पक्ख आदि शब्द कर्म के वाचक हैं। संपराय का अर्थ है—संसार। कर्म संसार का कारण है। इसे प्रकम्पित किया जाता है, इसलिए धुत भी इसका पर्याय है। मइल्ल, वोण्ण आदि शब्द इसी अर्थ में देशी हैं।

करोडग (दे)

करोडग आदि शब्द विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े कटोरे के वाचक हैं। जैसे—गोल, चपटा, चतुष्कोण कटोरा इत्यादि।

कसाय (कषाय)

कषाय का अर्थ है—आत्मा का रागद्वेषात्मक उत्ताप, परिणति। भाव और पर्याय भी आत्म-परिणाम के वाचक हैं।

कसिण (कृत्स्न)

'कसिण' आदि चारों शब्द परिपूर्णता के द्योतक हैं—

---

1. ठाणं ८।२९१।

१. कृत्स्न—सभी दृष्टियों से पूर्ण ।

२. प्रतिपूर्ण—आत्म-स्वरूप से परिपूर्ण ।

३. निरवशेष—स्व स्वभाव से अन्यून ।

४. एकग्रहणगृहीत—एक शब्द से अभिधेय ।[1]

काण (दे)

काने व्यक्ति के लिए प्रयुक्त ये तीनों शब्द देशी हैं ।

काय (काय)

'काय' शब्द के पर्याय मे तेरह शब्दों का उल्लेख है । काय का अर्थ है शरीर । शरीर की विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर ये पर्याय शब्द बने हैं । जैसे—शरीर पुष्ट होता है इसलिए काय, उपचय, संघात, उच्छ्रय, समुच्छ्रय, देह आदि शब्द इसके पर्याय हैं । यह जीर्ण-शीर्ण होता है, इसलिए शरीर कहलाता है । शरीर प्राण ग्रहण करता है इसलिए प्राणु तथा धोंकनी की तरह श्वास लेता है इसलिए भस्त्र (भस्त्रा) कहलाता है । बुंदी आदि शब्द इसी अर्थ में देशी हैं ।

काल (काल)

काल, अद्धा और समय—ये तीनों शब्द पारिभाषिक दृष्टि से भिन्नार्थवाची हैं । समय काल का ही एक सूक्ष्मतम भेद है । व्यवहारिक नय से तीनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं । अद्धा शब्द इसी अर्थ में देशी है ।

काहावण (कार्षापण)

'काहापण' शब्द के पर्याय में चार शब्दों का उल्लेख है । कार्षापण भारत वर्ष का अत्यधिक प्रचलित सिक्का था । मनुस्मृति में इसे पुराण भी कहा है । चांदी के कार्षापण या पुराण का वजन ३२ रत्ती था ।[2] खत्त-पक (क्षत्रपक) राजाओं का प्रसिद्ध सिक्का होता था ।[3]

कित्ति (कीर्ति)

कीर्ति आदि शब्द प्रशंसा के अर्थ में एकार्थक हैं । उनका अर्थ-

---

१. भटी प १४९ : एकार्थाः चैते शब्दाः ।

२. मनु ८/१३५-१३६ ।

३. अंचि प्र पृ १३ ।

भेद इस प्रकार है—

१. कीर्ति—दूसरों के द्वारा गुणकीर्तन, दान, पुण्य आदि से होने वाली प्रसिद्धि ।

२. वर्ण—लोकव्यापी यश ।

३. शब्द—लोक प्रसिद्धि ।

४. श्लोक—ख्याति ।

दसवैकालिक सूत्र के टीकाकार हरिभद्र ने क्षेत्र के आधार पर इनका अर्थ भेद किया है, जैसे—सर्व दिग्व्यापी प्रशंसा कीर्ति, एक दिग्व्यापी प्रसिद्धि वर्ण, अर्धदिग्व्यापी प्रशंसा 'शब्द', तथा स्थानीय प्रशंसा श्लोक है।[1]

कुंडल (कुण्डल)

'कुंडल' शब्द के पर्याय में ११ शब्दों का उल्लेख है। लगभग सभी शब्द कर्ण से प्रारम्भ हैं। बक, तलपत्तक, दक्खाणक, मत्थग आदि शब्द आज अप्रचलित हैं। कुछ शब्दों का आशय इस प्रकार है—

१. कर्णकोणक—भारी होने से कान को लम्बा करने वाला कुंडल।

२. कर्णपीड—कान को पीड़ा पहुंचाने वाला।

३. कर्णपूर—पूरे कान को ढंकने वाला।

४. कर्णकीलक—कान मे पहनी जाने वाली बाली।

५. कर्णलोटक—कान के नीचे लटकने वाले लम्बे झूमके।

कुल (कुल)

देखें—'संघ'।

केज्जूर (केयूर)

'केज्जूर' शब्द के पर्याय में ७ शब्दो का उल्लेख है। बाजूबंध के अर्थ मे इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। लेकिन इनमें आकृतिगत भिन्नता अवश्य है। 'तलभ' कंडूग, परिहेरग आदि शब्द इसी अर्थ में देशी हैं।

---

१. दसहाटी पृ ४७१।

केवल (केवल)

यहां 'केवल' शब्द केवलज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त है। इस ज्ञान में सतत उपयोग रहता है इसलिए इसे अनिवारितव्यापार व अविरहितोपयोग कहते हैं। यह अपने आप में परिपूर्ण है इसलिए एक तथा इसका कभी अंत नहीं होता अतः अनन्त है। विकल्पों से रहित होने से अविकल्पित तथा मोक्ष प्राप्त कराने का साधन होने से नैर्यात्रिक आदि इसके पर्याय नाम हैं।

कोह (क्रोध)

क्रोध शब्द के प्रसंग में दस पर्याय शब्दों का उल्लेख भगवती सूत्र में हुआ है। कलह से विवाद तक के शब्द क्रोध के कार्य हैं। लेकिन कारण में कार्य का उपचार करके इनको टीकाकार ने एकार्थक माना है[1]—

१. क्रोध—सामान्य अवस्था।

२. कोप—क्रोध आने पर स्वभाव से चलित होना।

३. रोष—क्रोध की परम्परा, लम्बे समय तक क्रोध का अनुबन्ध मन में रखना।

४. दोष—स्वयं को अथवा दूसरों को किसी घटना के लिए दोषी ठहराना अथवा अप्रीति मात्र द्वेष।

५. अक्षमा—दूसरों के अपराध को सहन न करना।

६. संज्वलन—क्रोध से निरन्तर मन ही मन जलते रहना।

७. कलह—जोर जोर से शब्द करते हुए परस्पर अनुचित शब्द बोलना।

८. चांडिक्य—रौद्र रूप धारण करना। जैसे—नसों का फड़कना, आंख व मुंह का लाल होना आदि।

९. भंडण—लकड़ी आदि से लड़ना।

१०. विवाद—परस्पर एक दूसरे के लिए निरन्तर आक्षेपात्मक शब्द बोलना।[2]

दोष तक क्रोध मानसिक रूप में रहता है। कलह तक वाचिक तथा

---

१. भटी प १०५१ : क्रोधैकार्था एते शब्दाः।

२. वही १०५१।

चाण्डिक्य से विवाद तक के शब्दों में क्रोध शारीरिक स्तर पर उतरने लगता है।

पाली साहित्य में आघात, पटिघात, पटिघ, पटिविरोध, कोप, पकोप, सम्पकोप, दोस, पदोस, चित्तस्स ब्यापत्ति, मनोपदोस, कोध, कुज्झना, कुज्झितत्त, दुस्सना, दुस्सितत्त, विरोध, पटिविरोध, चण्डिक्क, असुरोप, आदि शब्द क्रोध के वाचक माने हैं।[1]

खंत (क्षान्त)

जो विषय और कषायों से शान्त रहता है, वह क्षान्त कहलाता है। यहां ये पांचों शब्द इसी भावना के द्योतक हैं—

१. क्षान्त—क्रोध-निग्रह करने वाला।

२. अभिनिर्वृत—सभी तरह से प्रशान्त।

३. दान्त—इन्द्रिय-संयम करने वाला।

४. जितेन्द्रिय—विषयों में अनासक्त।

५. वीतगृद्धि—जो आसक्तियों से दूर है।

सढ (दे)

ये पांचों शब्द भोजन के प्रसंग में प्रयुक्त हैं। शीघ्रता के अर्थ में ये सभी एकार्थक हैं। इनका अर्थबोध इस प्रकार है[2]—

सढ—जल्दी जल्दी भोजन करना।

वेगित—ग्रास को शीघ्रता से निगलना।

त्वरित—कवल को शीघ्रता से मुंह में डालना।

चपल—शरीर को हिलाते हुए भोजन करना।

साहस—बिना विमर्श किये भोजन करना।

खलुंक (दे)

दुष्ट, वक्र आदि के अर्थ में 'खलुंक' शब्द का प्रयोग होता है। जब यह पशु या मनुष्य के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है तब इसका अर्थ होता है—दुष्ट मनुष्य या पशु, अविनीत मनुष्य या पशु और जब यह

---

१. धसं पृ २७१।

२. प्रश्नी पृ १२६।

लता, गुल्म, वृक्ष आदि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है, तब इसका अर्थ वक्र लता या वृक्ष, ठूंठ, गांठों वाली लकड़ी या वृक्ष होता है[1]।

देखें—'गंठि'।

खिंसणिया (खेदनिका)

'खिंसणिया' आदि तीनों शब्द प्रताड़ना की ही विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। जैसे—

खेदनिका—तिरस्कृत करना।

रुंटणिया—रुलाना। यह देशी शब्द है।

उपलम्भना—उपालम्भ देना, बुरा भला कहना।

खीण (क्षीण)

जैन आगमो में पल्योपम को उपमा से समझाया गया है। पल्य/कोठे के खाली होने के प्रसंग मे क्षीण आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है। हरिभद्र ने क्षीण, नीरज, निर्मल, निष्ठित आदि सभी शब्दो को एकार्थक माना है।[2]

खोडभंग (दे)

खोडभंग आदि तीनो शब्द देशी हैं। राजकुल के लिए जो स्वर्ण-मुद्राए या द्रव्य कर के रूप मे देय होता है, उसे खोड कहा जाता है। वह देय द्रव्य न देना खोडभग है। राजाओ के युग मे 'वेठ' (बेगार) देने की परम्परा थी। वह प्रत्येक परिवार के लिए अनिवार्य देनी होती थी। इसी प्रकार राजा के वीर पुरुषों को भोजन आदि देना भी अनिवार्य माना जाता था। ये तीनों शब्द इसी के द्योतक हैं।[3]

खोरक (दे)

यहा संगृहीत सारे शब्द विभिन्न आकृति वाले कटोरे-खप्पर के द्योतक हैं। दशवैकालिक की जिनदासकृत चूर्णि के एक कथानक के प्रसंग

---

१. उटि पृ १९९।

२. अनुद्वाहाटी पृ ८५ : एकार्थिकानि चैतानि पदानि।

३. निचूभा ४ पृ २८० : खोडं णाम जं रायकुलस्स हिरण्णादि दव्वं दायव्वं वेट्ठिकरणं परं परिणयणं खोरभडादियाण य खोल्लगादिण्णयाणं तस्स भंगो खोडभंगो।

में 'खोरय' (खोरक) शब्द का प्रयोग हुआ है। वह इस प्रकार है—एगम्मि नयरे एगो परिव्वायओ सोवण्णेण खोरएण गहिएणं हिंडति—एक नगर में एक परिव्राजक स्वर्णमय खोरक को लेकर घूम रहा था।[1] यहां खोरक का अर्थ कटोरा या खप्पर ही होना चाहिए।

गंडि (गण्डि)

अविनीत बैल के अर्थ में ये तीनों शब्द प्रयुक्त हैं। गलि शब्द गडि से बना प्रतीत होता है।[2] जो हांकने पर उल्टे मार्ग से जाता है और उछलता कूदता है वह गंडि है।[3] जो केवल खाता है, न भार ढोता है, न चलता है, वह गलि—दुष्ट बैल होता है।[4] 'मराली' शब्द इसी अर्थ में देशी है।

गंडूपक (दे)

'गंडूपक' शब्द के पर्याय में ८ शब्दों का उल्लेख है। ये सभी शब्द पैरों के विविध आभूषणों के बोधक हैं।

गड्डिक (दे)

भाग्यशाली व्यक्ति के अर्थ में 'गड्डिक' शब्द के पर्याय में चार शब्दो का उल्लेख है। आढ्यक और सुभग ये दोनों शब्द इस अर्थ को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। 'गड्डिक' और 'पोट्टह'—दोनो शब्द इसी अर्थ मे देशी है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे जिसके पास गाड़ी होती थी वह भाग्यशाली माना जाता था। 'गड्डिक' शब्द उसी अर्थ का सवाहक प्रतीत होता है।

'पोट्ट' शब्द पेट के अर्थ में देशी है। संभव है जिसे पेट भर भोजन प्राप्त होता था, वह भाग्यशाली होता था। 'पोट्टह' शब्द संभवतः इसी अर्थ की सूचना देता है।

---

१. दशजिचू पृ ५५।

२. आप्टे पृ ६४३ : गुणानामेव दौरात्म्याद्धुरि धुर्यो नियुज्यते।
असंजातकिणस्कंधः सुखं स्वपिति गौर्गडिः।

३. उशाटी प ४१ : गच्छति प्रेरितः प्रतिपथादिना ढौकते च कूर्दमानो विहायोगमनमनेनेति गण्डिः।

४. वही प ४९ : गिलत्येव केवलं न तु वहति गच्छति चेति गलिः।

गण (गण)

गण आदि शब्द भिन्न-२ वर्गों के समूह के द्योतक हैं। कुछ शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

गण—मल्ल आदि गण-समूह।

काय—पृथ्वीकाय आदि।

स्कन्ध—परमाणुओं का समूह।

संघात—तीर्थ-यात्रा के लिए प्रस्थित व्यक्तियों का समूह।

आकुल—राजकुल के आंगन में सम्मिलित जन-समूह।

इस प्रकार ये सभी शब्द समूह के स्पष्ट वाचक हैं।[1]

गहण (गहन)

गहन, वन, अरण्य और अटवी—इन चारों शब्दों को कोशकारों ने एकार्थक माना है। लेकिन क्षेत्र, अवस्था व अवस्थिति से इनका अर्थ-भेद ज्ञातव्य है—

गहन—वह वन जो अत्यन्त सघन हो तथा जिसमें प्रवेश पाना अत्यन्त दुष्कर हो।

वन—नगर से दूर स्थित तथा जहां एक जाति के वृक्ष हों।

अरण्य—वैसा जंगल जहां तापस आदि रहते हैं तथा उपासक अपने अंतिम वय में वहां जाकर शेष जीवन व्यतीत करता है।[2]

अटवी—वह जंगल जहां शिकारी शिकार की खोज में घूमते हैं।[3]

गुण (गुण)

गुण और पर्याय दोनों द्रव्य में रहते हैं। जो धर्म द्रव्य का सहभावी होता है उसे गुण और जो धर्म क्रमभावी—बदलता रहता है उसे पर्याय कहते हैं। एक दृष्टि से गुण भी पर्याय ही है।

गुरुग (गुरुक)

प्रायश्चित्त के दो प्रकार हैं—उद्घातिक और अनुद्घातिक।

---

१. अनुद्वामटी प ३८-३९ : पर्यायवाचका ध्वनयः।

२. आप्टे, पृ २१४ : अर्यंते गम्यते शेषे वयसि···इति अरण्यम्।

३. आप्टे पृ ३६ : अटन्ति...मृगयाविहारार्थं वा यत्र।

उद्घातिक लघु प्रायश्चित्त है और अनुद्घातिक गुरु प्रायश्चित्त है। मास-गुरुक, चतुर्गुरुक आदि अनुद्घातिक प्रायश्चित्त होते हैं। इसके तीन पर्याय नाम हैं।

१. गुरुक—यह लघु प्रायश्चित्त की अपेक्षा गुरु होता है, बड़ा होता है।

२. अनुद्घातिक—इसको वहन करना ही होता है, इसका उद्घात नहीं होता।

३. कालक—काल की अपेक्षा से उद्घातिक सान्तर है और अनुद्घातिक निरंतर होता है। इसलिए इसे 'कालक' कहा गया है।[1]

गोणस (गोनस)

'गोणस' आदि शब्द सर्प की विभिन्न जातियों के वाचक हैं। उनकी विभिन्न आकृतियों के आधार पर ये शब्द प्रचलित हुए हैं। जैसे—

१. गोनस—गाय जैसी नासिका वाला सर्प।

२. मंडली—मण्डलाकृति वाला सर्प।

३. दर्वीकर—प्रहार आदि के लिए फण का प्रयोग करने वाला सर्प।

घट (घट)

घट, कुट, कुम्भ, आदि शब्दों को कोशकारों ने एकार्थक माना है, लेकिन समभिरूढ नय की दृष्टि से व्युत्पत्ति कृत भेद यह है[2]—

घट—जो चेष्टा द्वारा घड़ा जाता है।

कुट—जो टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, अथवा जो विभिन्न आकारों में मोड़ा जाता है।[3]

कुम्भ—जो कु/पृथ्वी पर सुशोभित होता है[4]। अथवा जिसे पृथ्वी पर स्थित कर भरा जाता है।[5]

कलश—बड़े पेट वाला घड़ा।

देखें—'अरंजर'।

---

१. बृकटी पृ १३१०-११।

२. सूटी २ प ४२७ : पर्यायाणां नानार्थतया समभिरोहणात् 'समभिरूढो,' मह्नु' घटादिपर्यायाणामेकार्थतामिच्छति तथाहि घटनाद् घट······ :

३. अनुद्वामटी प १२५।

४. वही प १२५ : कौ भातीति कुम्भः।

५. नंदि पृ १६०।

मट्ठ (मृष्ट)

'मट्ठ' आदि शब्द परिकर्म के विभिन्न प्रकार हैं। इसका अर्थबोध इस प्रकार है—

१. मृष्ट—गोबर आदि से लीपना।

२. मृष्ट—खड़िया से पोतना।

३. नीरज—रज रहित करना।

४. संमृष्ट—ऊबड़-खाबड़ भूमि को समान करना।

५. संप्रधूपित—दुर्गन्ध आदि दूर करने के लिए धूप देना।

घाय (घात)

इसके अन्तर्गत गृहीत सभी शब्द मारने की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं।

१. घात—चोट पहुंचाना।

२. वध—लकड़ी आदि से मारना।

३. उच्छादन—निर्मूल नाश।

चाउम्मासिस (चातुर्मासिक)

सामान्यत: चतुर्मास चार मास का होता है अत: उसे चातुर्मासिक कहा जाता है। प्राचीन काल मे साल का प्रारम्भ चातुर्मास से होता था अत: वर्षावास का एक नाम सावत्सरिक भी है।

चंडाल (चण्डाल)

प्रस्तुत शब्द कार्य के आधार पर विभाजित चंडाल की विभिन्न जातियो के द्योतक हैं—

हरिकेश—चण्डाल की जाति।

चाण्डाल—फांसी और शूली देने के लिए नियुक्त।

श्वपाक—कुत्ते का मांस पकाकर खाने वाला।

मातग—निषिद्ध कार्य करने वाला।

बाहिर—गांव के प्रान्तभाग में रहने वाला।

पाण—चडाल के अर्थ मे देशी शब्द।

श्वानधन—कुत्तों को पालने वाला।

मृताशा—मृत व्यक्तियों से श्मशान घाट पर प्राप्त होने वाली वस्तुओं पर जीने वाला।

श्मशानवृत्ति—श्मशानघाट पर कार्य करने वाला।

नीच—अन्यान्य नीच कार्य करने वाला।

इस प्रकार कार्यगत विभिन्नता होने पर भी जातिगत एकता के आधार पर सभी एकार्थक हैं।[1]

चालित्तए (चालयितुम्)

एक प्रकार से ये सारे शब्द मूलस्थान से च्युत करने की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। इनका अर्थभेद इस प्रकार है—

चालित—स्वीकृत व्रत के प्रति अन्यथा भाव पैदा करना।

क्षुभित—कृत संकल्प के प्रति संशय पैदा करना।

खंडित—व्रत को आंशिक रूप से खंडित करना।

भंजित—व्रत को सम्पूर्ण रूप से तोड़ देना।

विपरिणामित—संकल्प के विपरीत अध्यवसाय करना।

चित्त (चित्त)

चित्त, मन और विज्ञान—ये तीनों शब्द सामान्य रूप से पर्यायवाची हैं, लेकिन इनमें कुछ अर्थ-भेद भी है—

चित्त—चेतना का अंश।

मन—मनोवर्गणा के पुद्गलों से उपरंजित पौद्गलिक द्रव्य।[2]

विज्ञान—विवेक चेतना या विशिष्ट चेतना।

बौद्ध साहित्य में भी चित्त शब्द के पर्याय में चित्त, मन, मानस, हृदय, पण्डर, मनायतन, मनिन्द्रिय, विञ्ञाण आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है।[3]

---

१. उशाटी प ३२४।

२. (क) अनुद्वाचू पृ १३ : चित्त इत्यात्मा।
   (ख) वही, पृ १३ : तदेव मनोद्रव्योपरञ्जितं मनः।

३. धसं पृ ३६।

चेयण्ण (चैतन्य)

जैन धर्म-परम्परा में यह मान्यता है कि सभी जीवों में अक्षर (चेतना) का अनन्तवां भाग नित्य उद्घाटित रहता है। यह जीवत्व का नियामक तत्त्व है। यदि यह न हो तो जीव और अजीव में कोई अन्तर नहीं रह पाता। प्रस्तुत प्रसंग मे अक्षर का अर्थ है—चैतन्य। उपयोग चैतन्य की प्रवृत्ति है। इस प्रकार ये तीनों शब्द एकार्थक हैं।[1]

छज्जिय (दे)

छज्जिय आदि तीनों शब्द टोकरी के अर्थ में प्रयुक्त देशी शब्द हैं। आजकल प्रसिद्ध 'छाबड़ी' शब्द छज्जिय का ही अपभ्रंश लगता है।

छन्द (छन्द)

छन्द, वेद और आगम भिन्नार्थवाची होने पर भी भावार्थ में एकार्थक हैं। धर्मशास्त्र के छः अंग हैं, उनमें छद का चौथा स्थान है। जिससे धर्म जाना जाता है वह वेद है तथा जो आप्त पुरुषो से प्राप्त होता है वह आगम है। इस प्रकार तीनों ही शब्द आगम/धर्मशास्त्र के बोधक हैं।

छिद्द (छिद्र)

छिद्र का सामान्य अर्थ है—छेद, विवर। छिद्र का एक अर्थ अवसर भी होता है। छिद्रान्वेषी या घात करने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार से छिद्रो (अवसरो) की अन्वेषणा करता है। छिद्र आदि शब्द उसी के द्योतक हैं—

छिद्र—अकेलापन।

अन्तर—अवसर।

विरह—एकान्त, विजनस्थान।

उपासकदशा ८/१६ में रेवती के प्रसग में ये तीनों शब्द व्यवहृत हैं। रेवती अपनी सौतों की घात के लिए अन्तर, छिद्र और विरह की अन्वेषणा करती है। ये तीनो शब्द 'अवसर' के वाचक हैं।

छेय (छेक)

कुशल व्यक्ति के लिए यहां छेक आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है।

१. दशाजिचू पृ ४६।

भिन्न-भिन्न क्षेत्र की कुशलता की दृष्टि से सभी शब्द विमर्शनीय हैं। जैसे—

१. छेक—७२ कलाओं में पंडित।

२. दक्ष—शीघ्र कार्य संपादित करने वाला।

३. प्रष्ठ—वाग्मी, कुशल वक्ता।

४. कुशल—सभी क्रियाओं का सम्यक् ज्ञाता।

५. मेधावी—आपस में अविरोधी तथा पूर्वापर का अनुसंधाता।

६. निपुण—शिल्प आदि क्रियाओं में कुशल।[1]

जंबू (जम्बू)

जम्बूद्वीप के नामकरण का एक आधार है—जम्बूवृक्ष। इस वृक्ष के बारह पर्यायवाची मिलते हैं। उनकी अभिधा एक है, किन्तु व्यञ्जना से उनकी पर्यायगत भिन्नता भी है—

१. सुदर्शन—आंखों के लिए मनोहारी।

२. अमोघ—फलवान।

३. सुप्रबुद्ध—सदा पुष्पित व फलित।

४. यशोधर—जम्बूद्वीप के नाम का आधारभूत वृक्ष होने के कारण यशस्वी।

५. सुभद्र—सदा कल्याणकारी।

६. विशाल—विस्तीर्ण।

७. सुजात—शुद्ध उत्पत्ति से युक्त।

८. सुमन—अति रमणीय होने के कारण मन को प्रसन्न करने वाला।

९. विदेहजंबू—स्थानगत नाम।

१०. सौमनस्य—मन को भाने वाला।

११. नियत—शाश्वत रहने वाला।

१२. नित्यमंडित—सदा अलंकृत दीखने वाला।[2]

---

१. राजटी पृ ६३।

२. जीवटी प २९९-३००।

जणसंमद्द (जनसम्मर्द)

ये सभी शब्द विभिन्न प्रकार के जन समुदाय और उससे होने वाले कोलाहल के प्रतीक हैं। जनव्यूह, जनसंमर्द, जनोर्मि, जनोत्कलिका आदि शब्द सामान्यतः जनसमुदाय को अभिव्यक्त करते हैं तथा भिन्न-भिन्न स्थानों से आए लोगो का एक स्थान पर मिलन जन-सन्निपात है। कोलाहल के आधार पर जनसमुदाय का बोध होता है, इसलिए जनबोल व जनकलकल भी इसी के अन्तर्गत पर्याय शब्दों में लिए गए हैं।

जण्ण (यज्ञ)

'जण्ण' आदि तीनों शब्द विभिन्न प्रकार के उत्सवों के वाचक हैं। इनका अर्थभेद इस प्रकार है—

यज्ञ—नागादि की पूजा का उत्सव।

क्षण—जिस उत्सव में अनेक लोगों को भोजन कराया जाता है तथा दान किया जाता है।

उत्सव—इन्द्र, कार्तिकेय आदि का महोत्सव।

जल्ल (दे)

ये तीनो शब्द मैल के लिए प्रयुक्त होने वाले देश्य शब्द हैं।

जल्ल—जो आकर पसीने के साथ चिपक जाता है।

मल्ल—स्वल्प प्रयत्न से दूर किया जाने वाला मैल।[1]

कमढ—चिकना मैल।[2]

जवइत्तए (यापयितुम्)

जवइत्तए और लाढत्तए—दोनो एकार्थक हैं। लाढेत्तए शब्द 'लाढ' शब्द से बना प्रतीत होता है। भगवान् महावीर ने लाढ देश में विहार कर अनेक कष्ट सहे थे, अतः आगे चलकर यह शब्द कष्ट-सहने वालों के लिए श्लाघा-सूचक बन गया।[1]

उत्तराध्ययन की बृहद्वृत्ति में लाढे का अर्थ सत् अनुष्ठान से प्रधान किया है।[3]

---

१. राजटी पृ ३१

२. उटि पृ १८।

३. उशाटी प ४१४।

जस (यशस्)

यश का सामान्य अर्थ है—कीर्ति। वर्ण का तात्पर्य है—प्रशंसा तथा संयम का अर्थ है—नियंत्रण। व्यवहार टीका में भगवती सूत्र (४१/१६) में आये आत्मयश का अर्थ आत्मसंयम किया गया है। तथा यश, संयम और वर्ण को एकार्थक माना है।[1] हरिभद्र ने भी यश शब्द का अर्थ संयम किया है।[2]

जावंताव (यावत्तावत्)

स्थानांग सूत्र में दस प्रकार के संख्यान/गणित का वर्णन है। इसमें जावंताव (यावत्तावत्) छठा संख्यान है। गुणकार इसका पर्याय नाम है। पहले जो संख्या सोची जाती है, उसे गच्छ कहते हैं। इच्छानुसार गुणन करने वाली संख्या को वाञ्छा या इष्ट संख्या कहते हैं। गच्छ सख्या को इष्ट संख्या से गुणन करते हैं। उसमें फिर इष्ट संख्या मिलाते हैं। उस संख्या को पुनः गच्छ से गुणा करते हैं। तदन्तर गुणनफल में इष्ट के दुगुने का भाग देने पर गच्छ का योग आता है। इस प्रक्रिया को यावत्तावत् कहते हैं। उदाहरणार्थ—

कल्पना करें कि गच्छ १६ है, इसको इष्ट १० से गुणा किया—१६×१०=१६० इसमें पुनः इष्ट १० मिलाया (१६०+१०=१७०) इसको गच्छ से गुणा किया (१७०×१६=२७२०) इसमें इष्ट की दुगुनी संख्या से भाग दिया २७२०÷२०=१३६, इस वर्ग को पाटी गणित भी कहा जाता है।[3]

जीवत्थिकाय (जीवास्तिकाय)

जीव के अभिवचन/पर्याय २३ हैं। ये जीव की विभिन्न क्रियाओं, अवस्थाओं के आधार पर उल्लिखित हैं, जैसे—

विज्ञ—जो सब कुछ जानता है।

वेद—जो सुख-दुःख का संवेदन करता है।

---

१. व्यभा ६ टी प ४६।

२. दशहाटी प १८८ : यशः शब्देन संयमोऽभिधीयते।

३. स्थाटी प ४७१।

चेता—कर्म पुद्गलों का चय/उपचय करने वाला ।

जेता—कर्म रिपु को जीतने वाला ।

रंगण—राग-आसक्ति से युक्त ।

हिंडुक—एक गति से दूसरी गति में जाने वाला ।

पुद्गल—शरीर आदि पुद्गलों का चय-अपचय करने वाला ।

मानव—अनादि होने से जो नया नहीं है ।

कर्ता—कर्मों को करने वाला ।

विकर्ता—कर्मों का छेदन करने वाला ।

जगत्—निरन्तर गतिशील ।

जंतु—जननशील ।

योनि—दूसरों को उत्पन्न करने वाला ।

स्वयंभू—स्वयं पैदा होने वाला ।

सशरीरी—शरीर के साथ रहने वाला ।

अंतरात्मा—जो चेतनामय है, पुद्गलमय नहीं ।

इस प्रकार सभी अभिवचन जीव को परिभाषित करते हैं ।[1]

जीव आदि के लिए देखें—'प्राण' ।

जीवाभिगम (जीवाभिगम)

यह दशवैकालिक के चतुर्थ अध्ययन का नाम है । निर्युक्तिकार ने इसके सात पर्यायवाची नाम गिनाते हुए उनकी सार्थकता का प्रतिपादन किया है—

१. जीवाभिगम }
२. अजीवाभिगम } —इस अध्ययन में जीव और अजीव के लक्षणों का सुन्दर निरूपण है ।

३. आचार—षड्जीवनिकाय के प्रति मुनि के आचार का निरूपक ।

४. धर्मप्रज्ञप्ति—भगवान् महावीर की धर्म प्रज्ञापना का मूल ।

५. चारित्र-धर्म—इसमें चारित्र-धर्म महाव्रतों का सांगोपांग वर्णन है ।

६. चरण—मुनि के मूल नियमों का प्रतिपादक ।

---

१. भगो पृ १४३२ ।

७. धर्म—श्रुतधर्म का सारभूत अध्ययन है।

इस प्रकार ये एकार्थक शब्द अध्ययन में प्रतिपाद्य विभिन्न विषयों का अवबोध देते हैं।[1]

दशवैकालिक के चतुर्थ अध्ययन में सूत्र और पद्य दोनों हैं। उसमें प्रथम नौ सूत्र तक जीव और अजीव का अभिगम है। दसवें से सत्रहवें सूत्र तक चारित्र धर्म के स्वीकार की पद्धति का निरूपण है। अठारहवें से तेइसवें सूत्र तक यतना का वर्णन है। पहले से ग्यारहवें श्लोक तक बन्ध और अबन्ध की प्रक्रिया का उपदेश है। बारहवें श्लोक से पच्चीसवें श्लोक तक धर्मफल की चर्चा है।

जुइ (द्युति/युति)

'जुइ' आदि शब्द व्यक्ति की समृद्धि व तेजस्विता के द्योतक हैं। ये व्यक्ति की विशिष्ट अवस्था की विभिन्न पर्यायों को अभिव्यक्त करते हुए भी एकार्थक हैं[2]—

१. द्युति
   युति } —कांति, इष्ट पदार्थों का संयोग।

२. प्रभा—यान वाहन की समृद्धि।

३. छाया—शोभा।

४. अर्चि—शरीर पर पहने हुए आभूषणों की दीप्ति।

५. तेज—शरीर की तेजस्विता।

६. लेश्या—शरीर का वर्ण।

जोग (योग)

जीव और शरीर के साहचर्य से होने वाली प्रवृत्ति 'योग' है। यहां योग शब्द शक्ति/सामर्थ्य के अर्थ में प्रयुक्त है। इनमें कुछ शब्दों का आशय इस प्रकार है—

वीर्य—मानसिक शक्ति।

स्थाम—शारीरिक सामर्थ्य।

---

१. दशहाटी प १६० : एकार्थिका एते शब्दाः।

२. भटी प १३२ : एकार्था चैते शब्दाः।

परा्क्रम—स्वाभिमान से युक्त सामर्थ्य।

सामर्थ्य—क्षमता।

उत्साह—मानसिक संकल्प।

पालि में विरियारम्भ, निक्कम, परक्कम, उय्याम, वायाम, उस्साह, उस्सोलही, थाम, ठिति, असिथिलपरक्कमता, अनिक्खित्तछन्दता, अनिक्खित्त धुरता, धुरसम्पग्गाह, विरिय आदि शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त हैं।[1] इसमें अनेक शब्द प्रस्तुत एकार्थक 'जोग' के संवादी हैं।

झोस (दे)

झोस का अर्थ है—वह राशि जिससे समीकरण हो जाता है। इस प्रकार समीकरण के अर्थ में यह गणित का देशी पद है।

डिंब (डिम्ब)

'डिम्ब' आदि शब्द उपद्रव के अर्थ में एकार्थक हैं—

१. डिम्ब—विघ्न।

२. डमर—राजकुमार आदि द्वारा उत्पन्न उपद्रव।

३. कलह—वाचिक लड़ाई।

४. बोल—जोर-जोर से बोलकर लड़ना।

५. क्षार—परस्पर ईर्ष्याभाव से कलह करना।

६. वैर—शत्रुता रखना।

डिप्फर (दे)

'डिप्फर' आदि शब्द बैठने व सोने के लिए काम में आने वाले आसन विशेष के नाम हैं। यद्यपि इनमे आकार-प्रत्याकार की भिन्नता है, लेकिन आसन की समानता से इनको एकार्थक माना है। इनमें कुछ विशिष्ट शब्दो का अर्थ इस प्रकार है—

१. डिप्फर—बैठने के आसन के लिए प्रयुक्त देशी शब्द।

२. पीढफलक—पलाल अथवा बेंत से निर्मित बैठने का आसन।

---

१. धसं पृ ७८।

३. सत्थिय—स्वस्तिक के आकार का आसन।

४. सलिक(म)—सोने का बिछौना।

५. मसूरक—वस्त्र या चर्म का वृत्ताकार आसन।

६. आशालक—अवष्टम्भ वाला—जिसके पीछे सहारा हो वह आसन।

७. मंचक—दो लट्ठों को बांधकर बैठने के लिए बनाया जाने वाला आसन।

णंदी (नन्दि)

प्रमोद व प्रसन्नता के अर्थ में नंदी शब्द के पर्याय प्रयुक्त हैं। कंदर्प प्रमोद का कारण है अतः कारण में कार्य का उपचार से यह नंदी का एकार्थक है।

णग (नग)

'णग' शब्द के पर्याय में प्रयुक्त सभी शब्द सामान्यतः पर्वत के एकार्थक हैं। भगवती सूत्र में पर्वत, गिरि, डुंगर, उच्छल (उत्स्थल) भट्ठि (दे) आदि को एकार्थक मानते हुए भी इनमें भेद स्वीकार किया है,[1] जैसे—

पर्वत—जहां उत्सव मनाये जाते हैं। जैसे वैजयन्त, वैभारगिरि पर्वत आदि।

गिरि—लोगो के निवास के कारण जहां कोलाहल रहता है। जैसे गोपालगिरि, चित्रकूट आदि।

डुंगर—शिला समूह से निर्मित अथवा जहां चोर निवास करते हैं।

उत्स्थल—रेतीला टीला जो पर्वत के आकार का प्रतीत होता है।

भट्ठि—धूल से रहित पर्वत।[2]

णपुंसक (नपुंसक)

निशीथ भाष्य में नपुंसक के १६ भेद प्राप्त हैं—

---

१. भटी प ३०६ : पर्वतादयोऽत्यत्रैकार्थतया रूढास्तथापीह विशेषो दृश्यः।

२. भटी प ३०६-७।

१. पंडक
२. वातिक
३. क्लीब
४. कुंभी
५. ईर्ष्यालुक
६. शकुनि
७. तत्कर्मसेवी
८. पक्ष-अपक्ष
९. सौगन्धिक
१०. आसक्त
११. वद्धित
१२. चिप्पित
१३. मंत्र से वेदोपहत
१४. औषधि से वेदोपहत
१५. ऋषि द्वारा शप्त
१६. देव द्वारा शप्त ।

इन सबकी व्याख्या निशीथ भाष्य में प्राप्त है। प्रस्तुत कोश में 'णपुंसक' के एकार्थ नामों में अनेक नाम सवादी हैं। कुछेक शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है—

१. चिल्लिक—(चिप्पित) जिसके जन्म से ही अंगुष्ठ व अंगुलियां चढी रहती हैं।
२. पंडक—महिला स्वभाव वाला, मृदु वाणी वाला, सशब्द मूत्र करने वाला आदि आदि।
३. वातिक—जिसकी जननेन्द्रिय वायु के कारण स्तब्ध रहती है।
४. क्लीब—जो शीघ्र स्खलित हो जाता है।
५. कुंभी—जिसकी जननेन्द्रिय सूजन से युक्त होती है।
६. ईर्ष्यालुक—बलात् ब्रह्मचर्य का पालन करने के कारण जो नपुंसक हो जाता है।
७. पाक्षिक-अपाक्षिक—शुक्ल या कृष्णपक्ष मे जिसके मोह उदय अति तीव्र होता है और अपाक्षिक में कम होता है। निरोध करने के कारण कालान्तर में वह नपुंसक हो जाता है।

इस प्रकार अन्यान्य शब्द भी विभिन्न प्रकार के नपुंसकों के वाचक हैं। कुछ नाम उनके स्वभाव की सूचना देते हैं और कुछ उनकी शरीरगत अवस्थाओं के द्योतक हैं।

विशेष विवरण के लिए देखें—निभा ३५६१-३६००।

णमोक्कत (नमस्कृत)

देखें—'अच्चिय'।

णाण (ज्ञान)

ज्ञान, संवेदन, अधिगम, चेतना और भाव—ये पांचों शब्द ज्ञान

के वाचक हैं। जानना, संवेदन करना, सूक्ष्म अध्यवसायों का उत्पन्न होना—ये सारे ज्ञान के ही विविध पर्याय हैं। जीव का लक्षण है—ज्ञान। ज्ञान से व्यतिरिक्त जीव नहीं होता। ये सारी अवस्थाएं जीव—चेतन तत्व में ही पायी जाती हैं।

णावा (नौ)

णावा शब्द के पर्याय में १४ शब्दों का उल्लेख है। कुछ शब्द विभिन्न प्रकार की नावों के वाचक हैं। जैसे—नाव, पोत, तप्रक आदि। नाव तैरने में सहयोगी है, इसी प्रकार नाव के अतिरिक्त अन्य साधन जो तैरने में सहयोगी हैं उनको 'णावा' शब्द के पर्याय के अन्तर्गत लिया गया है। जैसे वेलु (बांस), कुंभ (घड़ा), दृति (चमड़े की मशक) आदि, ये सभी तैरने में सहयोगी होने से णावा के पर्याय हैं।

कोट्टिंब, सालिका आदि शब्द इस अर्थ में देशी हैं।

णिडालमासक (ललाटमाशक)

'णिडालमासक' का अर्थ है—ललाट पर किया जाने वाला तिलक। सभी शब्द इसके स्पष्ट वाचक हैं। 'अवंग' शब्द संभवतः इसी अर्थ में देशी होना चाहिए।

णिम्मंसक (निर्मांसक)

'णिम्मंसक' शब्द के पर्याय में अनेक शब्दों का उल्लेख है। जिसका शरीर तपस्या या किसी कारण से सूख कर कांटा हो जाता है, हड्डियों का ढांचा मात्र रह जाता है वह निर्मांसक होता है। अस्थिकलेवर आदि शब्द उसी के वाचक हैं। शुष्क, निशुष्क, परिहीन, अवक्षीण आदि शब्द शरीर की उसी अवस्था के बोधक हैं।

णिव्वाण (निर्वाण)

'णिव्वाण' शब्द के पर्याय में ५ शब्दों का उल्लेख है। टीकाकार ने इनको 'निर्वाणसुख' का एकार्थक माना है।[1] मोक्ष का सुख बाधा रहित होता है, इसलिए अनाबाध तथा वहां कषायाग्नि शान्त हो जाती है इसलिए शीतीभूतपद भी इसका एक पर्याय है।[1]

---

१. आटी प १५०

णिस्संकित (निःशंकित)

शंका रहित चेतना के विशेषण के रूप में इन तीनों शब्दों का उल्लेख है।

देखें—'संकित'।

णिसीहिया (निषीधिका)

स्वाध्याय-भूमि प्रायः उपाश्रय से भिन्न होती थी। वृक्षमूल आदि एकान्त स्थान को स्वाध्याय के लिए चुना जाता था। वहां जनता के आवागमन का निषेध रहता था। 'निषेध' शब्द से ही नैषेधिकी शब्द बना है ऐसा प्रतीत होता है। दिगम्बरो मे प्रचलित 'नसिया' शब्द इसी का वाचक है।

तंडि (दे)

देखें—'गंडि'।

तक्क (तक्र)

छाछ के अर्थ में 'तक्क' शब्द के पर्याय में तीन शब्दो का उल्लेख है। छाछ पानी की भांति पतली होती है अतः उपचार से इसका एक नाम उदग माना है। तथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से 'छाछ' शब्द छासि का ही बना हुआ प्रतीत होता है। छासि→छास→छाछ। खानदेश में बोली जाने वाली अहिराणी भाषा मे छाछ को आज भी 'छास' कहते हैं।

तक्क (तर्क)

तर्क, सज्ञा, प्रज्ञा, विमर्श आदि शब्द ज्ञान की विविध पर्यायों के द्योतक हैं—

१. तर्क—ईहा से पहले तथा अवाय से पूर्व होने वाला ज्ञान अथवा अन्वय-व्यतिरेक पूर्वक होने वाला बोध।
२. संज्ञा—वस्तु को जानने का सम्यक् बोध।
३. प्रज्ञा—हेयोपादेय का निश्चय करने वाली बुद्धि।
४. मीमासा—वस्तु के सूक्ष्म धर्म का पर्यालोचन करने वाली बुद्धि।

बौद्ध साहित्य में भी तक्क, वितक्क, सङ्कप्प, अप्पना, व्यप्पना आदि शब्द एक अर्थ में प्रयुक्त हैं।[1]

---

१. धसं पृ १९।

तट्टक (दे)

'तट्टक' शब्द के पर्याय में 'अंगविज्जा' में बारह शब्दों का उल्लेख हुआ है। ये शब्द भिन्न-२ आकृति वाले थालों के वाचक हैं। आज लगभग सभी शब्द अप्रचलित हैं। संभव है ये शब्द विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार के थालों के लिए प्रयुक्त रहे हों। कन्नड़ भाषा में आज भी थाल को तट्टे कहते हैं।

तच्चित्त (तच्चित्त)

तच्चित्त आदि शब्द भावक्रिया/तन्मयता के अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। यद्यपि चित्त, मन, लेश्या, अध्यवसाय, करण और भावना—ये सभी शब्द अलग अलग अर्थों के द्योतक हैं, लेकिन यहां सभी शब्द समस्त पद होने से तन्मयता/एकाग्रता के अर्थ में एकार्थक हैं।[1]

तत्थ-तत्थ (तत्र-तत्र)

यहां तीन शब्द हैं—तत्र-तत्र, देशे-देशे, तस्मिन्-तस्मिन्। यद्यपि इन तीनों का अर्थ भिन्न है, फिर भी विस्तार की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक होने के कारण इन्हें एकार्थक माना है।[2] ये तीनों शब्द पुष्करणी मे अवस्थित कमलों की व्यापकता के बोधक हैं—

१. तत्र-तत्र—यहां वहां वे कमल व्याप्त थे।

२. देशे-देशे—कही कहीं वे अधिक व्याप्त थे।

३. तस्मिन्-तस्मिन्—उस पुष्करिणी का एक भी भाग ऐसा नही था जो कमलों से व्याप्त न हो।

तमुक्काय (तमस्काय)

अरुणवरद्वीप जम्बूद्वीप से असंख्यातवां द्वीप है। उसकी बाहरी वेदिका के अन्त से अरुणवर समुद्र में ४२ हजार योजन जाने पर एक प्रदेश (तुल्य अवगाहन) वाली श्रेणी उठती है और वह १७२१ योजन ऊंची जाने के पश्चात् विस्तृत होती है। वह सौधर्म आदि चारों देवलोकों को घेरकर पांचवे देवलोक (ब्रह्मलोक) के रिष्ट नामक विमान-प्रस्तट तक चली गई है। यह अजीव पदार्थ है। उसके पुद्गल अंधकारमय हैं,

१. अनुद्वारमटी प २७ : एकार्थिकानि वा विशेषणान्येतानि प्रस्तुतोपयोग-प्रकर्षप्रतिपादनपराणि।

२. सूटी प २७२ : अत्यादरख्यापनार्थैकार्थान्येवैतानि त्रीण्यपि पदानि।

इसलिए उसे तमस्काय कहा जाता है। लोक में उसके समान कोई दूसरा अंधकार नहीं है, इसलिए इसे लोकांधकार कहा जाता है। देवों का प्रकाश भी उस क्षेत्र में हत-प्रभ हो जाता है, इसलिए उसे देवांधकार कहा जाता है। उसमें वायु प्रवेश नहीं पा सकती, इसलिए उसे वातपरिघ और वातपरिघक्षोभ कहा जाता है। वह देवों के लिए भी दुर्गम है, इसलिए उसे देव-आरण्य और देवव्यूह कहा जाता है।[1]

तरच्छ (तरक्ष)

'तरच्छ' आदि शब्द वर्ण, आकार आदि के आधार पर व्याघ्र की भिन्न-२ जातियों के बोधक हैं।

तितिक्खा (तितिक्षा)

तितिक्षा, अहिंसा और ह्री को निर्युक्तिकार ने संयम का पर्याय माना है। तथा इसके साथ दया, संयम लज्जा, दुगुञ्छा और अछलना को भी इसी के पर्यायवाची माना है। टीकाकार ने इसकी व्याख्या में यह स्पष्ट किया है कि ये सभी शब्द नाना देश के विद्यार्थियों को अर्थबोध कराने के लिए प्रयुक्त हैं।[2]

देखें—'दया'।

तिरीड (किरीट)

प्रस्तुत एकार्थक में मस्तक पर पहने जाने वाले विभिन्न आकृति के मुकुटों का उल्लेख है। कुछ शब्द विभिन्न देशों में प्रसिद्ध मुकुटों के वाचक हैं। सामान्यतः मुकुट और किरीट एकार्थक हैं लेकिन इनमें कुछ अन्तर है। जिसमे तीन शिखर हों वह किरीट तथा चार शिखर वाले को मुकुट कहते हैं।

तिलोवलद्धीय (तिलोपलब्धिक)

'तिलोवलद्धीय' आदि तीनों शब्द तिल से निष्पन्न खाद्य पदार्थ के वाचक हैं। वर्तमान में इसे तिलपपड़ी कहा जाता है।

तिसरा (दे)

'तिसरा' के पर्याय मे यहां नौ शब्दों का उल्लेख है। ये सारे शब्द मछली पकड़ने के जाल विशेष के लिए प्रयुक्त होने वाले देश्य शब्द हैं। आज इनकी पहचान दुर्लभ है।

---

१. ठाणं पृ ५१०।
२. उशाटी प १८४।

तिसला (त्रिशला)

महावीर की माता के लिए आचारचूला में तीन पर्याय शब्दों का उल्लेख है। त्रिशला उनका सर्वप्रसिद्ध नाम है। वे विदेह-जनपद से सम्बन्धित थीं इसलिए विदेहदत्ता तथा सबका प्रिय करने से उनका एक नाम प्रियकारिणी भी हो गया।

तुलणा (तुलना)

जिससे आत्मा तोली जाये वह तुलना है। यहां तुलना, भावना और परिकर्म को एकार्थक माना है। विशिष्ट साधक (जिनकल्पी) की सहिष्णुता की कसौटी के लिए पांच तुलाएं मान्य हैं। जब साधक उन तुलाओं में उत्तीर्ण हो जाता है तब वह विशिष्ट साधना की ओर अग्रसर होता है। वे पांच तुलाएं ये हैं—तप, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और बल।

तप भावना से साधक क्षुधा पर विजय पा लेता है। सत्त्व भावना से भय और निद्रा को पराजित करता है। सूत्र भावना के अभ्यास से साधक श्रुत को अपने नाम की तरह परिचित कर लेता है और सूत्र परावर्तन के द्वारा कालज्ञान कर लेता है। एकत्व भावना से वह ममत्व का मूलतः नाश कर देता है और बल भावना से शारीरिक बल, मनोबल और धृतिबल का पूर्णतः विकास कर लेता है। इस प्रकार ये पांच भावनाएं साधक को जिनकल्प साधना के लिए सक्षम बनाती हैं।[1]

थिल्लि (दे)

ये चारों शब्द भिन्न-भिन्न आकार वाली पालकी के लिए प्रयुक्त हैं। लेकिन वाहन अर्थ की अभिव्यक्ति करने के कारण ये एकार्थक हैं—

१. थिल्लि—दो खच्चरों से वाहित यान विशेष, दो घोड़ों की बग्घी[2]।

२. गिल्लि—दो पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली झोलिका।

३ सिबिका—कूटाकार तथा चारों ओर से आच्छादित पालकी। प्रश्न व्याकरण की टीका के अनुसार हजार पुरुषों द्वारा उठायी जाने वाली पालकी सिबिका है।

४. स्यंदमानिका—पुरुषप्रमाण पालकी।

---

१. प्रसादी पृ १२६, १२७।

२. पास पृ ४४६।

थुइ (स्तुति)

स्तुति, स्तवन, वंदन, अर्चना आदि सारे शब्द गुणानुवाद के अभिव्यंजक हैं। कुछेक आचार्यों ने स्तुति और स्तव मे आकारगत भेद किया है। उनके अनुसार एक श्लोक से सात श्लोक अथवा तीन श्लोक पर्यन्त जो गुणगाथा की जाती है वह 'स्तुति', और आठवें श्लोक से आगे गुणगाथा को 'स्तव' कहा जाता है।[1] सभी व्याख्याकार इसमें एकमत नहीं हैं।

लेकिन चूर्णिकार ने स्तुति, स्तवन आदि शब्दों को एकार्थक माना है[2]।

थूल (स्थूल)

मोटे व्यक्ति के लिए स्थूल शब्द के पर्याय में १५ शब्दो का उल्लेख है। शरीर की स्थूलता, दीर्घता और पुष्टता के आधार पर इन शब्दो का चयन किया गया है। इन शब्दों मे वड्ड और वरठ दोनो शब्द देशी हैं।

थेज्ज (स्थैर्य)

विश्वसनीय व्यक्ति के ये पांच गुण हैं। सभी समवेत रूप में एक अर्थ के अवबोधक होने से एकार्थक हैं—

स्थैर्य—जो अपनी वाणी पर स्थिर रहता है।

वैश्वासिक—जिस पर विश्वास किया जा सके।

सम्मत—जिसकी बात सबके द्वारा मननीय होती है।

बहुमत—लोगो के द्वारा बहुमान प्राप्त।

अनुमत—सबके द्वारा समर्थित।

थेरभूमि (स्थविरभूमि)

स्थविर की तीन भूमिकाएं हैं—जातिस्थविर, श्रुतस्थविर, पर्यायस्थविर। ६० वर्ष की आयु वाला जातिस्थविर, स्थानांग व समवायांग को धारण करने वाला श्रुतस्थविर तथा २० वर्ष मुनि-पर्याय पालने वाला पर्यायस्थविर कहलाता है। यहां भूमि का अर्थ है भूमिका। वह जन्म, ज्ञान और दीक्षा पर्याय से अभिव्यक्त होती है।

---

१. (क) व्यभा ७।१८३ टी : एकश्लोकादिसप्तश्लोकपर्यन्ताः स्तुतिः।
   (ख) वही, ततः परमष्टश्लोकादिकाः स्तवाः।

२. नंदीचू पृ ४६ : अन्योन्यविषयप्रसिद्धा ह्येते एकार्थवचनाः।

दया (दया)

संयम के अर्थ में प्रयुक्त दया के पर्याय में पांच शब्दों का उल्लेख है। दया, संयम आदि संयम के स्पष्ट वाचक हैं। दुगुंछा का अर्थ है—पाप के प्रति घृणा तथा अछलना का अर्थ है—सरलता। इस प्रकार ये दोनों शब्द भी संयम का अर्थबोध कराते हैं। तितिक्षा, अहिंसा और ह्री भी संयम के ही वाचक हैं।

देखें—'तितिक्खा'।

दव्वी (दर्वी)

दर्वी का अर्थ है—कड़छी। इसके पर्याय में चार शब्दों का उल्लेख है। इसमें 'कडच्छी' और 'कवल्ली' दोनों देशीपद हैं। आजकल व्यवहार में प्रयुक्त 'कड़छी' शब्द इसी का रूपान्तरण प्रतीत होता है। 'कवल्ली' शब्द कड़ाही के लिए भी प्रसिद्ध है।

दारिया (दारिका)

देखें—'दारय'।

दास (दास)

नौकरो के अनेक प्रकार रहे हैं। उनमें दास, किंकर आदि प्रमुख हैं। इन सबकी अलग-अलग पहचान है। जैसे—

१. दास—खरीदा हुआ नौकर, घर की दासी का पुत्र।

२. प्रेष्य—काम के लिए बाहर गांव भेजा जाने वाला।

३. भृतक—दैनिक वेतन पर कार्य करने वाला अथवा वह नौकर जो बचपन से ही घर पर पला-पुसा हो।

४. भागी—आय और हानि का हिस्सेदार।

५. किंकर—जो काम के विषय में निरन्तर पूछता रहे 'अब क्या करूं? अब क्या करूं?'

६. कर्मकर—नियत काल में आदेश पालन करने वाला।[1]

इस आधार पर प्रस्तुत पर्याय में प्रयुक्त सभी शब्द दास/नौकर के पर्याय के रूप में संग्रहीत हैं।

---

१. सूटी २ प ३३१।

दिट्ठ (दृष्ट)

दृष्ट, श्रुत, ज्ञात आदि शब्द ज्ञान प्राप्त करने की विविध अवस्थाओं के वाचक हैं। दृष्ट पहली अवस्था है तथा उसकी अन्तिम अवस्था है—अवधारण। आचारांग चूर्णि में इनको एकार्थक माना है।

दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद)

श्रुत के दो विभाग हैं—अंग और अंगबाह्य। अंग बारह हैं। उनमे बारहवां अंग है—दृष्टिवाद। आज यह अप्राप्त है। स्थानांग सूत्र में इसके दस नाम उल्लिखित हैं। वे सारे नाम उसमें प्रतिपादित विषयवस्तु के आधार पर दिये गये हैं। टीकाकार ने उनकी व्याख्या इस प्रकार की है—

१. दृष्टिवाद—समस्त दर्शनो के मत को प्रकट करने वाला तथा सभी नयो से वस्तु-बोध कराने वाला।

२. हेतुवाद—जिज्ञासाओं का सहेतुक समाधान देने वाला।

३. भूतवाद—यथार्थ तत्त्वो का व्याख्याता।

४. तत्त्ववाद—तत्त्वो का निरूपण करने वाला।

५. सम्यग्‌वाद—सम्यग् कथन करने वाला।

६. धर्मवाद—द्रव्य की विभिन्न पर्यायो का अथवा चारित्र धर्म की व्याख्या करने वाला।

७. भाषाविजय (विचय)—भाषा का विवेक देने वाला।

८. पूर्वगत—चौदह पूर्वों का प्रतिपादक।

९. अनुयोगगत—प्रथमानुयोग तथा गंडिकानुयोग का प्रतिपादक।

१०. सर्व प्राणभूतजीवसत्त्व सुखावह—संयम का प्रतिपादक होने से सभी प्राणियों के लिए सुखकर।

द्वितीयसमवसरण

चातुर्मास के अतिरिक्त शेष आठ मास का काल द्वितीयसमवसरण कहलाता है।

दीण (दीन)

ये सभी शब्द दीन/दुःखी व्यक्ति की विविध अवस्थाओं के वाचक हैं। जैसे—

१. परितन्त—मानसिक व शारीरिक रूप से दुःखी ।

२. तिरस्कारित—दूसरों के द्वारा तिरस्कृत ।

३. चिन्ताध्यानपर—आर्त्त-रौद्र ध्यान में मग्न ।

४. अकृतार्थ—जिसका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।

५. शोकार्त—जो शोक से सदा दुःखी रहता है ।

दीव (दीप)

'दीव' शब्द के पर्याय में ११ शब्दों का उल्लेख है । सभी शब्द विविध प्रकार की अग्नियों तथा उसके स्थान के वाचक हैं । कुछ शब्दों का अर्थबोध इस प्रकार है—

१. दीपक—दीया ।

२. चुडली—उल्का, जलती हुई लकड़ी (दे) ।

३. चुल्लक—बड़ा चूल्हा (दे) ।

४. विद्युत—बिजली, अग्नि ।

५. आतप—प्रकाश (प्रकाश अग्नि से पैदा होता है अतः कारण में कार्य के उपचार से यह 'दीव' शब्द का एकार्थक है ।)

६. चुल्लि—छोटा चूल्हा (दे) ।

७. फुंफक—करीषाग्नि (दे) ।

दीविय (द्वीपिन्)

'दीविय' आदि सभी शब्द व्याघ्र की विभिन्न जातियों के वाचक हैं । वर्ण, आकार के आधार पर इनका भेद किया गया है ।

दीहसक्कुलिका (दीर्घशष्कुलिका)

'दीहसक्कुलिका' आदि शब्द दिवाली और होली आदि पर्वों के अवसर पर बनायी जाने वाली मिठाई के वाचक हैं । यह गुड़ से बनायी जाती थी । आज भी राजस्थान में इन पर्वों पर सकली बनाने का रिवाज है । मीठी खाद्य वस्तु के अर्थ में प्रज्ञापना में 'भिसकंदय' शब्द का उल्लेख है ।[1] जो 'भिसखंदक' का संवादी प्रतीत होता है । खाखट्टिका, खोरक, दीवालिका, वसीरिका, मत्स्यकत आदि शब्द इसी अर्थ में देशीपद हैं ।

---

१. प्रज्ञापना प ५३१ ।

दुक्ख (दुःख)

कर्म दुःख का कारण है, अतः कारण में कार्य का उपचार कर दुःख और कर्म—इन दोनों को एकार्थक माना है।[1]

दुक्खण (दुःखन)

पीड़ा अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है। यहां 'दुक्खण' आदि शब्द पीड़ा की विभिन्न भूमिकाओं के बोधक हैं—[2]

दुःख—इष्ट के वियोग से उत्पन्न दुःख।
जूरण—झूरना, शारीरिक कमजोरी से समुद्भूत पीड़ा।
शोचन—शोक व दीनता से उत्पन्न दुःख।
तेपन—अश्रुविमोचन।
पिट्टण—लकड़ी आदि से पीटना।
परितापन—शारीरिक, मानसिक पीड़ा देना।

दुट्ठ (दुष्ट)

दुर्बोध्य व्यक्ति के पर्याय मे तीन शब्दों का उल्लेख है। इनकी अर्थ परम्परा इस प्रकार है—

१. दुष्ट—जो दुष्टता करता रहता है।
२. मूढ—गुण-दोष के विवेक से विकल।
३. व्युद्ग्राहित—कदाग्रही द्वारा भिड़काया हुआ।

दुद्ध (दुग्ध)

दुद्ध शब्द के पर्याय मे ५ शब्दों का उल्लेख है। इनमें कुछ शब्द दूध के लिए प्रयुक्त प्रसिद्ध शब्द हैं। लेकिन 'पीलु' और 'वालु' शब्द दूध के लिए प्रयुक्त देशी शब्द हैं। पीलु और वालु शब्द प्रान्तीय भाषा से आया प्रतीत होता है। कन्नड मे दूध को 'हालु' कहते हैं। तमिल में दूध को 'पाल' कहते हैं, अत. पीलु और वालु शब्द संभवतः इन्हीं शब्दों के कोई रूप होने चाहिएं।

दुम (द्रुम)

'द्रुम' शब्द के प्रायः सभी पर्याय वृक्ष के स्पष्ट वाचक हैं लेकिन

१. बभुवृ पृ २८।
२. भटी प २७४।

चूर्णिकार ने व्युत्पत्तिकृत भेद इस प्रकार किया है—

द्रुम—जो धरती और आकाश के बीच में समाता है।

पादप—जो पैरों (जड़ों) से पीता है।

रुक्ख—जो पृथ्वी से आहार ग्रहण करता है।[1]

विटपी—जो शाखाओं से सुशोभित होता है।

अग—जो गति नहीं करता।

तरु—जिससे नदी में तैरा जाता है।

कुह—जो भूमि के द्वारा धारण किया जाता है।

महीरुह—जो पृथ्वी पर उगता है।

वच्छ—जो पुत्र की भांति स्नेह से पाला जाता है।

रोपक—जिसे पृथ्वी पर रोपा जाता है।

भञ्जक—जो काटा जाता है।[2]

दुमपुप्फिया (द्रुमपुष्पिका)

दशवैकालिक सूत्र के वृत्तिकार हरिभद्रसूरि (वि० आठवीं शताब्दी) ने द्रुमपुष्पिका के १४ पर्याय गिनाये हैं—

१. द्रुमपुष्पिका
२. आहारएषणा
३. गोचर
४. त्वक्
५. उंछ
६ मेष
७. जलूक
८. सर्प
९. व्रण
१०. अक्ष
११. इषु
१२. गोलक
१३. पुत्रमांस
१४. पूति-उदक।

द्रुमपुष्पिका—यह दशवैकालिक सूत्र का पहला अध्ययन है। इसमें मुनि की भिक्षाचर्या सम्बन्धी सूत्र हैं। उन सूत्रों की भावना के अनुरूप इन शब्दों का चयन किया गया है।

ये सभी शब्द भोजन की गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा अर्थात् भोजन के ग्रहण और उपभोग से सम्बन्धित हैं। इसलिए इन्हें द्रुमपुष्पिका शब्द के अन्तर्गत गृहीत कर लिया गया है। गोचर शब्द

१. निचू २ पृ २०६ : रुक् पृथिवी तं खातीति रुक्खो।

२. दशअचू पृ ७, दशजिचू पृ ११।

माधुकरी वृत्ति का द्योतक है। मुनि नाव की तरह अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा ले। वह त्वक् की तरह असार भोजन ले। वह उंछ—अज्ञातपिण्ड ले। जो स्वामी अशुद्ध भोजन देना चाहे, उसे मृदुता से समझाए। वह सर्प की भांति एक दृष्टि वाला हो। जैसे व्रण पर बिना किसी राग द्वेष से लेप किया जाता है, वैसे ही मुनि भी बिना राग-द्वेष के भोजन करे। जैसे बाण (इषु) लक्ष्य को वेध डालता है, वैसे ही भिक्षु लक्ष्य प्राप्ति के लिए भोजन करे। जैसे लाख के गोले का निर्माण अग्नि से न अति दूर और न अति निकट रखकर ही किया जाता है वैसे ही मुनि-गृहस्थ सहवास से न अति दूर रहे और न अति निकट रहे। मुनि भोजन का अस्वाद लेते हुए निरपेक्ष भाव से 'पुत्र मांस भक्षण' की भांति खाए। मुनि संयम निर्वहण के लिए जैसा मिले वैसा खा ले।[1]

इन उपमाओं से मुनि की माधुकरी वृत्ति को उपमित किया जाता है। इस दृष्टि से ये दशवैकालिक के प्रथम अध्ययन के नाम हैं।

देव (देव)

'देव' आदि शब्द देवता के स्पष्ट वाचक होने पर भी इनका निरुक्त कृत अर्थ इस प्रकार है—

देव—जो क्रीड़ा करते है अथवा जो दिव/आकाश मे रहते हैं।[2]

अमर—जो कभी मरते नहीं हैं। (चिरकाल तक स्थायी रहने के कारण अमर शब्द देव के लिए रुढ है)।

सुर—जो अत्यन्त सुशोभित होते हैं। अथवा समुद्र-मंथन के समय जिन्होंने सुरा का पान किया था।

विबुध—जो अवधिज्ञान से विशेष जानते हैं।[3]

देसकालण्ण (देशकालज्ञ)

'देसकालण्ण' आदि सभी शब्द साधु के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। भावार्थ में एक ही व्यञ्जना होने पर भी इनका अर्थभेद इस प्रकार है[4]—

देशकालज्ञ—देश और काल को जानने वाला।

---

१. दशजिचू पृ ११-१२ : एतेहिं उवम्मं कीरइ त्ति काउं ताणि भण्णंति नामाणि तस्स अज्झयणस्स।

२. दशजिचू पृ १५ : दीव्वं आगासं तंमि आगासे जे वसंति ते देवा।

३ अचि पृ १७-१८।

४. सूचू २ पृ ३१२ एगट्ठिताइं वा सम्भाइं एयाइं।

क्षेत्रज्ञ—आत्मा को जानने वाला ।

कुशल—हित की प्रवृत्ति और अहित की निवृत्ति में निपुण ।

पंडित—पाप से घृणा करने वाला ।

व्यक्त—प्रौढ बुद्धि वाला ।

मेधावी—उपायों को जानने वाला । अथवा मर्यादा तथा मेधा से सम्पन्न ।

अबाल—मध्यम वय वाला ।

मार्गज्ञ—सत् मार्ग को जानने वाला ।

पराक्रमज्ञ—यथार्थ स्थान को प्राप्त करने की कला जानने वाला अथवा अपनी शक्ति को जानने वाला ।[1]

दोसीण (दे)

'दोसीण' बासी अन्न के लिए प्रयुक्त होने वाला देशी शब्द है । बासी अन्न वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की दृष्टि से विरूप हो जाता है अतः व्यापन्न, कुथित आदि सभी शब्द पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से एकार्थक हैं ।

धम्मत्थिकाय (धर्मास्तिकाय)

यह लोकव्यवस्था के अन्तर्गत लोकव्यापी अजीव द्रव्य है । यह सभी प्रकार की गति और प्रकंपन का माध्यम है । प्रस्तुत प्रसंग में इसके जो अभिवचन गिनाये हैं इनमें दो अभिवचन (धर्म, धर्मास्तिकाय) स्वाभाविक हैं । शेष सारे अभिवचन नामसाम्य के कारण निर्धारित प्रतीत होते हैं । जैसे शब्दकोष में स्वर्ण और धतूरे के सदृश नामों का विधान है, वैसे ही धर्म के नाम-साम्य से ये अभिवचन उल्लिखित हैं । वास्तव मे प्राणातिपात विरमण से कायगुप्ति तक के सारे शब्द धर्म के विभिन्न अंग हैं । धर्म शब्द की सदृशता के कारण इन्हें धर्मास्तिकाय के पर्याय शब्द मान लिये हैं । इसके अतिरिक्त चारित्र धर्म के वाचक सामान्य या विशेष सभी शब्द धर्मास्तिकाय के अभिवचन हो सकते हैं ।[2]

---

१. सूटी प २७२ ।

२. भटी पृ १४३१ : ततश्च धर्मशब्दसाधर्म्याद्धर्मास्तिकायस्यापि धर्मस्य प्राणातिपातविरमणाद्यः पर्यायतया प्रवर्तन्त इति, ये चान्येऽपि तथा प्रकाराः चारित्रधर्माभिधायकाः सामान्यतो विशेषतो वा शब्दास्ते सर्वेऽपि धर्मास्तिकायस्याभिवचनानीति ।

धम्ममण (धर्ममनस्)

'धम्ममण' के पर्याय के रूप में ५ शब्दों का उल्लेख है । पांचों शब्द धार्मिक चेतना से युक्त व्यक्ति के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं । इनका अर्थबोध इस प्रकार है—

१. धर्ममन—धर्म में अनुरक्त ।

२. अविमन—अशून्य चित्त, भावक्रिया से युक्त ।

३. शुभमन—असंक्लिष्ट चित्त वाला ।

४. अविग्रहमन—विकल्प शून्य चेतना वाला ।

५. समाधिमन—रागद्वेष रहित अथवा उपशम प्रधान स्वस्थ मन वाला ।[1]

धम्मिय (धार्मिक)

धम्मिय शब्द के पर्याय में छह शब्दो का उल्लेख है । धर्म का अनुसरण करने वाला, उससे प्रेम करने वाला, धर्म कहने वाला, प्रतिक्षण धर्म को ही देखने वाला, धार्मिक आचरण करने वाला व्यक्ति धार्मिक ही होता है अत: ये सभी एकार्थक हैं ।

धर्म (धर्म)

धार्मिक की प्रथम पहचान है—दृष्टि की समीचीनता । आत्म-धर्म और आत्मस्वभाव ये दोनो सम्यग्दर्शन के ही वाचक हैं । यहां 'धर्म' शब्द सम्यक्दर्शन के लिए प्रयुक्त है ।

धरणा (धरणा)

ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के चार घटक हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा । किसी भी ज्ञान की चिरकाल तक स्मृति बनाये रखना धारणा है । सामान्यत: सभी शब्द एकार्थक होते हुए भी धारण करने की अनेक अवस्थाओ के वाचक हैं[2]—

धरणा—ज्ञात अर्थ को कुछ समय तक स्मृति में रखना ।

धारणा—विस्मृत अर्थ को पुन: स्मृत करना ।

---

१. प्रटी प १११ ।

२. नंदी चू पृ ३७ : सामण्णधारणं पडुच्च णियमा एगट्ठिया, धारणत्थ-विकप्पणताए भिण्णत्था ।

स्थापना—ज्ञात अर्थ की समीक्षा कर हृदय में स्थापित करना।

प्रतिष्ठा—ज्ञात अर्थ को उसके भेद-प्रभेद पूर्वक धारण करना।

कोष्ठ—सूत्र और अर्थ को चिरकाल तक धारण करना, वह विस्मृत न हो, उस रूप में धारण करना (कोठे में रखे धान की भांति उपदिष्ट अर्थ को सकल रूप में चिरकाल तक धारण करना।)

उमास्वाति ने प्रतिपत्ति, अवधारणा, अवस्थान, निश्चय, अवगम और अवबोध आदि शब्दो को धारणा के पर्याय माने हैं।[1]

धारणववहार (धारणाव्यवहार)

किसी गीतार्थ आचार्य ने किसी समय किसी शिष्य की अपराध शुद्धि के लिए जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसे याद रखकर, वैसी ही परिस्थिति मे उसी प्रायश्चित्त विधि का उपयोग करना 'धारणाव्यवहार' है। इसके पर्याय शब्दों का आशय इस प्रकार है—

१. उद्धारणा—छेदसूत्रो से उद्‌धृत अर्थपदों को निपुणता से जानना।

२. विधारणा—विशिष्ट अर्थपदों को स्मृति मे धारण करना।

३. संधारणा—धारण किये हुए अर्थपदो को आत्मसात् करना।

४. सप्रधारणा—पूर्ण रूप से अर्थपदो को धारण कर प्रायश्चित्त का विधान करना।[2]

घुण्ण (दे)

'घुण्ण' शब्द पाप के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला देशी शब्द है।

धुव (ध्रुव)

ध्रुव आदि छहों शब्द ध्रुवता के ही बोधक हैं। उनका शब्दगत अर्थभेद इस प्रकार है—

१. ध्रुव—अचल।

२. नित्य—सदा एक रूप रहने वाला।

३. शाश्वत—प्रतिक्षण अस्तित्व में रहने वाला।

४. अक्षय—अविनाशी।

---

१. तभा १।१५।

२. व्यभा १० टी प ३०२।

५. अव्यय—एक भी आत्म प्रदेश का जिसमें व्यय नहीं होता।

६. अवस्थित—अनन्त पर्यायों की अवस्थिति।[1]

धुवक (ध्रुवक)

'ध्रुवक' का अर्थ है—ध्रुव, निष्प्रकंप, शाश्वत। इसमें शिव, गुत्त (गोत्र) भव, अभव ये पर्याय भी हैं। इनमें शिव मोक्ष का, गोत्र संयम का, भव आत्मा का और अभव सिद्धालय का वाचक है। ये सभी शाश्वत हैं, अतः इनका समावेश यहां कर लिया गया है।

धूत (धूत)

'धुत' और 'धूत'—ये दोनों रूप प्रचलित हैं। 'धुत' साधना की विशेष पद्धति रही है। आचारांग के छठे अध्ययन का नाम 'धुत' है। बौद्ध परम्परा में अनेक धुतांगों की चर्चा है।

'धूत' का अर्थ है—वह प्रक्रिया जिससे कर्मों का धुनन किया जाता है। सूत्रकृतांग के चूर्णिकार ने 'धूत (धुत)' के अनेक अर्थ किए हैं—वैराग्य, चारित्र, उपशम, संयम, ज्ञान आदि।[2] ये सारे अर्थ साधना से संबंधित हैं।

धूर्त्त (धूर्त्त)

धूर्त्त शब्द के पर्याय में ६ शब्दों का उल्लेख है। सभी शब्द धूर्त्त/शठ के विभिन्न प्रकारों के वाचक हैं—

१. धूर्त्त—जो हिंसा करके ठगता है।[3]

२. नैकृतिक—माया करके ठगने वाला।

३. स्तब्ध—आश्चर्य में डालकर धोखा देने वाला।

४. लुब्ध—लोभ दिखाकर ठगने वाला।

५. कार्पटिक—साधु के वेश मे ठग।

६. शठ—वेश बदलकर लोगो को धोखा देने वाला।

---

१. भटी प ११६।

२. सूचू १ पृ १६२ : धुअं वैराग्यं चारित्रं उपशमो वा संयमो नाणादि वा।

३. अचि पृ ८८ : धूर्वति हिनस्ति धूर्तः।

नंदि (नन्दि)

नन्दी और शास्त्र—इन दोनों शब्दों को बृहत्कल्प में एकार्थक माना है[1]। प्रत्यक्षतः ये दोनों शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों के वाचक हैं। नन्दी का अर्थ है—मंगल। शास्त्र अर्थात् ग्रन्थ। ग्रन्थ/शास्त्र मंगलकर होते हैं, अतः इनको एकार्थक माना है। अथवा नन्दी सूत्र में लगभग सभी शास्त्रों का उल्लेख है, इसलिए भी इन दोनों शब्दों को एकार्थक माना जा सकता है।

नववहू (नववधू)

नववधू शब्द के पर्याय में तीन शब्दों का उल्लेख है। जिसने प्रसव नहीं किया है अथवा गर्भ धारण नहीं किया है, वह भी नववधू ही है।

नस्समाण (नश्यत्)

'नस्समाण' शब्द के पर्याय में सात शब्दों का उल्लेख है। लगभग सभी शब्द समवेत रूप में नष्ट होने के अर्थ में प्रयुक्त हैं।

नायय (ज्ञातक)

देखें—'मित्त'।

निग्गमण (निर्गमन)

'निग्गमण' आदि चारों शब्द गण से बहिर्भूत होने के अर्थ में पर्यायवाची हैं।[2]

निज्जामय (निर्यामक)

निर्यामक—नौका चालक।

कुक्षिधार—नौका के विभिन्न कार्यों में नियुक्त नौकर।

गब्भेल्लय—नौका में छोटे बड़े कार्य करने वाला। (दे)

इस प्रकार ये सभी शब्द नौका संचालक के वाचक होने से एकार्थक हैं।[3]

निट्ठियट्ठ (निष्ठितार्थ)

'निट्ठियट्ठ' आदि शब्द सिद्ध अवस्था प्राप्त व्यक्तियों के लिए

---

१. बृकटी पृ ११।

२. व्यभा टी प १२४।

३. आटी प १४३।

प्रयुक्त हैं। सभी शब्द उनकी विभिन्न विशेषताओं को व्यक्त करते हैं।
जैसे—

निष्ठितार्थ—अपने लक्ष्य को प्राप्त।

निरेजन—निश्चल।

नीरज—कर्म-रज से मुक्त।

निर्मल—पवित्र।

वितिमिर—केवल ज्ञान से आलोकित।

विशुद्ध—कर्मों की विशुद्धि से प्रकर्ष स्थिति को प्राप्त।[1]

नियाग (नियाग)

नियाग का अर्थ है—मोक्ष। सद्धर्म मोक्ष का साधन है। अन्तिम अवस्था मे साधन ही साध्य के रूप में परिणत हो जाता है, अतः ये तीनो शब्द एकार्थक हैं।

निव्वाण (निर्वाण)

देखें—'अणुत्तर'।

निस्सील (निश्शील)

'निस्सील' आदि शब्द व्रत-संवर रहित (असंयमी) व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हैं। चारो शब्दो की क्षेत्र सीमा भिन्न होते हुए भी समान अर्थ को व्यक्त करते हैं—

निश्शील—ब्रह्मचर्य आदि व्रत से रहित।

निर्व्रत—अहिंसा व्रत अथवा अणुव्रतों से रहित।

निर्गुण—क्षान्ति आदि दस श्रमण गुणो से विकल।

निर्मर्याद—आचार सम्बन्धी मर्यादा से रहित।

नील (नील)

नील के दो अर्थ हैं—काला और नीला। यहां नील शब्द काले रग का प्रतीक है। अंधकार और रात्रि का रंग काला है, अतः गुण के साधर्म्य से इन दोनो शब्दो को काले रंग का पर्याय माना है।

---

१. औपटी पृ २१७।

पाप का एक बड़ा कारण है—अंधकार और कालिमा। अतः उनको भी उपचार से इसका पर्याय मान लिया है।

पंडिय (पंडित)

'पंडिय' आदि चारों शब्द आचारांग में मुनि/ज्ञानी के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। वाच्यार्थ अलग होने पर भी भावार्थ में सभी एक ही अर्थ को व्यक्त करते हैं—

१. पंडित—ज्ञेय को जानने वाला।

२. मेधावी—मर्यादावान् तथा मेधा/बुद्धि से सुशोभित।

३ निष्ठितार्थ—अर्थ के अन्तिम छोर तक पहुंचने में समर्थ।

४. वीर—कर्म विदारण करने में कुशल।

पच्चंतिक (प्रात्यन्तिक)

प्रस्तुत एकार्थक में ग्राम के अन्तराल-बाहिर रहने वाले अनेक प्रकार के व्यक्तियों तथा जातियों का उल्लेख है। वे प्रायः नीच कर्म करने वाले होने के कारण उनकी परिगणना म्लेच्छ के अंतर्गत की गयी है। इनकी अर्थ-परम्परा इस प्रकार है—

१. प्रात्यन्तिक—गांव के बाह्य भाग में रहने वाले मातंग, चांडाल आदि।

२. दस्यु-आयतन—चोरों की पल्लियां।

३. म्लेच्छ—बर्बर, शबर, पुलिन्द्र आदि म्लेच्छ जातियों की बस्तियां।

४. अनार्य—साढ़े पच्चीस आर्य देशों के अतिरिक्त देशों वाले व्यक्तियों के निवास स्थान।

५. दुःसंज्ञाप्य—मंद बुद्धि वाले व्यक्ति।

६. दुःप्रज्ञाप्य—ऐसे व्यक्ति जिनको समझाना अत्यन्त दुष्कर होता है।

ये सारे स्थल तथा व्यक्ति म्लेच्छवत् हैं, इसलिए इन्हें म्लेच्छ के अन्तर्गत माना है।[1]

पज्जोसवण (पर्युपशमन)

इसका अर्थ है—पर्युषणा के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर

---

१. आवटी प २४२······ण तेसु मेच्छजणेसु······।

घूमते रहते हैं और वर्षाकाल में चार महीनों तक एक स्थान पर अवस्थित हो जाते हैं। यह अवस्थान-काल पर्युषणा कहलाता है। इसके आठ पर्याय नाम हैं। उनका अर्थ-बोध इस प्रकार है—

१. पर्यायव्यवस्थापन—पर्युषणा के दिन मुनि अपनी दीक्षा पर्याय का व्यवस्थापन करता है। जैसे—मुझे प्रव्रज्या ग्रहण किये इतने वर्ष हो गये।
२. पर्युपशमन—ऋतुबद्ध काल के द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव आदि पर्याय होते हैं। मुनि वर्षावास में इन सबका त्याग करता है और वर्षावास के योग्य पदार्थों को ग्रहण करता है।
३. परिवसना—एक स्थान पर चार मास तक वास करना।
४. पर्युषणा—ऋतुबद्ध विहार से निवृत्त होकर वर्षाकाल को अत्यन्त निकट जानकर एक स्थान पर वास करना।
५. वर्षावास—वर्षाकाल के लिए एकत्र वास करना।
६. प्रथमसमवसरण—वर्ष का प्रथम दिन होने, अनेक मुनियों का एक साथ रहने तथा धर्म परिषद् के जुड़ने का प्रथम दिन होने से भी इसे प्रथमसमवसरण कहते हैं।
७. स्थापना—वर्षाकाल के कल्प की स्थापना करना।
८. ज्येष्ठावग्रह—ऋतुबद्ध काल में एक स्थान पर एक मास का निवास उत्कृष्ट काल होता है, किन्तु वर्षावास का ज्येष्ठ—बड़ा काल चार मास का होता है।

पडिसेवणा (प्रतिसेवना)

प्रतिसेवना जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है—अतिचार का सेवन, व्रतों में दोष लगाना।

विराधना, स्खलना, उपघात, अशोधि आदि शब्द इसके स्पष्ट वाचक हैं। शबलीकरण का तात्पर्य है—व्रतों को दोषों से चितकबरा करना।

पत्ति (पत्नी)

'पत्ति' शब्द के पर्याय में कुछ शब्द पत्नी शब्द के वाचक तथा कुछ शब्द स्त्रीवाचक हैं। पत्नी, वधू, उपवधू आदि शब्द पत्नी के बोधक हैं। स्त्री, पद्मा, अंगना, महिला, नारी, प्रिया आदि शब्द सामान्यतः

स्त्रियों के बोधक हैं । ईश्वरी, स्वामिनी—ये शब्द स्त्री की आदृयता के द्योतक हैं । इसी प्रकार इष्टा, कान्ता, प्रिया आदि उसकी प्रियता की ओर संकेत करते हैं। स्त्री स्वभावत: लज्जालु होती है अत: 'विलिका' भी उसका एक पर्याय है । 'मणामा' और 'पोहट्टी' इसी अर्थ में देशी है ।

पउम (पद्म)

'पउम' के पर्याय के अन्तर्गत १७ शब्दों का उल्लेख है । सामान्यत: एकार्थक होते हुए भी इनमें जाति एवं वर्णगत भेद है । 'सप्फ', 'तणसोल्लिक', 'कोज्जक' आदि शब्द पद्म के लिए प्रयुक्त होने वाले देशी शब्द हैं । 'इंदीवर' नील कमल का और 'पाटल' रक्त कमल का द्योतक है ।

देखें—'उप्पल' ।

परिग्गह (परिग्रह)

परिग्रह का अर्थ है—स्वीकरण । सैद्धान्तिक दृष्टि से परिग्रह का अर्थ है—मूर्च्छा, आसक्ति । लौकिक भाषा में परिग्रह से तात्पर्य है—पदार्थों का संचय । सूत्रकार ने इसके तीस नाम गिनाये हैं जिनमें परिग्रह, संचय, चय, उपचय, निधान, संभार, आकर, संकर, पिंड, संरक्षण आदि शब्द संग्रह और उपचय के वाचक हैं क्योंकि धन का ही संग्रहण, उपचय और संरक्षण किया जाता है । इस आधार पर इन सबको परिग्रह माना गया है ।

महेच्छा, प्रतिबंध, लोभात्मा, आसक्ति, अमुक्ति, तृष्णा, असंतोष आदि शब्द परिग्रह को पुष्ट करने वाली अथवा आदमी में परिग्रह बुद्धि उत्पन्न करने वाली वृत्तियां हैं, अत: कारण में कार्य के उपचार से ये शब्द परिग्रह के वाचक हैं । कुछ शब्द परिग्रह से उत्पन्न विषम स्थितियों के वाचक हैं, जैसे—परिग्रह कलह का भाजन होने से कलिकरंड कहलाता है । परिग्रही व्यक्ति हमेशा खेदखिन्न रहता है इसलिए परिग्रह का एक नाम आयास भी है । परिग्रह परिचय बढाता है अत: संस्तव, धन-धान्य का विस्तार करने से प्रविस्तार, तथा अत्यागभाव होने से परिग्रह को अवियोग भी कहते हैं । इस प्रकार ये तीस नाम परिग्रह, परिग्रह वृत्ति और परिग्रह परिणाम के द्योतक हैं ।

पवयण (प्रवचन)

वस्तु में दो धर्म होते हैं—सामान्य और विशेष । सामान्य अभेद का

और विशेष भेद का प्रतिपादक है। टीकाकारों ने सामान्य धर्मों के आधार पर भी शब्दों को एकार्थक माना है।[1]

आवश्यक निर्युक्ति में सूत्र, अर्थ और प्रवचन तीनों को एकार्थक मानते हुए भी भिन्न-भिन्न रूप से इनके ५-५ एकार्थक दिये हैं।[2] सूत्र व्याख्येय और अर्थ व्याख्यान होने से दोनों भिन्नार्थक हैं, किन्तु प्रवचन का अंग होने से एकार्थक भी हैं। भाष्यकार ने इसी बात को फूल और कली के माध्यम से समझाया है। अर्थ और अनुयोग—ये दोनो एकार्थक शब्द हैं।[3] विशेष व्याख्या के लिए देखें—विभामहेटी पृ ५०४-५०७।

देखें—'सुत्त', 'अणुओग'।

पवेइय (प्रवेदित)

'पवेइय' आदि तीनों शब्द सम्यक् प्ररूपण के अर्थ मे प्रयुक्त किये गये हैं। इनका सूक्ष्म अर्थ-भेद इस प्रकार है—

प्रवेदित—अच्छी तरह ज्ञात, विविध रूप से कथित।

सुआख्यात—भली-भांति विवेचित।

सुप्रज्ञप्त—अनुभव के आधार पर कथित।[4]

पव्वइय (प्रव्रजित)

प्रव्रजित का अर्थ है—दीक्षित अर्थात् मुनि। जो मुनि होता है वह संयम, संवर तथा समाधि से युक्त होता ही है। मुनि का शरीर परुष, कठोर और स्निग्धता से शून्य होता है तथा मन भी स्नेह शून्य होता है अतः वह रुक्ष कहलाता है। अथवा जो कर्ममल का अपनयन करता है, वह लूष या रूक्ष है। वह संसार का पार पाने के कारण तीरार्थी कहलाता है। मुनि श्रुताध्ययन के साथ तपस्या करता है इसलिए उपधानवान्, विविध तपस्याओं मे रत रहने के कारण तपस्वी और कर्मक्षय के लिए उद्यत रहने के कारण दुःखःक्षपक कहलाता है।[5]

---

१. विभामहेटी पृ ५०६।

२. विभा १३६६ : एगट्ठियाणि तिण्णि उ पवयण सुत्तं तहेव अत्थो य।
एक्केक्कस्स य एत्तो नामा एगट्ठिया पंच॥

३. विभामहेटी पृ ५०६ : अर्थः व्याख्यानमनुयोग इत्यनर्थान्तरम्।

४. दशाचिचू पृ १३२।

५. स्थाटी प १७४।

पव्वाविय (प्रव्राजित)

'पव्वाविय' आदि चारों शब्द प्रव्रज्या की उत्तरोत्तर अवस्था के द्योतक हैं। इनका अर्थबोध इस प्रकार है—

प्रव्राजित—शिष्य के रूप में स्वीकार करना।

मुण्डापित—शिष्य बनाना, दीक्षित करना।

सेधित—व्रतों का आरोपण करना।

शिक्षापित—सूत्र और अर्थ की वाचना देना।

पाण (प्राण)

प्राण आदि शब्द जीव तत्त्व के वाचक होने पर भी इनमें जातिगत भेद है। जैसे—

प्राण—द्वीन्द्रिय आदि।

भूत—वनस्पति।

सत्त्व—पृथ्वी, अप् आदि।

जीव—पञ्चेन्द्रिय प्राणी।

> प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता, भूतास्तु तरवः स्मृताः।
> जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः॥
> देखें—'जीवत्थिकाय'।

पाणवह (प्राणवध)

प्रस्तुत प्रकरण में प्राणवध के लगभग सभी नाम गुण निष्पन्न हैं। वे सभी नाम प्राणवध की भावना के निकट तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। प्रत्यक्षतः जीवहिंसा के द्योतक न होने पर भी उसकी ओर अभिमुख करने वाली प्रवृत्तियों के वाचक होने से एकार्थक हैं। जैसे—'जीवितान्तकरण' 'व्युपरमण' 'उन्मूलना' 'परित्रापन-आस्रव', निर्यापना, घातना, मारणा, उपद्रवण, विच्छेद, आरंभ, समारंभ 'कटकमर्दन' आदि शब्दों को कार्य में कारण का उपचार मानकर एकार्थक मान लिया है। प्रस्तुत नामों की सूची में तीसरा नाम है—अवीसंभ (अविश्रम्भ) अर्थात् अविश्वास। प्राणवध में प्रवृत्त व्यक्ति जीवों के लिए अविश्वसनीय बन जाता है अतः अविश्वसनीयता भी एक दृष्टि से हिंसा ही

है। पांचवा नाम है—अकृत्य। जितने भी अकृत्य—अकरणीय कार्य हैं वे हिंसा के द्योतक हैं, क्योंकि उनमें मानसिक, वाचिक या शारीरिक हिंसा रहती है। दुर्गति का कारण होने से दुर्गति प्रपात, वज्र की भांति कठोर व अधोगमन का हेतु होने से वज्ज (वज्र) नाम भी सार्थक है। इसे वर्ज्य भी कहा जाता है, क्योंकि हिंसा विवेकी व्यक्तियों के द्वारा वर्जनीय है। हिंसा गुणों की विराधक होने से 'गुणानां विराधना' कहलाती है।

अपुण्य प्रकृतियों की वृद्धि के कारण पापकोप और उन प्रकृतियों के प्रति लोभ बढ़ाने से पापलोभ भी इसके पर्याय हैं।

प्रस्तुत प्रकरण में इसका एक नाम है—मच्चु (मृत्यु)। आचारांग[1] में भी हिंसा को मृत्यु कहा है, क्योंकि हिंसा आयुष्य कर्म को प्रभावित करती है, अतः प्राणवध के 'आयुष्यकर्मस्य भेद' आदि नाम भी गुण-निष्पन्न हैं।

पायव (पादप)

देखें—'द्रुम'।

पामुद्दिका (पादमुद्रिका)

'अंगविज्जा' में 'पामुद्दिका' शब्द के पर्याय मे पाच शब्दों का उल्लेख है। ये पाचों शब्द पैरों के आभूषण के वाचक हैं। इन शब्दों का आशय इस प्रकार है—

१. पादमुद्रिका—पैरों में पहने जाने वाली अंगूठी या बिछुवे।

२. वर्मिका—जालीदार आभूषण।

३. खिखिणिका—चलते समय आवाज करने वाला आभूषण पायजेब आदि।

इसी प्रकार 'पादसूचिका', 'पादघट्टिका' आदि शब्द भी पैरों के भिन्न-भिन्न आभूषणों के नाम हैं।

पाव (पाप)

'पाव' शब्द के पर्याय प्राणवध के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा उपचार से रौद्र कार्य करने वाले पापी के लिए भी इन शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। इनमें अर्थभेद होते हुए भी क्रूरता व हिंसक वृत्ति की सर्वत्र समानता है—

पाप—पाप प्रकृति के बन्धन का हेतु होने से पाप तथा पाप प्रकृति का सेवन करने से पापी।

चंड—कषाय की उत्कटता से चण्ड।

रौद्र—क्रूर कार्य करने वाला।

क्षुद्र—अधम व द्रोही।

साहसिक—बिना विचारे कार्य करने वाला।

अनार्य—जो आर्य/श्रेष्ठ कर्मों से दूर है।

निर्घृण—जिसमें पाप के प्रति घृणा नहीं है।

नृशंस—दयाहीन।

महाभय—जिससे प्रतिपल भय बना रहे।

प्रतिभय—प्रत्येक प्राणी जिससे भयभीत रहे।

बीहणक—दूसरो को भयभीत करने वाला (वे)]।

त्रासनक—आकस्मिक भय पैदा करने वाला जिससे शरीर व मन में कंपन पैदा हो जाये।

निरपेक्ष—दूसरों के प्रति उदासीन।

निर्धर्म—श्रुत, चरित्र आदि धर्म से रहित।

निष्करुण—करुणा रहित, कठोर हृदय वाला।[1]

पावय (पापक)

प्रस्तुत प्रसंग में संगृहीत सभी शब्द अप्रशस्तमनोविनय के वाचक हैं—

१. पापक—अशुभ चिन्तन करने वाला।

२' सावद्य—गर्हित कार्य में प्रवृत्त।

३. सक्रिय—मानसिक संताप पैदा करने वाली क्रियाओं में प्रवृत्त।

४. सोपक्लेश—शोक आदि से अनुगत।

५. आस्रवकर—आस्रवों से संवलित।

६. छविकर—प्राणियों को पीड़ा पहुंचाने की प्रवृत्ति से युक्त।

---

१. प्रश्नी व ५।

७. बृहत्प्रियंकान—आर्यिकों के लिए समाच्छ।

पासाण (पाषाण)

'पासाण' शब्द के पर्याय में तेरह शब्दों का उल्लेख है। कुछ शब्द पत्थर के स्पष्ट वाचक हैं। मणि, पाषाण आदि शब्द पत्थर के रूपान्तरण हैं। पर्वतक, गिरिक, मेरुक आदि शब्द शिलाखण्ड के वाचक हैं। मरुभूमि की कठोर मिट्टी पत्थर के समान कठोर होती है। उसे मरुभूतिक कहा जा सकता है। इस प्रकार सभी शब्द पाषाण के विभिन्न रूपान्तरण हैं।

पासादिय (प्रासादीय)

'पासादिय' शब्द के पर्याय के रूप में चार शब्दों का उल्लेख है। ये चारों ही अत्यधिक सुन्दरता को व्यक्त करने वाले विशेषण हैं।[1] जैसे—

१. प्रासादीय—मन को प्रसन्न करने वाला।

२. दर्शनीय—चक्षु को आनन्द देने वाला।

३. अभिरूप—सदा मनोज्ञ रहने वाला।

४. प्रतिरूप—असाधारण रूप।

पिंड (पिण्ड)

'पिण्ड' शब्द के एकार्थक में बारह शब्दों का उल्लेख है। यद्यपि ये सभी शब्द प्रतिनियत व भिन्न-भिन्न समूहों के वाचक हैं, लेकिन सामान्य रूप से समूह अर्थ के वाचक होने से इन सभी को एकार्थक माना है[2]—

१. पिण्ड—बहुत चीजों को मिलाकर एक पिण्ड बनाना।

२. निकाय – भिक्षुओं का समूह।

३. समूह—मनुष्यों का समुदाय।

---

१. बृटी प १८२ : चत्वारोऽप्यतिशयरमणीयत्वख्यापनार्थमुपात्ताः।

२. राजटी पृ ९।

३. यद्यपि पिण्डादयः शब्दाः लोके प्रतिनियत एव संघात विशेषे रूढाः, तथापि सामान्यतो यद् व्युत्पत्तिनिमित्तं संघातत्वमात्रलक्षणं तत् सर्वेषामप्यविशिष्टमिति कृत्वा सामान्यतः सर्वेऽपि पिण्डादयः शब्दा एकार्थिकता उक्ताः न कश्चिद्दोषः।

४. समवाय—वणिकों का समूह ।

५. समवसरण—तीर्थंकरों की परिषद्, अनेक व्यक्तियों का मिलन-स्थल ।

६. निकाय—सूअर आदि पशुओं का संघात ।

७. उपचय—पूर्व समूह में वृद्धि होना ।

८. चय—ईंटों की रचना, दीवार आदि बनाना ।

९. युग्म—दो पदार्थों का मिलना ।

१०. राशि—ढेर ।

पितवण्ण (पीतवर्ण)

'पितवण्ण' और पीतक ये दोनों शब्द पीले रंग के स्पष्ट पर्याय हैं। पद्मकेशर व तिगिञ्छ (पराग) का रंग पीला होता है अतः इनको भी पीतवर्ण का पर्याय माना है ।

पितामह (पितामह)

'पितामह' शब्द के पर्याय में चार शब्दों का उल्लेख है। ये सारे शब्द ब्रह्मा के द्योतक हैं। इनका आशय इस प्रकार है—

ब्रह्म—जिसमें सारी सृष्टि वृद्धिगत होती है ।[1]

स्वयंभू—जो स्वयं पैदा होता है ।

प्रजापति—समस्त सृष्टि का स्वामी तथा उसका पालनकर्ता ।

पीणणिज्ज (प्रीणनीय)

आहार का एक कार्य है—शरीर को पुष्ट करना । विभिन्न प्रकार के आहार शरीर के रस, धातु, मांस आदि को पुष्ट करते हैं, इसलिए समवेत रूप में इन्हें एकार्थक माना है—

१. प्रीणनीय—सप्त धातुओं को सम करने वाला ।

२. दीपनीय—दृप्त करने वाला, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला ।

३. दर्पणीय—बलवर्धक ।

४. मदनीय—कामोत्तेजक ।

५. बृंहणीय—शरीर को उपचित करने वाला ।

---

१. [illegible]

पूयणट्ठि (पूजनार्थिन्)

पूजा, यश, मान और सम्मान—इन चारों में शब्दगत अर्थभेद होने पर भी सामान्यतः ये एकार्थक हैं। अक्षत आदि से अर्चना करना पूजा है। वाचिक स्तुति करना यश, वंदना करना, आने पर खड़ा होना मान तथा वस्त्र आदि देना सम्मान है। इस प्रकार सम्मान व्यक्त करने के अर्थ में चारों शब्द एकार्थक हैं।

पोग्गलत्थिकाय (पुद्गलास्तिकाय)

भगवती सूत्र में षड्द्रव्य के अभिवचन के प्रसंग में पुद्गलास्तिकाय के अभिवचनों का उल्लेख है। इसमें प्रारम्भ के दो शब्द—पुद्गल और पुद्गलास्तिकाय—ये इसके वास्तविक पर्याय हैं। शेष द्विप्रदेशीस्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशीस्कन्ध तक के सारे शब्द पुद्गल की विभिन्न अवस्थाओं के वाचक हैं।

प्रकृति (प्रकृति)

प्रकृति, प्रधान और अव्यक्त—ये तीनों शब्द एकार्थक माने गए हैं। सांख्य के २५ तत्त्वों में प्रधान तत्त्व को प्रकृति एवं अव्यक्त भी कहा है। मूल तत्त्व होने से सांख्य दर्शन में प्रकृति को प्रधान तत्त्व माना है। इसे अव्यक्त भी कहा जाता है क्योंकि महान् आदि व्यक्त तत्त्वों की तुलना में वह अव्यक्त है। महान् आदि विकृतियों की तुलना में प्रकृति शब्द व्यवहृत होता है। इस प्रकार तीनों शब्दों के अभिवचन सार्थक हैं।

प्रथमसमवसरण (प्रथमसमवसरण)

चातुर्मास का प्रथम दिन सावन वदी एकम होता है। यह धर्म परिषद् के एकत्रित होने का प्रथम दिन है तथा इसी दिन से जैन संवत् शुरु होता है, अतः वर्षावास को प्रथमसमवसरण कहते हैं। अवग्रह का अर्थ है—स्थान। ज्येष्ठ अर्थात् प्रधान। चातुर्मास साधुओं के लिए एक स्थान पर रहने का सबसे बड़ा काल होता है अतः इसे ज्येष्ठावग्रह कहते हैं। चातुर्मास में मुनि एक स्थान पर चार महीने रहता है और शेष आठ महीने वह कहीं पांच दिन, कहीं दस दिन और कहीं एक मास रह सकता है। चार मास वह कहीं नहीं रह सकता। चार मास का काल ज्येष्ठ बड़ा होता। अतः इसे ज्येष्ठावग्रह कहते हैं।

फासिय (स्पृष्ट)

'फासिय' आदि सातों शब्द व्रत-पालन की उत्तरोत्तर अवस्थाएं हैं।

किन्तु एक दूसरे से सम्बद्ध होने से ये समानार्थक हैं। इनका क्रमिक अर्थबोध इस प्रकार है—

१. स्पृष्ट—उचित समय में व्रत का सम्यक् स्वीकरण।

२. पालित—सतत सम्यक् उपयोग से उसका पालन।

३. शोधित—अतिचार वर्जन तथा अन्य क्रियाओं से शोधन करना।

४. तीरित—व्रत पालन की उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त करना।

५. कीर्तित—उसके बारे में दूसरों को कहना।

६. आराधित—उक्त प्रकारों से व्रत की सम्यक् आराधना।[1]

फुडण (स्फुटन)

१. स्फुटन—स्वतः ही वस्तु का दो भागों में विभक्त होना।

२. भञ्जन—टुकड़ों में विभक्त करना।

३. छेदन—छेदना।

४. तक्षण—कुल्हाड़ी आदि से काटना।

५. विलुञ्चन—शरीर के रोम आदि खींचना।

बंभण (ब्राह्मण)

इसमें संगृहीत ब्राह्मणवाची शब्द गुणों से, ज्ञान से और क्रियाओं से सम्बन्धित हैं, जैसे—कृतयज्ञ, यज्ञकारी, प्रथमयज्ञ, यज्ञमुंड, अग्निहोत्र, आहिताग्नि, अग्निहोत्ररति आदि शब्द क्रिया से संबंधित हैं। वेद, वेदध्यायी, वेदाभ्यासी, वेदपारग आदि शब्द ज्ञान से सम्बन्धित हैं। ब्रह्मऋषि, ब्रह्मज्ञ, प्रियब्रह्म आदि शब्द गुणवाची हैं।

कुछ शब्द पेय-पदार्थ के आधार पर भी निर्मित हैं। ब्राह्मण को सोमरस पीने वाला माना जाता है, अतः सोमपा, सोमपाइ, सोमनाम आदि शब्द भी ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त हैं।

सामान्यतः विप्र और द्विज ब्राह्मण के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। लेकिन जो ब्राह्मणजाति में पैदा होते हैं वे विप्र तथा उस जाति में उत्पन्न होकर योग्य वय में यज्ञोपवीत धारण करने वाले द्विज कहलाते हैं।

---

१. अवी ५ ११६।

बहुजणाचिण्णं (बहुजनाचीर्णं)

ये तीनों शब्द 'जीतव्यवहार' के द्योतक हैं। अनेक गीतार्थ आचार्यों द्वारा आचीर्ण विधि को 'जीत' कहा जाता है। उसी विधि को परम्परा से व्यवहृत करना अथवा अपनी बहुश्रुतता से उस विधि के आधार पर अन्य विधि प्रवर्तित करना 'जीत' व्यवहार कहलाता है। ये तीनों शब्द इसी भावना के प्रतीक हैं। यह युगानुकूल परिवर्तन की प्रामाणिकता की ओर संकेत करता है।

बालक (बालक)

बालक शब्द के पर्याय में आठ शब्दों का उल्लेख है। इनमें कुछ शब्द अन्य जाति (पशुजाति) के बच्चों के वाचक हैं, जैसे—

पिल्लक—कुत्ते का बच्चा (दे)

तर्णक }—गाय का बछड़ा।
वत्सक

कलभ—हाथी का बच्चा।

इन सभी शब्दों को अवस्थाकृत समानता से बालक के पर्याय में माना है।

भंत (भदन्त)

'भंत' आदि शब्द ईश्वर तुल्य व्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हैं। इनका आशय इस प्रकार है—

भदन्त—जो भद्र/कल्याण और सुख से युक्त है।

भयान्त—जिसने भय/त्रास का अन्त कर दिया है।

भवान्त—जिसने संसार का अन्त कर दिया है।

('भंत' शब्द के संस्कृत में भदन्त, भयान्त और भवान्त आदि रूप बन जाते हैं।)

भय (भय)

दुःख, मृत्यु, अशांति और अनर्थ का कारण है—भय, इसलिए कारण में कार्य का उपचार करके इन शब्दों को भी भय का पर्याय माना है। यद्यपि संस्कृत के कोशकारों ने भय के पर्याय में इन शब्दों का उल्लेख नहीं किया है लेकिन चूर्णिकार एवं टीकाकारों ने अनेक स्थलों पर इन्हें

एकार्थक माना है।[1]

भवण (भवन)

आकार प्रकार में भेद होते हुए भी 'भवन' आदि चारों शब्द घर के अर्थ में एकार्थक हैं। जैसे—

१. भवन—चतुःशाल आदि।

२. गृह—सामान्य घर।

३. शरण—तृण आदि से बनी झोंपड़ी।

४. लयन—पर्वत को खोदकर बनाया गया घर अथवा पत्थर से निर्मित घर।

भिक्खु (भिक्षु)

'भिक्खु' शब्द के पर्याय मे तेंतीस शब्दों का उल्लेख हुआ है। प्रवृत्ति लभ्य दृष्टि से सभी शब्द भिक्षु के पर्याय हैं लेकिन व्युत्पत्ति लभ्य (समभिरूढ नय की) दृष्टि से सभी शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ के वाचक हैं। कुछ शब्दो का तात्पर्य इस प्रकार है—

१. तीर्ण—ससार समुद्र को पार करने का इच्छुक।

२. त्रायी—षड्जीवनिकाय का रक्षक।

३. द्रव्य—शुद्धचैतन्य स्वरूप।

४. मुनि—ज्ञानी।

५. प्रज्ञापक—धर्मदेशना देने वाला।

६. पाषण्डी—अनेक दर्शनों का ज्ञाता, पाप से पलायन करने वाला।

७ ब्राह्मण—ब्रह्मचर्य में रत।

८. श्रमण—श्रम करने वाला, सम रहने वाला तथा अच्छे मन वाला।

९. निर्ग्रन्थ—बाह्य और आभ्यन्तर ग्रंथि से मुक्त।

१०. तपस्वी—तपस्या में रत।

११. क्षपक—कर्म-क्षय करने वाला।

१२. भवान्त—संसार प्रवाह का अन्त करने वाला।

---

१. आचू पृ २६ : भयं दुक्खं असातं मरणं असंति अणत्थाणमिति एगट्ठा।

ये सभी नाम भिक्षु के विभिन्न गुणों के आधार पर प्रचलित हैं। पावयणी, मुनि, प्रज्ञापक, बुद्ध, विदु आदि शब्द भिक्षु की ज्ञान चेतना को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार व्रती, क्षान्त, दान्त, विरत, यति, प्रव्रजित, संयत, साधु, उपरत, संयमरत आदि शब्द संयम चेतना के द्योतक हैं। तथा मुक्त, अनगार, तीर्ण, ग्रन्थ, निर्ग्रन्थ, भवान्त, क्षपक, तीरार्थी आदि शब्द साधु की मोहरहित वीतराग चेतना के आधार पर प्रचलित हैं।

भीय (भीत)

भयभीत के अर्थ में चारों शब्द एकार्थक हैं।[1] इनका आशय इस प्रकार है—

भीत—डरपोक।

त्रस्त—क्षुब्ध, एवं भय के कारण पसीने से तरबतर।

उद्विग्न—चिन्ता से भयभीत।

भूमि (भूमि)

देखें—'चेरभूमि'।

भेसण (भेषण)

'भेसण' आदि शब्द भयभीत करने के अर्थ में प्रयुक्त हैं—

१. भेषण—डराना।

२. तर्जन—अंगुली निर्देश पूर्वक डांटते हुए भयभीत करना।

३. ताडन—लकडी आदि से पीटते हुए डराना।

भोज्ज (भोज्य)

भोज और संखडि—ये दोनों जीमनवार के प्रतीक हैं। 'संखडि' जीमनवार के अर्थ में प्रयुक्त देशी शब्द है। संखडि शब्द का शाब्दिक अर्थ है—हिंसा। जीमनवार में हिंसा होती है, इसलिए इसे 'संखडि' कहा जाता है। इसका दूसरा अर्थ संस्कृति भी किया जा सकता है, क्योंकि भोज आदि में अन्न का संस्कार किया जाता है—पकाया जाता है।[2]

---

१. त्रिपाटी प ४३ : भीया .... इति भयप्रकर्षाभिधानार्थैकार्थाः।

२. दस. पृ ३६२।

मंदर (मन्दर)

मंदर पर्वत के एकार्थकों का अनेक स्थलों से संग्रहण किया गया है। इन सब नामों की अर्थ-परम्परा इस प्रकार है[1]—

मंदर—मंदर देव के योग से प्रचलित नाम।

मेरु—मेरु देव के कारण प्रचलित नाम।

मनोरम—देवताओं के मन को प्रसन्न करने वाला।

सुदर्शन—स्वर्णमय एवं रत्नमय होने से दर्शनीय।

स्वयंप्रभ—रत्नों की बहुलता से स्वयं प्रकाशी।

गिरिराज—समस्त पर्वतों में मूर्धन्य तथा तीर्थंकरों का अभिषेक होने से गिरिराज।

रत्नोच्चय—अनेक प्रकार के रत्नों का समूह।

शिलोच्चय—जिस पर पांडुशिलाओं का उपचय है।

लोकमध्य—समस्त लोक का मध्यवर्ती।

लोकनाभि—लोक की नाभि के समान अवस्थित।

अच्छ—पवित्र।

अस्त—सूर्य आदि ग्रह-नक्षत्र इससे अन्तरित होकर अस्त होते हैं।

सूर्यावर्त—सूर्य-चन्द्र आदि जिसकी प्रदक्षिणा करते हैं।

सूर्यावरण—सूर्य-चन्द्र आदि नक्षत्र जिसको आवेष्टित करते हैं।

उत्तम—सर्वश्रेष्ठ।

उत्तर—भरत आदि क्षेत्रों के उत्तर में स्थित।

दिशादि—सभी दिशाओं का आदि/प्रारम्भ बिन्दु।

अवतंस—समस्त पर्वतों का मुकुट।

धरणिकील—पृथ्वी की धुरी।

धरणिशृंग—पृथ्वी पर सबसे ऊंचा।

महल्लय (महालय)

'महल्लय' शब्द के पर्याय में इक्कीस शब्दों का उल्लेख है। महालय से क्षीणवंश तक के लगभग सभी शब्द बूढ़े व्यक्ति के स्पष्ट वाचक

---

1. सूर्यटी प ७८ : मंदराख्यः सम्प्रति परमार्थतः एकार्थिकास्ततो भिन्नाभि-प्रायतया प्रवृत्ताः।

हैं। लेकिन क्षीण, निष्ठित, परिमलित, परिशुष्क, परिघट्टित आदि शब्द वृद्धावस्था से होने वाली परिस्थितियों के द्योतक होने से एकार्थक हैं।

महापउम (महापद्म)

आगामी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर महापद्म (श्रेणिक का जीव) सन्मति कुलकर की पत्नी भद्रा की कुक्षि में जन्म लेंगे। जब उनका जन्म होगा तब शतद्वार नगर में बहुत विशाल पद्मों की वर्षा होगी, इसलिए बालक का नाम 'महापद्म' रखा जाएगा। कुमारावस्था में देव उनका सहयोग करेंगे, अतः उनको 'देवसेन' कहा जायेगा। राजा होने के पश्चात् उनका मुख्य वाहन विमल, चतुर्दन्त हस्तिरत्न होगा, इसलिए उनका नाम "विमलवाहन' रखा जायेगा। इस प्रकार ये तीनों ही नाम सार्थक—गुणनिष्पन्न हैं।[1]

माण (मान)

मान के एकार्थक के प्रसंग में भगवती सूत्र में बारह नामों का उल्लेख है। यद्यपि सामान्य रूप से ये सभी एकार्थक हैं, लेकिन प्रत्येक शब्द मान की उत्तरोत्तर अवस्था को प्रकट करते हैं।[2]

१. मान—अभिमान की सामान्य अवस्था।

२. मद—प्रसन्नता से होने वाला उत्कर्ष भाव।

३. दर्प—सफलता पर होने वाला अहंकार अथवा उन्मत्तता (मदोन्मत्तता)।

४. स्तम्भ—खम्भे की भांति अकड़कर रहना।

५. गर्व—शारीरिक स्तर पर विशेष रूप से दिखाई देने वाला अहंकार। जैसे—नाक फूलना, गर्दन कड़ी रहना आदि।

६. अत्युत्क्रोश—दूसरों के सामने अपने गुणों का कीर्तन करना और स्वयं को श्रेष्ठ बताना। इस स्थिति में अहं वाणी में प्रकट होने लगता है।

७. परपरिवाद—दूसरों की निंदा करना व उनकी विशिष्टता का अपलाप करना।

८. उत्कर्ष—अभिमानवश अपनी समृद्धि व ऐश्वर्य का दिखावा करना।

---

१. स्था ९/६२।

२. भटी पृ १०५१ : मान इति सामान्यं नाम मदादयस्तु तद्विशेषाः।

९. अपकर्ष—अहंकारवश ऐसा कार्य करना जिससे दूसरों की हीनता दिखाई दे।

१०. उन्नत—विनय-विमुखता अथवा नीति-न्याय से विमुख होना।

११. उन्नाम—अभिमानवश नमन न करना।

१२. दुर्नाम—अवंद्य के प्रति अच्छाई से नमन करना।

स्तम्भ आदि शब्द मान के कार्य हैं, लेकिन वस्तुतः ये सभी मान के एकार्थक हैं।[1]

बौद्ध साहित्य में १० क्लेशवस्तु में मान को क्लेश माना है तथा उस प्रसंग में मान के वाचक अनेक शब्दों का उल्लेख है, जैसे—मान, मञ्ञना, मञ्ञितत्त, उन्नति, उन्नम, धज, सम्पग्गाह, केतुकम्यता आदि।[2]

माया (माया)

'माया' शब्द के पर्याय में यहां पन्द्रह शब्द उल्लिखित हैं। यद्यपि ये सभी शब्द माया के कार्य रूप में उपयुक्त हैं, लेकिन उपचार से टीकाकार ने इनको एकार्थक माना है।[1]

१. माया—सामान्य अवस्था।

२. उपधि—दूसरो को ठगने के विचार से उसके पास जाना।

३. निकृति—किसी को ठगने के लिए पहले उसके प्रति आदर करना अथवा एक माया को छिपाने के लिए दूसरी माया करना।

४. वलय—वक्र आचरण, व्यंगपूर्ण वचन बोलना।

५. गहन—दूसरा समझ न सके ऐसा सघन शब्दजाल रचना।

६. नूम—दूसरों को ठगने के लिए अधम से अधम बर्ताव करना। (दे)

७. कल्क—हिंसात्मक उपायों से ठगना।

८. कुरूप—माया व षड्यंत्र करने वाले व्यक्ति का चेहरा घबराहट व बेचैनी से कुरूप हो जाता है अतः माया का एक अर्थ कुरूप है।

---

१. भटी पृ १०२१ : स्तम्भादीनि मानकार्याणि मानवाचका वैते ध्वनयः।

२. बसं पृ २७१-७२।

१. भटी पृ १०५२ : मायैकार्थाः वैते ध्वनयः।

९. जिह्म—बगुले की भांति वंचनापूर्ण व्यवहार करना।

१०. किल्विष—किल्विषी देव की भांति कपटपूर्ण आचरण करना।

११. आचरण—किसी को छलने के लिए नाना प्रकार की कपटपूर्ण चेष्टाएं करना।

१२. गूहन—कपटाई करके अपने स्वरूप को छिपाना।

१३. वंचन—दूसरों को पूरी तरह ठगना।

१४. प्रतिकुञ्चन—दूसरों द्वारा सरलभाव से कहे वचन का खंडन करना तथा अपनी असत्य बात को अच्छे शब्दों में प्रस्तुत करना।

१५. सातियोग—मिलावट करना व कूट-माप-तौल करना।

प्रस्तुत एकार्थक में माया, उपधि और निकृति तक के शब्दों में मानसिक माया, वलय और गहन मे वाचिक माया तथा नूम से सातियोग तक के सभी शब्दों में माया कार्यरूप में परिणत हो जाती है।

मित्त (मित्र)

स्वजन आदि मित्र के अन्तर्गत ही होते हैं। अतः स्वजन के विभिन्न अंग ज्ञाति, सम्बन्धी आदि को भी मित्र के अन्तर्गत लिया है। इन शब्दों की अर्थवत्ता इस प्रकार है—

मित्र—स्नेही।

ज्ञाति—समान जाति वाला।

निजक—पितृव्य आदि निकट सम्बन्धी।

सम्बन्धी—सास, श्वसुर आदि।

परिजन—दास-दासी आदि।

वयस्क—समान वय का मित्र।

सखा—हर क्रिया साथ में करने वाला।

सुहृद्—हमेशा साथ में रहने वाला तथा हितकारी सलाह देने वाला।

सांगतिक—संगति मात्र से होने वाला मित्र।

चाहिय—सहयोगी (दे)।

मुच्छिय (मूर्च्छित)

'मुच्छिय' आदि शब्द आसक्ति से होने वाली विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। जैसे—

१. मूर्च्छित—विवेक-चेतना शून्य।

२. ग्रथित—लोभ के तन्तुओं से बंधा हुआ।

३. गृद्ध—आकांक्षा वाला।

४. अध्युपपन्न—विषयों के प्रति एकाग्र।[1]

विपाक सूत्र के टीकाकार ने इनको एकार्थक माना है।[2]

मुम्मुर (मुर्मुर)

मुर्मुर आदि सभी शब्द अग्नि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते है। लेकिन समवेत रूप से अग्नि के वाचक होने के कारण एकार्थक हैं—

१. मुर्मुर—भस्म मिश्रित कडे की अग्नि।

२. अर्चि—मूल अग्नि से विच्छिन्न ज्वाला अथवा दीपशिखा का अग्र-भाग।

३. ज्वाला—अग्नि से संयुक्त अग्निशिखा।

४. अलात—अधजली लकड़ी।

५. शुद्ध अग्नि—इंधन रहित अग्नि अथवा अयःपिण्ड मे प्रविष्ट अग्नि।

मेढि (मेढी)[3]

'मेढि' आदि शब्द कुटुम्ब या समाज के प्रधान व्यक्ति के बोधक हैं। वह व्यक्ति पूरे कुटुम्ब या समाज का आधारभूत होता है, अतः ये सभी शब्द उसकी गुणवत्ता को द्योतित करते हैं।

मोहणिज्जकम्म (मोहनीयकर्म)

ये सभी नाम मोहनीय कर्म की विभिन्न अवस्थाओ के द्योतक हैं। यहां अवयवो में अवयवी अथवा खड में समुदाय का उपचार कर सभी

---

१. भाटी प ९१।

२. विपाटी प ४१ : मुच्छिए ·····त्ति एकार्थाः।

३. आप्टे, पृ १२८९ : मेढि।, मेढी, मेथिः।

को मोहनीय की संज्ञा दी गयी है। कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। इनमें क्रोध के दस, मान के ग्यारह, माया के सतरह और लोभ के चौदह—इस प्रकार चार कषायों के ५२ भेद मोहनीय के पर्याय मान लिए गये हैं। इसके अतिरिक्त भगवती सूत्र में क्रोध आदि चारों कषायों के भिन्न भिन्न पर्याय शब्दों का उल्लेख मिलता है जो प्राय: इन शब्दों से समानता रखते हैं।

विशेष व्याख्या के लिए देखें—'क्रोध', 'मान', 'माया' और 'लोभ'।

रज्ज (राज्य)

राज्य, देश और जनपद—ये तीनों शब्द वसति के वाचक हैं।

१. राज्य—सम्पूर्ण राष्ट्र।

२. देश—प्रान्त।

३. जनपद—प्रान्त की ईकाई (जिला)।

इसके अतिरिक्त ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आकर, आश्रम, संवाह, सन्निवेश आदि शब्द भी वसति के प्रकार हैं। ये सभी शब्द यद्यपि क्षेत्ररचना की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन वसति के रूप में इनको एकार्थक माना है।

रयस् (रयस्)

रय का अर्थ है—वेग। चेष्टा, अनुभव और फल इसी अर्थ के वाचक हैं। वृत्तिकार ने इन्हें एकार्थक माना है।[1] इनको एकार्थक मानने का रहस्य सुबोध नहीं है।

रहस्स (ह्रस्व)

'रहस्स' शब्द के एकार्थक के रूप में तेवीस शब्दों का उल्लेख है। यहां 'सपिंडित' 'सन्निरुद्ध' आदि शब्द ह्रस्व अर्थ के अन्तर्गत लिये गए हैं। जो रोका हुआ होगा, वह एकत्रित होने के कारण विस्तृत नहीं होगा। इसी दृष्टि से आकुंडित (आकुञ्चित), संवेल्लित (दे) आदि शब्द जो संवृत या संकुचित के अर्थ मे हैं, वे भी अल्प या ह्रस्व के ही द्योतक हैं।

---

१. आवहाटी १ पृ २६३।

राग (राग)

राग का अर्थ है—अनुराग, लोभ, आसक्ति। यहां गृहीत कुछ शब्द आसक्ति की मंदता और कुछ शब्द उसकी तीव्रता के द्योतक हैं। जैसे—मूर्च्छा, स्नेह, गृद्धि, अभिलाषा आदि शब्द आसक्ति की तीव्रता की ओर संकेत करते हैं।

देखें—'लोभ'।

राहु (राहु)

भगवती में राहु के नौ नाम उल्लिखित हैं। इनमें दर्दुर, मकर, कच्छप आदि कुछ नाम पशुवाची हैं। राहु एक देव है। उसके विमान पांच वर्णों के हैं—कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत। राहु के अभिवचनों की सार्थकता अन्वेषणीय है। शब्दकल्पद्रुम में उसके अनेक नामों का उल्लेख है—राहु, तमस, स्वर्भानु, सैंहिकेय, विधुन्तुद, अभ्रपिशाच, ग्रहकल्लोल, उपप्लव, शीर्षक, उपराग, कृष्णवर्ण, कबन्ध, अगु, असुर आदि। राहु के प्रत्यधिदेवता का नाम सर्प है। और राहु का वर्ण कृष्ण है।[1] इस प्रकार कृष्ण सर्प उसका पर्याय बन जाता है। इसी प्रकार अन्यान्य शब्द भी उसकी विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक होने चाहिए।

रुण्ण (रुदित)

१. रुदित—रोना, आंसू बहाना।

२. रटित—सिसकते हुए रोना। गुजराती भाषा में रोने के अर्थ में 'रडे छे'—ऐसा प्रयोग होता है।

३. क्रंदन—इष्ट वियोग में क्रन्दन के साथ रुदन।

४. रसित—सूअर की भांति करुणोत्पादक शब्द करते हुए रोना।

५. करुणविलपित—करुण विलाप करना।[2]

देखें—'रोयमाणी'।

रोयमाणी (रुदती)

'रोयमाणी' आदि शब्द रुदन की विशेष अवस्थाओं के द्योतक हैं। जैसे—

---

१. भग. भा ४ सू १६० ।

२. वही प १६७ ।

१. रुदन—रोना।

२. क्रन्दन—क्रन्दन के साथ रुदन।

३. तेपन—भय और पसीने से मिश्रित रुदन।

४. शोक—शोक व दुःख के साथ निरन्तर रुदन।

५. विलपन—विलाप एवं छाती पीटते हुए रोना।

देखें—'रुण्ण'।

लघुक (लघुक)

देखें—'गुरुक'।

लता (लता)

जैन परम्परा में इन्द्रियविजय के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की तपस्याएं की जाती थीं। उनको इन्द्रियविजय तप कहा जाता था। उसका क्रम इस प्रकार है—

पहले दिन दो प्रहर करना, दूसरे दिन एकासन, तीसरे दिन विगय-वर्जन, चौथे दिन आचाम्ल, पाचवे दिन उपवास।

इस प्रकार एक-एक इन्द्रिय विजय के लिए पाच दिनो तक यह तप करना होता था। यह पांच दिनों की एक लता, श्रेणी या परिपाटी होती थी।[1]

लद्धट्ठ (लब्धार्थ)

'लद्धट्ठ' आदि शब्द अर्थ-ग्रहण करने की क्रमिक अवस्थाओं के द्योतक हैं। लेकिन समवेतरूप में वे एक ही अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। जैसे—

१. लब्धार्थ—श्रवण के द्वारा अर्थ को जानना।

२. गृहीतार्थ—अर्थ का अवधारण करना।

३. पृष्टार्थ—संशय होने पर पूछना।

४. अभिगतार्थ—अर्थ का सम्यक् अवबोध करना।

५. विनिश्चितार्थ—तात्पर्य को समझ कर हृदयंगम कर लेना।

---

१. प्रसाटी प ४३५।

सद्दमईय (सब्दमतिक)

मति का अर्थ है बुद्धि, श्रुति का अर्थ ज्ञान तथा संज्ञा का अर्थ मानसिक अवबोध है। इस प्रकार ये तीनों शब्द ज्ञानार्थक हैं।

लोभ (लोभ)

लोभ के पर्याय शब्दो में यहां सोलह शब्दों का उल्लेख है। ये सभी शब्द लोभ की उत्तरोत्तर अवस्था के द्योतक हैं।[1] इन शब्दों का अर्थबोध इस प्रकार है—

इच्छा—किसी वस्तु के प्रति अभिलाषा।

मूर्च्छा—प्राप्त वस्तु की रक्षा का प्रयत्न।

कांक्षा—अप्राप्त की प्राप्ति का प्रयत्न।

गृद्धि—प्राप्त विषयों में आसक्ति।

तृष्णा—अतृप्ति भाव।

भिध्या—विषयो के प्रति दृढ़ अभिनिवेश।

अभिध्या—पदार्थासक्ति के कारण अपने संकल्प से डिगना।

आशंसना—प्रिय व्यक्ति की भौतिक समृद्धि की कामना।

प्रार्थना—दूसरों की समृद्धि की याचना।

लालपन—खुशामद करके इष्ट वस्तु की मांग करना।

कामाशा—इष्ट रूप तथा शब्द प्राप्ति की विशेष इच्छा।

भोगाशा—इष्ट गंध, रस और स्पर्श के संयोग की इच्छा।

जीविताशा—जीने की उत्कट अभिलाषा।

मरणाशा—विपत्ति में मरने की इच्छा।

नन्दीराग—भौतिक समृद्धि की सर्वात्मना प्रबल आसक्ति।

धम्मसंगणि में 'लोभक्लेश' के प्रसंग में लोभ के वाचक अनेक शब्दों का उल्लेख है। उसमें कुछ शब्द भगवती में निर्दिष्ट लोभ के एकार्थक के संवादी हैं जैसे—राग, नंदी, नन्दीराग, इच्छा, मुच्छा, अज्झोसान, गेधि, संग, पणिधि, आसा, आसिसना, रूपासा, लाभासा, धनासा, जीवितासा, पत्थना, अभिज्झा इत्यादि।

1. भटी पृ १०५२-२१ : लोभ इति सामान्यं नाम, इच्छादयस्तद् विशेषाः।

लोमसिका (दे)

'लोमसिका' आदि शब्द विभिन्न प्रान्तों में ककड़ी के अर्थ में प्रयुक्त देशी शब्द हैं। ककड़ी शब्द 'कक्कुडिया' शब्द का अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है। 'संगलिका' शब्द यद्यपि फली के अर्थ में प्रसिद्ध है लेकिन यहां ककड़ी के लिए प्रयुक्त है।

लोलुग

लोलुग का अर्थ है—प्रगाढ़। जो प्रगाढ़ होता है वह अधिक होता ही है अतः प्रगाढ़ को भृश भी कहा जाता है। और अव्यवच्छिन्न होने के कारण उसका एक नाम निरन्तर भी है।

वंझा (वन्ध्या)

'वंझा' आदि शब्द एक दृष्टि से बांझ के द्योतक हैं।

१. वन्ध्या—जो कभी प्रसव नहीं करती।

२. अजनयित्री—जो प्रजनन नहीं करती अथवा जिसकी सन्तान जीवित नहीं रहती।

३. आनुकूर्चरमाता—जो हीन अंग होने के कारण संतान का प्रसव नहीं करती।

इस प्रकार तीनों शब्द भावार्थ में एक अर्थ के वाचक हैं।

वंदणग (वन्दनक)

'वंदणग' शब्द के पर्याय में ५ शब्दों का उल्लेख है। ये पांचों शब्द वंदना की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के वाचक होने पर भी एकार्थक हैं।[1] इनका अर्थबोध इस प्रकार है—

वंदनक—प्रशस्त मन, वचन और काया से गुरु का अभिवादन व स्तुति करना।

चितिकर्म—वस्त्र आदि देकर सम्मानित करना।

कृतिकर्म—विधिपूर्वक नमन आदि करना।

पूजाकर्म—अक्षत आदि से पूजा करना।

विनयकर्म—विनय करना।

वंदित (वंदित)

देखें—'अच्चिय' तथा 'थुइ'।

---

१. आवचू प २६८ : वंदणगस्स इमाणि एगट्ठियाणि णामाणि।

वयण (वचन)

'वयण' के एकार्थक में बारह शब्दों का उल्लेख है। कुछ शब्दों की अर्थध्वनि इस प्रकार है[1]—

१. वचन—जो अर्थ को अभिव्यक्त करता है।

२. गिरा—जो भाषा वर्गणा के पुद्गलों का भक्षण करती है।[1]

३. सरस्वती—जो स्वरयुक्त होती है।

४. भारती—जो अर्थभार को धारण करती है।

५. गो—जो मुख से निःसृत होकर लोकान्त तक पहुंच जाती है।

६. भाषा—जो बोली जाती है।

७. प्रज्ञापनी—जिसके द्वारा अर्थबोध किया जाता है।

८. देशनी—जो अर्थ का देशन/कथन करती है।

९. वाग्योग—जीव की वाचिक प्रवृत्ति।

१०. योग—शुभ और अशुभ का योग करने वाली।

वध (वध)

'वध' आदि शब्द पीड़ित करने के अर्थ में समानार्थक हैं। पीड़ित करने के साधनों की भिन्नता होने पर भी इनमें पीड़ा की समानता है—

१. वध—यष्टि आदि से मारना।

२. बन्धन—बांधना।

३. ताडन—पीटना।

४. अंकन—तप्त लोहे की शलाका से चिन्हित करना।

५. निपातन—गड्ढे आदि में फेंकना।

६ विघात—चोट पहुंचाना।

वपण (वपन)

'वपण' आदि शब्द बीज-वपन की विविध प्रक्रियाओं के द्योतक हैं—

१. वपन—सामान्यतः बीज बोना।

---

१. दशअचू पृ १५९ : वयण एगट्ठियाणि।

२. रोपण—अंकुर आदि को पुनः रोपना । जैसे शालि धान्य आदि ।

३. प्रकिरण—बीजों को इधर उधर बिखेरना ।

४. परिशाटन—कलमें लगाना ।

यहां वपन शब्द का अर्थ है—कुछ लाभ देने वाला । ये चारों शब्द एकार्थक हैं ।[1]

ववहार (व्यवहार)

संघ व्यवस्था की दृष्टि से निर्मित आचार-संहिता जिसमें कर्तव्य और अकर्तव्य तथा प्रवृत्ति-निवृत्ति का निर्देश हो, वह व्यवहार कहलाती है । व्यवहार के ५ भेद हैं—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत । भाव व्यवहार के ये पर्याय नाम हैं—

१. सूत्र—अर्थ की सूचना देने वाले पूर्व अथवा छेदसूत्र ।

२. अर्थ—सूत्र का अभिधेय स्पष्ट करने वाला ।

३. जीत—अनेक गीतार्थ मुनियों द्वारा आचीर्ण ।

४. कल्प—संयम पालन करने में शक्ति प्रदाता ।

५. मार्ग—शुद्धि का साधन ।

६. न्याय—मोक्ष का साधन ।

७. इप्सितव्य—मुमुक्षुओं द्वारा वांछित ।

८. आचरित—महान् व्यक्तियों द्वारा आचरित ।

ये आठो पर्याय 'व्यवहार' के विषय-वस्तु तथा प्रतिपाद्य के वाचक हैं ।[2]

वाम (वाम)

वाम का अर्थ है—प्रतिकूल । वामावृत्त, वामाचार, वामशील आदि शब्द प्रतिकूल शील व आचार के अर्थ में प्रयुक्त हैं । इनमें वामपक्ष, वामदेश, वामभाग आदि शब्द दाहिने भाग के वाचक हैं । तथा अपसव्य आदि शब्द संस्कृत कोशों में भी वाम के अर्थ में प्रयुक्त हैं । अप्पगम शब्द

---

१. व्यभा १ टी प ५ : वपनशब्दस्य प्रदानलक्षणोऽर्थः समर्थितः ।······ शब्दचतुष्टयमेकार्थं, एकार्थप्रवृत्ताः परस्परमेते पर्यायाः ।

२ व्यभा १ टी प ६ ।

संभवतः इसी अर्थ में देशी होना चाहिए।

विताई (वितर्क)

देखें—'तक्क'।

वुड्ढ (वृद्ध)

वृद्ध, श्रावक और ब्राह्मण ये तीनों शब्द आज भिन्न-२ अर्थ के वाचक हैं। प्राचीन साहित्य में ये तीनों शब्द प्रौढ़ आचार वाले श्रावक के लिए प्रयुक्त थे। अनुयोग द्वारा चूर्णि में ब्राह्मण के लिए वृद्धश्रावक शब्द का उल्लेख हुआ है।[1]

सोधि (शोधि)

धर्म आत्मशोधि का कारण है, अतः कारण में कार्य का उपचार करके यहां धर्म और शोधि को भाष्यकार ने एकार्थक माना है।[2]

संकित (शंकित)

'संकित' आदि तीनों शब्द संदिग्ध चेतना के द्योतक है। इनका अर्थबोध इस प्रकार हैं—

१. शंकित—लक्ष्य के प्रति संशयशीलता।

२. कांक्षित—कर्तव्य के प्रतिकूल सिद्धान्तों की आकांक्षा।

३. विचिकित्सित—फल के प्रति सदेह।

भगवती सूत्र में इन तीनों शब्दों के साथ इन दो शब्दों का प्रयोग इसी अर्थ मे हुआ है।

भेदसमापन्न—लक्ष्य के प्रति मन में द्वैधभाव उत्पन्न होना।

कलुषसमापन्न—मतिविपर्यास।

धम्मसंगणि में, कंखा, कंखायना, कंखायितत्त, विमति, विचिकिच्छा द्वेलहक, द्वेधापथ, संसय, अनेकसंग्गाह, आसप्पना, परिसप्पना, अपरियोगाहना, थम्भितत्त, आदि का एक ही अर्थ में प्रयोग हुआ है।[3]

---

१. अनुद्वाचू पृ १२।

२. व्यभा १० टी प १७।

३. धसं पृ २५९-६०।

संख (शंख)

शंख सफेद होता है। इसके पर्यायवाची ८ शब्द हैं। ये सभी शब्द श्वेतवर्ण के द्योतक हैं, अतः वर्णसाम्य के कारण ये एकार्थक हैं।

संघ (संघ)

संघ आदि चारों शब्द श्रमणसमुदाय को व्यक्त करने वाले हैं। लेकिन इनमें संख्याकृत भेद है—

संघ—गण समुदाय।

गण—कुल समुदाय।

कुल—गच्छ समुदाय।

गच्छ—एक आचार्य का परिवार।

संजत (संयत)

इसके अन्तर्गत गृहीत संयत, विमुक्त आदि छहों शब्द संयमी व्यक्ति की भावधारा के द्योतक हैं। जो व्यक्ति संयमी होता है वह बाह्य आकर्षणों से विमुक्त होता है, अनासक्त होता है। पदार्थ के प्रति तथा शरीर के प्रति उसकी मूर्च्छा नहीं होती। वह ममकार तथा स्नेहबंधन से मुक्त होता है।

संजय (संयत)

अनगार या साधु के विशेषण के रूप में आगमों मे अनेक स्थलों पर 'संजय' आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है—

संयत—सतरह प्रकार के संयम में अवस्थित।

विरत—पापों से निवृत्त भिक्षु, अथवा बारह प्रकार के तप में अनेक प्रकार से रत।

प्रतिहतपापकर्मा—ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को हत करने वाला।

प्रत्याख्यातपापकर्मा—आस्रव द्वारों को निरुद्ध करने वाला।

अर्थभेद करते हुए भी चूर्णिकार जिनदास ने इनको एकार्थक माना है।[1]

इसके अतिरिक्त अक्रिय, संवृत तथा एकान्तपंडित भी संयमी

---

१ दशजिचू पृ १५४ : अहवा सव्वाणि एताणि एगट्ठियाणि।

व्यक्ति के अर्थ को व्यक्त करते हैं।

संत (सत्)

सत्, तत्त्व, तथ्य, अस्तित्व और सद्भूत ये सारे शब्द सत्य—यथार्थ के द्योतक हैं। जो तथ्य होता है वह यथार्थ ही होता है।[1]

संत (शान्त)

'संत' आदि शब्द शान्त के अर्थ में प्रयुक्त एकार्थक हैं।[2] इनका अर्थभेद इस प्रकार है—

शान्त—कषायमंदता।

प्रशान्त—कषाय के उदय को विफल करने वाला।

उपशान्त—कषायों को उदय में भी नहीं लाने वाला।

परिनिर्वृत—कषाय के पूर्ण नष्ट हो जाने पर चैतसिक स्वास्थ्य का धनी।

अनाश्रव—प्राणातिपात आदि आस्रव से रहित।

अमम—ममकार रहित।

अकिंचन—अपरिग्रही।

छिन्नस्रोत—संसार प्रवाह के उद्‌गम मिथ्यात्व आदि स्रोतों से रहित।

निरुपलेप—कर्म लेप से रहित।

इस प्रकार ये सभी शब्द निर्मलता की उत्तरोत्तर अवस्था के वाचक हैं।

संत (श्रान्त)

'संत' आदि तीनों शब्द थकान के अर्थ में प्रयुक्त हैं।[3]

श्रान्त—शारीरिक थकान।

तान्त—मानसिक थकान।

परितान्त—शारीरिक और मानसिक थकान।

---

1. आटी प १८४ : एकार्था एते शब्दाः।
2. औपटी पृ ६६ : प्रशमप्रकर्षाभिधानायैकार्थम्।
3. उपाटी पृ १११ : एते समानार्थाः।

संदाण (सन्दान)

किसी तपस्या या साधना के प्रतिफल में भौतिक ऋद्धि सिद्धि की आकांक्षा करना संदान/बंधन है। निदान, पर्व आदि इसी के पर्याय हैं।

संबुद्ध (संबुद्ध)

संबुद्ध, पंडित व प्रविचक्षण ये तीनों शब्द ज्ञानी व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हैं। चूर्णिकार ने एकार्थक मानते हुए भी इनका सूक्ष्म अर्थभेद किया है—

संबुद्ध—बुद्धि-सम्पन्न, सम्यग् दर्शन युक्त।

पंडित—परित्यक्त भोगों के प्रत्याचरण में दोषों को जानने वाला, सम्यग् ज्ञान से युक्त।

प्रविचक्षण—पाप से विरत, सम्यक् चारित्र से युक्त।[1]

संयत (संयत)

जो सतरह प्रकार के संयम से संवृत है वह संयत, जो साधनाशील है वह साधु तथा जिसके सभी द्वन्द्व समाहित हो चुके हैं वह सुसमाहित है। इस प्रकार ये तीनों शब्द मुनि के पर्याय हैं।

संरंभ (संरम्भ)

संरंभ आदि तीनों शब्द हिंसा की क्रमिक अवस्थाओं के द्योतक हैं। इनका आशय इस प्रकार है—

संरंभ—वध का संकल्प करना।

समारंभ—परितापित करना।

आरंभ—वध करना।[2]

सक्क (शक्र)

'सक्क' शब्द के पर्याय मे बारह शब्दो का उल्लेख है जो अर्थभेद रखते हुए भी भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के निमित्त से इन्द्र के अर्थ मे रूढ हैं[3]—

१. शक्र—शक्ति सम्पन्नता का द्योतक।

---

१. दशजिचू पृ ९२ तथा दशहाटी प ९९।

२. स्थाटी प ३८४।

३. अनुद्वामटी प २४६ : प्रत्येकं भिन्नाभिधेयान् प्रतिपद्यते, भिन्नप्रवृत्ति... .... ।

२. देवेन्द्र—देवों का इन्द्र ।

३. देवराज—देवों के मध्य सुशोभित होने वाला ।

४. मघवा—मघ—मेघ को वश में रखने वाला ।

५. पाकशासन—पाक नामक शत्रु पर शासन करने वाला ।

६. शतक्रतु—सौ यज्ञ सम्पन्न करने वाला । जैन परम्परा के अनुसार कार्तिक सेठ के भव में सौ उपासक प्रतिमाओं का पालन करने से शतक्रतु ।

७. सहस्राक्ष—इन्द्र के ५०० मंत्री होते हैं । वह उनकी हजार आंखों से देखता है । अथवा हजार आंखों से जितना देखा जाता है वह अपनी दो आंखों से देख लेता है, अतः सहस्राक्ष ।

८. वज्रपाणि—हाथ में वज्र रखने वाला ।

९. पुरंदर—पुर नामक राक्षस का दारण करने वाला ।

१०. दक्षिणार्धलोकाधिपति ।

११. एरावणवाहन—एरावण नामक हाथी के वाहन वाला ।

१२. सुरेन्द्र—सुर/देवों का इन्द्र ।

सक्कार (सत्कार)

'सक्कार' शब्द के पर्याय में सात शब्दों का उल्लेख है । ये सभी शब्द सम्मान अभिव्यक्त करने की भिन्न-२ रीतियों के द्योतक हैं, जैसे—

१. सत्कार—'सक्कारा पवरवत्थमाईहिं'—किसी को आदरपूर्वक भोजन, वस्त्र आदि देना ।

२. सम्मान—स्तुतिवचन, चरणस्पर्श आदि ।

३. कृतिकर्म—वन्दन करना ।

४. अभ्युत्थान—सामने आना अथवा आदरणीय व्यक्ति के सम्मान में खड़े होना ।

५. अंजलिप्रग्रह—हाथ जोड़ना ।

६. आसनाभिग्रह—आसन पर बैठने का आग्रह करना ।

७. आसनानुप्रदान—आदरणीय व्यक्ति का आसन एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना ।

सण्णिहि (सन्निधि)

सन्निधि आदि शब्द संग्रह के द्योतक हैं। लेकिन इन शब्दों में पदार्थ कृत भेद द्रष्टव्य है। जैसे—

सन्निधि—दूध, दही आदि विनाशी द्रव्यों का संग्रह ।

सन्निचय—अविनाशी द्रव्यों का संग्रह ।

निधि—सुरक्षित पूंजी ।

निधान—भूमिगत खजाना ।

सद्दूल (शार्दूल)

शार्दूल, सिंह और चिल्लल—ये तीनों शब्द सिंह की भिन्न-२ जातियों के द्योतक हैं। 'चिल्लल' शब्द चीते के अर्थ में देशी पद है।

समण (श्रमण)

देखें—'भिक्खु' ।

समर (समर)

इसमें संगृहीत पांचो शब्द कलह, युद्ध के द्योतक हैं—

१. समर—घनघोर युद्ध ।

२. संग्राम—रण ।

३. डमर—राजकुमार आदि के द्वारा उत्पन्न उपद्रव ।

४. कलि—सामान्य लड़ाई, मानसिक क्षोभ ।

५ कलह—वाचिक लड़ाई ।

सागारिय (सागारिक)

सागारिक का अर्थ है—गृहस्थ । वह साधुओं को शय्या/वसति का दान करता है अतः वह शय्यातर है। ये सारे शब्द मुनि को वसति का दान करने के कारण शय्यातर के वाचक हैं।

सामाइय (सामायिक)

सामायिक का अर्थ है—वह प्रवृत्ति जिसमें समता का लाभ होता

है। समता, प्रशस्तता, शांति, सुख, अनाकुलता और पवित्रता—ये सारे शब्द सामायिक की निष्पत्तियां हैं, अतः कारण में कार्य का उपचार कर इनको भी सामायिक का पर्याय मान लिया गया है। यद्यपि ये शब्द पुनरुक्त जैसे लगते हैं किन्तु यहां पुनरुक्ति दोष नहीं है।

आवश्यक निर्युक्ति में चार प्रकार की सामायिकों के पर्याय दिये गये हैं।[1] इसके साथ साम, सम और सम्म आदि शब्दों को सामायिक का एकार्थक माना है।

सिक्खिय (शिक्षित)

'सिक्खिय' आदि शब्द ज्ञानप्राप्ति की क्रमिक भूमिकाओं के द्योतक हैं। इनकी अर्थ-परम्परा इस प्रकार है—

१. शिक्षित—शिक्षा प्राप्ति की मान्य अवस्था में आदि से अन्त तक पढ़ना।

२. स्थित—पढे हुए ज्ञान का अविस्मरण, सतत स्मृति और आचरण।

३. जित—ज्ञान का निरन्तर परावर्तन कर उसे अत्यन्त परिचित कर लेना।

४. मित—पठित ज्ञान का विस्तार से अनुस्मरण।

५. परिजित—पठित का क्रम से या व्युत्क्रम से परावर्तन करने की क्षमता।[2]

सिग्घ (शीघ्र)

शीघ्र आदि सारे शब्द शीघ्रता की विशेष अवस्थाओं के द्योतक हैं।[3]

देखें—'उक्किट्ठ'।

सिद्ध (सिद्ध)

सिद्धि का अर्थ है—लक्ष्य प्राप्ति। जो लक्ष्य प्राप्त कर लेता है, वह सिद्ध है। सिद्ध के एकार्थक शब्द लक्ष्यप्राप्ति की ही विभिन्न अवस्थाओं के वाचक हैं। कुछ शब्दों की अर्थवत्ता इस प्रकार है—

१. सिद्ध—ऋद्धियों से युक्त।

---

१. आवनि ८६१-६४।

२. विभामहेटी पृ ३४६।

३. ज्ञाटी प ६१ : शीघ्रादीनि एकार्थिकानि शीघ्रतातिशयख्यापनार्थानि।

२. परंपरगत—जो उत्कृष्ट-उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त हो गये हैं।

३. असंग—सभी बन्धनों से मुक्त।

४. अशरीरकृत—अशरीरी।

५. निष्प्रयोग—प्रवृत्ति रहित।

६. बुद्ध—केवल ज्ञान सम्पन्न।

७. मुक्त—कर्मबन्धन से मुक्त।

८. परिनिर्वृत—कर्मकृत विकारो से वियुक्त होने से शान्त।

सीईभूय (शीतीभूत)

कषायो के उपशमन के अर्थ में सभी शब्द एकार्थक हैं।[1]

शीतीभूत—कषायाग्नि का उपशमन।

परिनिर्वृत—कषाय की ज्वाला को शांत करना।

उपशांत—राग-द्वेष की अग्नि का उपशमन।

प्रल्हादित—कषाय के परिताप का उपशमन कर शांत रहना।

सीलमंत (शीलमद्)

व्रती व्यक्ति के अर्थ में इन तीनों शब्दो का उल्लेख है। लेकिन इनका अर्थभेद इस प्रकार है—

१. शील—चारित्र।

२. गुण—ज्ञान।

३. व्रत—महाव्रत, गुणव्रत आदि।[2]

सुक्क (शुष्क)

'सुक्क' शब्द के पर्याय में ६ शब्दों का उल्लेख है। ये सभी शब्द कृश व्यक्ति की विभिन्न पर्यायों के द्योतक होने पर भी समवेत रूप से समान अर्थ को व्यक्त करते हैं। कुछ शब्दों की अर्थ-परम्परा इस प्रकार है—

शुष्क—खून की कमी से शुष्क आभा वाला।

भुक्ख—भोजन की कमी से दुर्बल। यह देशी शब्द है।

निर्मांस—मांस की कमी से कमजोर।

---

१. सूटी प १५० : एकार्थिकानि चैतानीति।

२. उशाटी प ३८५।

किटिकिटिकाभूत—मांस क्षय से उठने-बैठने में हड्डियों का चरमराना।

अस्थिचर्मावनद्ध—केवल हड्डियों का ढांचा वाला।

धमनिसंतत—शरीर में केवल नाड़ियों का जाल मात्र दिखाई देना। यह शब्द तपस्वी के विशेषण के रूप में बहुलता से प्रयुक्त होता है।

सुत्त (सूत्र)

सुत्त शब्द के दो अर्थ हैं—ज्ञान, आगम। यह समवेत रूप में शास्त्र या आगम का वाचक है।[1] इन शब्दों की अर्थ-परम्परा इस प्रकार है—

१. श्रुत—गुरु से सुना हुआ ज्ञान।

२. सूत्र—मूल आगम वाक्य।

३. ग्रन्थ – ग्रंथ रूप में ग्रथित।

४. सिद्धान्त—तथ्य का अन्त तक निर्वाह करने वाला।

५. शासन—धर्म की अनुशासना देने वाला।

६. आज्ञावचन—तीर्थंकर या केवली द्वारा प्रतिपादित वाक्य।

७. उपदेश—हित अहित का विवेक देने वाला।

८. प्रज्ञापन—तत्त्व का यथार्थ बोध देने वाला।

९. आगम—आचार्य-परम्परा से प्राप्त।

सुद्ध (शुद्ध)

'सुद्ध' आदि सभी शब्द शुभ्रता/निर्मलता के द्योतक हैं। दिवस प्रकाश की दृष्टि से शुभ्र होता है और आकाश नीरज होने से प्रसन्न—शुभ्र होता है। इस प्रकार 'अतिविशुद्ध' वितिमिर, शुचिम आदि सभी शब्द शुभ्रता व निर्मलता की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं।

देखें—'सेत'।

सुरा (सुरा)

सुरा, मेरक आदि मादक रस मदिरा के ही विभिन्न प्रकार हैं।

---

१. अनुद्वामटी प ३४-३५ एकार्थिकानि तत्त्वतः एकार्थविषयाणि नानाघोषाणि पृथग्भिन्नोदात्तादि स्वराणि नानाव्यञ्जनानि पृथग्भिन्नाक्षराणि नामधेयानि पर्यायध्वनिरूपाणि भवन्ति।

जैसे—

सुरा—पिष्ट आदि द्रव्य से निष्पन्न मदिरा।

मेरक—सुरा को पुनः सन्धान करके जो सुरा तैयार की जाती है।

मादक रस—इसके अन्तर्गत सभी मादक रस जाते हैं।[1]

सुसील (सुशील)

देखें—'सीलमंत' 'निस्सील'।

सेज्जा (शय्या)

सेज्जा शब्द के पर्याय में नौ शब्दों का उल्लेख है। ये सभी शब्द बैठने अथवा सोने के भिन्न भिन्न आकार के आसनों के द्योतक हैं। लेकिन जातिगत समानता से इन्हे पर्यायवाची मान लिया है। इनमे कुछ शब्द विशिष्ट अर्थवत्ता के संवाहक हैं। जैसे—

१. शय्या—शरीर प्रमाण बिछौना।

२. खट्वा—नीवार आदि से निर्मित पलंग।

३. वृषी—तापसों का कुश आदि से बना आसन।

४. आसंदी—कुर्सी।

५. पेढिका—काष्ठ निर्मित बैठने का बाजौट।

६. महिशाखा—भूमी का वह साफ-सुथरा भाग जो बैठने के काम आता है।

७. सिला—शिला/पत्थर से निर्मित आसन।

८. फलक—लेटने का पट्ट अथवा पीढा।

९. इट्टका—ईंट से निर्मित आसन।

सेत (श्वेत)

देखें—'सुद्ध'।

स्वर् (स्वर्)

स्वर्ग के बोधक यहां छह शब्दो का उल्लेख है। इनमें कुछ शब्दों का आशय इस प्रकार है—

जिसके सुखों का वर्णन किया जाता है वह स्वर्ग है। वह देवताओं का निवासस्थान होने से सुरसद्म तथा त्रिदशावास कहलाता है।

१. दशहाटी प १८८।

तीसरा लोक होने के कारण त्रिविष्टप तथा त्रिदिव भी स्वर्ग का प्रसिद्ध नाम है।

हंता (हत्वा)

हिंसा की उत्तरोत्तर भूमिकाओं का वर्णन प्रस्तुत एकार्थक में हुआ है। लेकिन समवेत रूप में सभी शब्द एक ही अर्थ को व्यक्त करते हैं।

हनन—लकड़ी आदि से मारना।

छेदन—खोड़े आदि से दो टुकड़े करना।

भेदन—शूल आदि से छिन्न-भिन्न करना।

लोपन—शरीर के अवयव का लोप करना।

विलोपन—त्वचा उधेड़ना।

अपद्रावण—प्राण-वियोजन करना।

हक्कार (हक्कार)

देखें—'रोयमाणी'।

हट्ठचित्त (हृष्टचित्त)

हृष्टचित्त—आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता, अथवा बाहर से पुलकित होना।

तुष्टचित्त—संतोष से उत्पन्न खुशी, आन्तरिक प्रसन्नता।[1]

आनन्दित—स्मित हास्य एवं सौम्यता।

नन्दित—समृद्धि से प्राप्त प्रसन्नता।

प्रीतिमन—प्रीतियुक्त प्रसन्नता।

परमसौमनस्यिक—परम प्रसन्न मन वाला।

हर्षवशविसर्पद्हृदय—हर्ष से उत्फुल्ल हृदय वाला।

प्रसन्न मानसिक स्थिति में तरतमता होने पर भी टीकाकार ने इनको एकार्थक माना है।[2]

---

१. उशाटी प ४४१ हृष्टाः बहिः पुलकादिमन्तः, तुष्टा आन्तरिक प्रीतिमन्तः।

२. (क) औपटी पृ ४१ : सर्वाणि चैतानि हृष्टादिपदानि प्रायः एकार्थानि।
(ख) भटी प ११६ : एकार्थिकानि चैतानि प्रमोदप्रकर्षप्रतिपादनार्थानीति।

हत्थिक (हास्तिक)

अंगविज्जा मे 'हत्थिक' शब्द के पर्याय में ५ शब्दों का उल्लेख है। ये पांचों शब्द कटक—कङ्गन के बोधक हैं।

कुछ शब्दो का अर्थबोध इस प्रकार है—

हास्तिक }
हत्थिक } —हाथ में पहना जाने वाला।

चक्रकमिथुनक—गोलाकार जोड़ा।

कंगण—हाथ को सुशोभित करने वाला आभूषण।

हय (हत)

ये सभी शब्द प्रहार करने के अर्थ मे एकार्थक हैं लेकिन इनका अवस्थाकृत भेद इस प्रकार है—

हत—शस्त्र आदि से घात करना।

मथित—भूमि पर पछाड़ना।

घात—मर्मस्थानो पर प्रहार करना।

विपतित—भूमि पर डालकर घसीटना।

हयतेय (हततेज)

'हयतेय' आदि पांचो शब्द विनष्ट तेज वाले व्यक्ति के विशेषण के रूप मे एकार्थक हैं।[1] इनकी अर्थ-परम्परा इस प्रकार है—

हततेज—आवरण आदि के कारण तेज रहित होना।

नष्टतेज—स्वत: ही तेज का नष्ट होना।

भ्रष्टतेज—अव्यक्त तेज, जलने आदि से तेज समाप्त होना।

लुप्ततेज—तेज का लुप्त हो जाना।

विनष्टतेज—तेज का सर्वथा विनाश।

हिय (हित)

हित आदि शब्द प्रतिपाद्य विषय पर बल देने वाले हैं। साधारणतया इन शब्दों में हितकारी अर्थ ही ध्वनित होता है लेकिन प्रत्येक शब्द की अर्थभिन्नता इस प्रकार है—

---

१. भटी पृ १२५७ : एकार्था चैते शब्दाः।

हित—अपाय रहित।

शुभ—पुण्यकर।

क्षम—औचित्यकर।

निःश्रेयस—निश्चित कल्याणकर।

आनुगामिक—भविष्य में निरन्तर कल्याणकारी।

हीलणा (हीलना)

'हीलणा' आदि शब्द तिरस्कार करने के अर्थ में प्रयुक्त हैं। अभिव्यञ्जना में अर्थभेद होते हुए भी ये समान अर्थ में प्रयुक्त हैं।

हीलना—जाति आदि से अवहेलना करना। अथवा जाति से बहिष्कृत करना।

तर्जना—तर्जनी अंगुली दिखाते हुए डांटना।

ताडना—थप्पड़ मारना।

गर्हणा—गर्हणीय लोगों के सामने निंदा करना।[1]

हीलिज्जमाणी

देखें—'हीलणा'।

हेउणोवएस (हेतुकोपदेश)

जो अवबोध हेतु/कारण से होता है वह हेतुकोपदेश संज्ञा कहलाती है। विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव हित की प्रवृत्ति और अहित की निवृत्ति इसी संज्ञा से करते हैं। जैसे चींटी गंध के आधार पर वस्तु का ज्ञान कर लेती है। यह प्रायः वार्तमानिकी संज्ञा है।

---

१. औपटी पृ १६१।

परिशिष्ट ३

धातु-अनुक्रम

(प्रस्तुत परिशिष्ट में उपसर्ग और धातुओं के बीच का निर्देश + से न करके — चिह्न से किया गया है तथा दीर्घ ऋ के टाईप प्रेस में न होने से ह्रस्व ऋ का प्रयोग किया है। जैसे—तृ, पृ, दृ, शृ आदि।)

अंचेति—अञ्चू गतौ।
अंदोलति—आन्दोलण् दोलने।
अक्कोसति—आ-क्रुशं आह्वानरोदनयोः।
अज्झोववज्जइ—अधि-उप-पदिच् गतौ।
अट्यते—अट गतौ।
अणुपालेइ—अनु-पलण् रक्षणे।
अणुसंचरइ—अनु-सम्-चर गतौ।
अण्हेते—अशश् भोजने।
अतिवाहयन्ति—अति-वहीं प्रापणे।
अत्थयति—अर्थणि उपयाचने।
अपकड्ढति—अप-कृषं कर्षणे।
अब्भुट्ठिज्जइ—अभि-उद्-ष्ठां गतिनिवृत्तौ।
अभिगच्छइ—अभि-गम्लृं गतौ।
अभिप्पायंति—अभि-प्र-आ-इंण्क् गतौ।
अभिलसइ—अभि-लषी कान्तौ।
अभिसन्दध्यात्—अभि-सम्-डुधांग्क् धारणे दाने च।
अभिहणति—अभि-हनंक् हिंसागत्योः।
अर्पापयति—अर्थणि उपयाचने।
अर्वति—अर्ब गतियाचनयोः।
अर्यंते—ऋं प्रापणे।
अवतरति—अव-तृ प्लवनतरणयोः।
अवमन्नति—अव-मनूयि बोधने।
अहिट्ठयति—अधि-ष्ठां गतिनिवृत्तौ।
अहिधावति—अधि-धावूग् गतिशुद्ध्योः।

अहियासेइ—अधि-षहि मर्षणे ।
आइक्खइ—आ-चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि ।
आओडावेइ—आङ्-खोटण् क्षेपे ।
आओसेज्ज—आ-क्रुशं आह्वानरोदनयोः ।
आकड्ढ—आ-कृषं कर्षणे ।
आखोटयति—आङ्-खोटण् क्षेपे ।
आख्यापयति—आ-ख्यांक् प्रकथने ।
आग्राहयति—आ-ग्रहीश् उपादाने ।
आचिक्खति—आ-चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि ।
आढाइ—आ-दृंङ्त् आदरे ।
आणेति—आ-णींग् प्रापणे ।
आदियति—आ-दांम् दाने ।
आपिबति—आ-पां पाने ।
आयरइ—आ-चर गतौ ।
आरभइ—आ-रभि राभस्ये ।
आराहेइ—आ-राधं संसिद्धौ ।
आरुभति—आ-रुहं जन्मनि ।
आलुक्कई—आ-लोकृङ् दर्शने ।
आलोइज्जइ—आ-लोकृङ् दर्शने ।
आवहति—आ-वहीं प्रापणे ।
आवीलए—आ-पीडण् आघाते ।
आसाएइ—आ-स्वादि आस्वादने ।
आसारेइ—आ-सृं गतौ ।
आहणइ—आ-हनंक् हिंसागत्योः ।
उक्कड्ढति—उद्-कृषं कर्षणे ।
उक्कोसेज्ज—उद्-क्रुशं आह्वानरोदनयोः ।
उक्खणाहि—उद्-खनूग् अवदारणे ।
उच्छल्लिज्जति—उद्-चल गतौ ।
उच्छुभ—उद्-क्षुभश् संचलने ।
उच्छोलेंति—उद्-क्षलण् शौचे (दे) ।
उज्जोएइ—उद्-द्युति दीप्तौ ।

उक्कीयति—उत्क्रत् उत्सर्गे ।
उत्तरति—उद्-तृ प्लवनतरणयोः ।
उत्तुदति—उद्-तुदीत् व्यथने ।
उत्क्षिप्यति—उद्-क्षिपंच् प्रेरणे ।
उत्पादयति—उद्-पदिच् गतौ ।
उत्प्रेक्षते—उद्-प्र-ईक्षि दर्शने ।
उत्सृजति—उद्-सृजिच् विसर्गे ।
उद्द्रेति—उद्-द्राक् कुत्सितगती ।
उपनीयते—उप-णीग् प्रापणे ।
उपपदरिसिते—उप-प्र-दृशृं प्रेक्षणे ।
उपपद्यते—उप-पदिच् गतौ ।
उपलभते—उप-डुलभिष् प्राप्तौ ।
उप्पज्जते—उद्-पदिच् गतौ ।
उप्पाडेहि—उद्-पट गतौ ।
उवणामेति—उप-णम प्रह्वत्वे ।
उवयंति—उप-यांक् गतौ ।
उवेइ—उप-इण्क् गतौ ।
उवेहति—उद्-प्र-ईक्षि दर्शने ।
उव्वत्तेइ—उद्-वृतुङ् वर्तने ।
उव्वियंति—उद्-ओविजैप् भयचलनयोः ।
ओधावति—अव-धावूग् गतिशुद्ध्योः ।
ओभासेइ—अव-भासि दीप्तौ ।
ओभासेज्ज—अप-भाषि च व्यक्तायां वाचि ।
ओसारेति—अव-सृं गतौ ।
कंखइ—कांक्षु कांक्षायाम् ।
कंदंति—कदु रोदनाह्वानयोः ।
कंपेति—कपिङ् चलने ।
कड्ढति—कृषं कर्षणे ।
कत्ताहि—कृतैत् छेदने ।
कथेति—कथण् वाक्यप्रबंधे ।
कामयंति—कमूङ् कान्तौ ।

किट्टते—कृतण् संशब्दने ।

किरियंति—डुकृंग् करणे ।

किलामेज्ज—क्लमूच् ग्लानौ ।

कीडंति—क्रीड् विहारे ।

कीलंति—क्रीड् विहारे ।

कुच्छति—कुत्सिण् अवक्षेपे ।

कुव्वइ—डुकृंग् करणे, कुर्व करणे[1] ।

क्रमति—क्रमू पादविक्षेपे ।

खमइ—क्षमौष् सहने ।

खाति—खाद् भक्षणे ।

खोभेइ—क्षुभश् संचलने ।

गच्छति—गम्लृं गतौ ।

गरहति—गर्हण् विनिन्दने ।

गलइ—गलिण् स्रावणे ।

गिज्झइ—गृधूच् अभिकांक्षायाम् ।

गिण्हाति—ग्रहीश् उपादाने ।

गुणेति—गुण आमन्त्रणे ।

गृह्णाति—ग्रहीश् उपादाने ।

घट्टेइ—घट्टण् चलने ।

घडइ—घटिष् चेष्टायाम् ।

घुमति—घूर्णत् भ्रमणे ।

चङ्क्रूर्यते—चर गतौ ।

चयंति—त्यज हानौ ।

चरति—चर गतौ ।

चाएति—शक्लृंट्[2] शक्तौ ।

चालेइ—चल कम्पने ।

चिंतेहिति—चितुण् स्मृत्याम् ।

छड्डे—छर्दण् वमने

छिंदति—छिदृंपी द्वैधीकरणे ।

---

1. धातु पृ १६४ आपमिकधातु ।
2. प्रा ४।८६ शकेश्चय-तर-तीर-पाराः ।

घिन्तंसि—छिदृंपी द्वैधीकरणे, क्णुंक्-हिंसायाम् ।

छुमति—क्षुभश् संचलने ।

जंपति—कथण्[1] वाक्यप्रबन्धने ।

जहेज्ज—ओहांक् त्यागे ।

जाणइ—ज्ञांश् अवबोधने ।

जूरइ—खिदिंप्[2] दैन्ये ।

जेमेति—जिमू अदने ।

जोत्तेज्ज—युजण्-सम्पर्चने ।

ज्ञाप्यते—ज्ञांश् अवबोधने ।

टिट्टियावेइ (दे) ।

ठवेति—ष्ठा गतिनिवृत्तौ ।

डज्झति—दहं भस्मीकरणे ।

णमंसइ—णम प्रह्वत्वे ।

णामेति—णमं प्रह्वत्वे ।

णाहिति—ज्ञांश् अवबोधने ।

णिकड्ढति—नि-कृषं कर्षणे ।

णिक्खुस्सति—निर्-क्रुश आह्वानरोदनयो. ।

णिज्झायति—निर् ध्यै चिंतायाम् ।

णिद्धावति—नि-धावूग् गतिशुद्धयोः ।

णिरिक्खति—निर्-ईक्षि दर्शने ।

णिलिक्खति—निर्-ईक्षि दर्शने ।

णिल्लवेति—निर्-लूग्श्-छेदने, निस्-सृं[3]-गतौ ?

णिसरति—नि-सृजिच् विसर्गे ।

णिहेति—नि-डुधाग्क् धारणे ।

णीहरति—निर्-हृंग् हरणं ।

णूमेति (दे)

---

१. प्रा ४/२ कथेर्वज्जर पज्जरोप्पालपिसुण-संघ-बोल्ल-चव-जम्प-सीस साहाः ।

२. प्रा ४/१३२ खिदेर्जूरविसूरौ ।

३. प्रा ४/७९ निस्सरेर्णीहर-नील-धाड-वरहाडाः ।

णोल्लति—क्षिपींत्[1] प्रेरणे ।

णोल्लसति—क्षिपिंच प्रेरणे[1] ।

तक्केइ—तर्कं विचारे ।

तज्जेति—तर्जिण् संतर्जने ।

तवेंति—तपं सन्तापे ।

तसंति—त्रसैच् भये ।

तालेति—तडण् आघाते ।

तितिक्खइ—तिजि क्षमानिशानयोः ।

तिप्पइ—तिपृङ् क्षरणे ।

तीरेइ—तृ-प्लवनतरणयोः ।

तुट्टाएति—(दे) ?

तुदति—तुदींत् व्यथने ।

थणंति—स्तन शब्दे ।

दयामो—दयि रक्षणे ।

दिप्पते—दीपैचि दीप्तौ ।

दीसति—दृशृं प्रेक्षणे ।

दुक्खइ—दुःखण तत्क्रियायाम् ।

दुरुहइ—दु-रुहं जन्मनि ।

दूइज्जति—दुं-गतौ ।

देति—डुदांग्क् दाने ।

धाडेति—निस् सृ[2] गतौ ।

धारयंति—धृंग् धारणे ।

धावति—धावूग् गतिशुद्ध्योः ।

निअच्छंति—नि-यमूं उपरमे ।

निंदति—णिदु कुत्सायाम् ।

निग्गच्छंति—निर्-गम्लृं गतौ ।

निच्छोडेज्ज—निर्-छुट्-छेदने ।

निर्णीयते—निर्-णींग् प्रापणे ।

निप्पीलए—निस्-पीडण् आघाते ।

---

१. प्रा ४/१४३ खिपेर्गलत्थाड्डक्ख सोल्ल-पेल्ल-णोल्ल-छुह-हुल-परी-घत्ताः ।

२. प्रा ४।७९ निस्सरेर्णीहर-नील-धाड-वरहाडा : ।

निब्भच्छेज्ज—निर्-भर्त्सण् संतर्जने ।
निविशति—नि-विशंत् प्रवेशने ।
निव्वंजीयंति—निर्-वि-आ-अञ्जौप्-व्यक्त्यादौ
निष्पाद्यते—निस्-पदिच् गतौ ।
निसृजति—नि-सृजिच् विसर्गे ।
पंउजेज्जा—प्र-युजूंपी योगे ।
पंतावेज्ज—प्र-अम् गतौ ।
पक्खति—पक्षण् परिग्रहे ।
पक्खते—दृशृं प्रेक्षणे ।
पगासेति—प्र-काशृङ् दीप्तौ ।
पच्चति—डुपचींष् पाके ।
पच्चाणेति—प्रति-आ-णींग्-प्रापणे ।
पच्छति—प्रछंत् ज्ञीप्सायाम् ।
पडइ—पत्लृ-गतौ
पडिक्कमिज्जइ—प्रति-क्रमू पादविक्षेपे ।
पण्णवेइ—प्र-ज्ञांश् अवबोधने ।
पत्तियइ—प्रति-इंण्क् गतौ ।
पत्थयति—प्र-अर्थणि उपयाचने ।
पधावति—प्र-धावूग् गतिशुद्ध्योः ।
पधोवेंति—प्र-धूत्[1] विधूनने ।
पन्नायति—प्र-ज्ञांश् अवबोधने ।
पभासेइ—प्र-भासि दीप्तौ ।
पमिलायति—प्र-म्लैं गात्रविनामे ।
पयाति—प्र-यांक् गतौ ।
पर्यालोचयति—परि-आ-लोचृङ् दर्शने ।
परिक्कमिज्ज—परि-क्रमू पादविक्षेपे ।
परिघुमति—परि-घूर्णत् भ्रमणे ।
परिवेट्ठति—परि-वेष्टि वेष्टायाम् ।
परिच्चयंति—परि-त्यजं हानौ ।
परिच्छिवति—परि-छिद्ंपी द्वैधीकरणे ।
परिजाणेइ—परि-ज्ञांश् अवबोधने ।

---

१. प्रा ४/६६ धूगेर्धुवः ।

परितप्पइ—परि-तपं सन्तापे ।
परितालेति—परि-तडण् आघाते ।
परिधावति—परि-धावूग् गतिशुद्ध्योः ।
परिनिव्वाइ—परि-निर्-वांक् गतिगन्धनयोः ।
परिभवति—परि-भू-सत्तायाम् ।
परिभासति—परि-भाषि च-व्यक्तायां वाचि ।
परियट्टति—परि-अट गतौ ।
परियत्तेइ—परि-वृतुङ् वर्तने ।
परिवत्तते—परि-वृतुङ् वर्तने ।
परिवहेति—परि-व्यथिष् भयचलनयोः ।
परिहायति—परि-ओहाक् त्यागे ।
परुवेइ—प्र-रूपण् रूपक्रियायाम् ।
पलुक्कइ—प्र-लोकृङ् दर्शने ।
पविद्धंसति—प्र-वि-ध्वसूंङ् अवस्रंसने ।
पवीलए—प्र-पीडण् गहने ।
पव्वइज्जा—प्र-व्रज गतौ ।
पव्वहेति—प्र-व्यथिष् भयचलनयोः ।
पवेदेमि—प्र-विदिण् चेतनाख्याननिवासेषु ।
पहर—प्र-हृंग् हरणे ।
पाटयति—पट गतौ ।
पालेइ—पलण् रक्षणे ।
पावइ—प्र-आप्लृट् व्याप्तौ ।
पासइ—दृशृ प्रेक्षण ।
पियइ—पा पाने ।
पीडइ—पीडण् गहने ।
पीहेइ—स्पृहण् ईप्सासाम् ।
पूरेइ—पृण् पालनपूरणयोः ।
पेक्खति—प्र-ईक्षि दर्शने ।
पेहति—प्र-ईक्षि दर्शने ।
प्रचोदयति—प्र-चुदण् संचोदने ।
प्रत्येति—प्र-इंण्क् गतौ ।

पभाति—प्र-भांक् दीप्तौ ।
पविसति—प्र-विशंत् प्रवेशने ।
प्रेरयन्ति—प्र-ईरण् क्षेपे ।
फंदेइ—स्पदुङ् किञ्चिच्चलने ।
फरूसेज्ज—पृश् पालनपूरणयोः ।
फासेइ—स्पृशंत् संस्पर्शे ।
फुडीकज्जंति—स्फुट-डुकृंग् करणे ।
बंधेज्ज—बन्धंश् बन्धने ।
बीभिंति—ञिभीक् भये ।
बुज्झइ—बुध अवगमने ।
बेंति—ब्रूंग्क् व्यक्तायां वाचि ।
भंज—भञ्जोप् आमर्दने ।
भक्खति—भक्षण् अदने ।
भणति—भण शब्दे ।
भमते—भ्रमू चलने ।
भवति—भू सत्तायाम् ।
भासते—भासि दीप्तौ ।
भासेइ—भाषि च व्यक्तायां वाचि ।
भिंदति—भिदृंपी विदारणे ।
भुंजते—भुंजप् पालनाभ्यवहारयोः ।
मंतेहिंति—मन्त्रिण् गुप्तभाषणे ।
मग्गइ—मार्गण् अन्वेषणे ।
मन्नंति—मनूयि बोधने ।
मरिसेति—मृषीच् तितिक्षायाम् ।
महेज्ज—मन्थ हिंसासंक्लेशयोः ।
मिणइ—मीण् मतौ ।
मिणति—माङ्क् मानशब्दयोः ।
मुच्चइ—मुचण् प्रमोचने ।
मुज्झइ—मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः ।
मोहेति—मुहींच् वैचित्ये ।
युज्यते—युजंपी योगे ।
रज्जइ—रञ्जीं रागे ।

रमंति—रमि क्रीडायाम् ।
रीयति—रींङ्च् स्रवणे, रीङ् गतिरेषणयोः ।
रुंभेज्ज—रुधुं पी आवरणे ।
लज्जामो—ओलस्जैति व्रीडे ।
लब्भति—डुलभिष् प्राप्तौ ।
ललंति—ललिण् ईप्सायाम् ।
लुक्कइ—लोकृङ् दर्शने ।
लेसेज्ज—श्लिषंच् आलिंगने ।
वंदइ—वदुङ् स्तुत्यभिवादनयोः ।
वक्कमंति—अव-क्रमू पादविक्षेपे ।
वन्दते—वदुङ् स्तुत्यभिवादनयोः ।
वज्जेज—वृतुङ् वर्तने ।
वप्फति—(दे)
वमेंति—टुवमू उद्गिरणे ।
वयति—व्रज गतौ ।
वर्णयति—वर्णण् वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु ।
वासेइ—वासण् उपसेवायाम्, वसं निवासे ?
विउक्कमंति—वि-उद्-क्रमू पादविक्षेपे ।
विउट्टिज्जइ— वि-कुट्टण् कुत्सने छेदने च ।
विकड्ढति—वि-कृषं कर्षणे ।
विकत्ताहि—वि-कृतैत् छेदने ।
विच्छिदति—वि-छिदृंपी द्वैधीकरणे ।
विच्छुभ—वि-क्षुभश् संचलने ।
विज्झीयति—वि-उज्झत् उत्सर्गे ।
विद्धंसति—वि-ध्वसूङ् अवस्रंसने ।
विप्पावति—वि-धावूग् गतिशुद्ध्योः ।
विनयन्ति—वि-णींग् प्रापणे ।
विप्परिचेट्ठते—वि-परि-चेष्टि चेष्टायाम् ।
विप्परिवत्तते—वि-परि-वृतुङ् वर्तने ।
विभयति—वि-भञ्जोप् आमर्दने ।
विभावेमि—वि-भू सत्तायाम् ।

विलग्गइ—वि-लगे सङ्गे ।
विलुंपति—वि-लुप्लृंती छेदने ।
विशति—विशंत् प्रवेशने ।
विशेषयति—वि-शिष्लृंप् विशेषणे
विसोधेति—वि-शुधंच् शौचे ।
विहण—वि-हनंक् हिंसागत्योः ।
वोसिरति—वि-उद् सृजिच् विसर्गे ।
वृणीते—वृङ्श् संभक्तौ ।
वृणोति—वृग्ट् वरणे ।
संकुयंति—सम्-कुचत् संकोचने ।
संघट्टेज्ज—सम्-घट्टण् चलने
संचारयन्ति—सम्-चर गतौ ।
संचालयन्ति—सम्-चलण् भृतौ ।
संचिट्ठते—सम्-ष्ठां गतिनिवृत्तौ ।
संजमंति—सम्-यमू उपरमे ।
संजायते—सम्-जनैंचि प्रादुर्भावे ।
संधंसेज्ज—सम्-ध्वंसूङ् अवस्रंसने ।
संधयेत्—सम्-ट्धें पाने ।
संधावति—सम्-धावूग् गतिशुद्धयोः ।
संपेहेति—सम्-प्र-ईक्षि दर्शने ।
संप्रेक्षते—सम्-प्र-ईक्षि दर्शने ।
संभवति—सम्-भू सत्तायाम् ।
संलुक्कइ—सम्-लोकृङ् दर्शने ।
संवरेज्जा—सम्-वृग्ट् वरणे ।
संसारेइ—सम्-सृं गतौ ।
सक्कारेइ—सद्-डुकृंग् करणे ।
सक्केइ—शक्लृंट् शक्तौ ।
सज्जइ—षञ्जं सङ्गे ।
सडइ—शट रुजाविशरणगत्यवसातनेषु ।
सद्दहइ—श्रद्-डुधांग्क धारणे ।
समवतरन्ति—सम्-अव-तॄ तरणप्लवनयोः ।

समवयन्ति—सम्-अव-इंण्क् गतौ ।
समारभइ—सम्-आ-र्भि राभस्ये ।
सम्माणेइ—सम्-मानण् पूजायाम् ।
सम्मिलन्ति—सम्-मिलत् श्लेषणे ।
सहति—षहि मर्षणे ।
साध्यते—साधंट् संसिद्धौ ।
सिचंति—षिचीत् क्षरणे ।
सिज्झइ—षिधूच् संराद्धौ ।
सिणावेंति—ष्णाक् शौचे ।
सूयते—षुंङ् प्रसवैश्वर्ययोः ।
सोभते—शुभि दीप्तौ ।
सोयइ—शुच शोके ।
स्तौति—ष्टुंञ्क् स्तुतौ ।
स्पृशति—स्पृशंत् संस्पर्शे ।
स्फाटयति—स्फट विशरणे ।
शृणोति—श्रुट् श्रवणे ।
हणति—हनंक् हिंसागत्योः ।
हरंति—हृंग् हरणे ।
हुवइ—भू सत्तायाम् ।
हसति—हसे हसने ।
हायति—ओहांक् त्यागे ।
हिंसति—हिंसुण् हिंसायाम् ।
हीलेति—हीलण् निन्दायाम् ।[1]

---

१. धातु पृ ३६४ : लौकिक धातु ।

शुद्धाशुद्धि-पत्र

पृ संख्या	मूल एकार्थक	अशुद्ध	शुद्ध
३	अक्कोह	खीणक्कोहे	खीणकोहे
९	अत्तव	बा	वा
११	अधम्मत्थिकाय	रइ-अरइं	रइ-अरई
१३	अप्पियववहार	अप्पियववहार	अप्पियववहारिय
४०	ऋजु	ऋ-सरजुल	ऋजु-सरल
४४	कम्म	कमं	कर्म
५२	गड्डिक	सुभगा	सुभगो
६२	जंबू	३/७००	जीव ३/७००
७०	णिस्सज्जित	अवि	अंवि
७६	थिल्ली	थिल्ली	थिल्लि
९०	पंडुर	पडुर	पंडुर
९६	परिग्गह	आयार	आयर
९९	पव्वाविय	प्रव्रजित	प्रव्राजित
१०२	पासादिय	अभिरुवे	अभिरूवे
१०२	पासादिय	पडिरुवे	पडिरूवे
१०३	पिच्चअ	पिच्चअ	पिच्चिय
१०३	,,	कुट्टिसो	कुट्टितो
१०५	पूया	विणआ	विणओ
११९	व्यक्तिकर	वातिकर	वातिककर
१४४	संरंभ	सरंमाभे	समारंभे
१४७	सप्पज्झाय	सप्पज्झाय	सपज्झाय
१५३	सिद्धार्थं	सिद्धार्थं	सिद्धार्थ
१५६	सोह	सोह	सोहि
१५७	हृत्थखड्डुम	खड्डुमं	खडुमं
१५८	ह्रायपति	ह्रायपति	ह्रापयति
१५८	ह्रार	ह्रियते	ह्रियते

पृ संख्या	मूल एकार्थक	अशुद्ध	शुद्ध
१५१	हुतासिणासिहा	हुतासिणासिहा	हुतासिणसिहा
१६१	परिशिष्ट १	कोम्टक	कोष्ठक
१६३	” १	अट्ट्यते	अट्यते
१६१	अप्रसूता	नववधू	नववधू
१७०	परिशिष्ट १	अघिसंधान	अभिसंधान
१७१	अभिक्खिपरिहारि	संजमतवय	संजमतवड्ढय
१६२	परिशिष्ट १	खीणककोह	खीणकोह
१६८	चितिकम्म	वंदग	वंदणग
२०५	णिम्मल	णिड्डियट्टि	णिड्डियट्ठ
२१०	परिशिष्ट १	दकावर	वकोदर
२३५	”	भत्थ	भस्थ
२४६	”	लप्पमाण	लुप्पमाण
२४६	लोह	अधम्मस्थिकाय	अधम्मत्थिकाय
२५७	परिशिष्ट १	सज्जाय	सज्झाय
२६१	” १	सद्धम	सद्धम्मं
२६२	समास	सखेव	संखेव
२६८	परिशिष्ट १	सरगिरि	सुरगिरि
३००	परिशिष्ट २	उट्ठाण	उट्ठाण
३०२	परिशिष्ट २	उवसय	उवसग